स्वास्थ्य निर्देशिका

लेखक

डॉ० ओ० पी० बंसल

एम० बी० बी० एस०

03541

Community Health Cell
Library and Documentation Unit
BANGALORE

With best compliments
from Dr O. P. Bansal.

स्वास्थ्य निर्देशिका

[जनसाधारण और स्वास्थ्य कार्यकर्त्ताओं के लिये अत्याधिक उपयोगी]

लेखक :
डॉ० ओ० पी० बंसल
एम० बी० बी० एस०

सहायक :
डॉ० एस० जी० परांजपे
एम० ए०, डी० एच० बी० आयुर्वेदरत्न

प्रकाशक :
एम० आर० प्रकाशन
शिक्षक नगर
इन्दौर–४५२००२

प्राप्ति स्थल

★ मार्डन बुक डिपो
१ बाल विहार
भोपाल

★ अग्रवाल ब्रदर्स
खजूरी बाजार
इन्दौर

★ एम० आर० प्रकाशन
शिक्षक नगर
इन्दौर

★ पंकज बुक स्टोर
खजूरी बाजार
इन्दौर

© प्रकाशकाधीन

03541

CDM H 330.

★ प्रकाशक :
एम० आर० प्रकाशन
शिक्षक नगर
इन्दौर

★ संस्करण :
द्वितीय संस्करण : १९८०–८१

★ मूल्य :
दस रुपये मात्र

★ मुद्रक :
अजन्ता प्रिन्टर्स
१८/७ माईथान, आगरा–३

प्रस्तावना

देश के ७७७ प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों के क्षेत्रों में "गाँधी जयन्ती" १९७७ के पावन दिवस से ग्रामीण स्वास्थ्य योजना लागू की गई है। योजना के उद्देश्यों में :

- ☐ गाँव को साफ बनाना,
- ☐ ग्रामीणों को बीमारियों से दूर रखना,
- ☐ बीमारियों पर नियन्त्रण पाने के लिए ग्रामीणों को ही सक्षम बनाना आदि बातें प्रमुख हैं।

उक्त योजना के सफलतापूर्वक क्रियान्वयन हेतु शासन ने १००० की आबादी पर एक "जन स्वास्थ्य रक्षक" एवं ५००० की आबादी पर एक "बहुद्देशीय कार्यकर्त्ता" को बीमारी की रोकथाम व उपचार के लिए नियुक्त किया है। ये व्यक्ति स्थानीय सामान्य नागरिकों में रहते हैं। इन्हें उपचार करने हेतु शासन की ओर से सभी प्रकार की दवाएँ निशुल्क दी जाती हैं तथा जनस्वास्थ्य रक्षक को रुपये ५०) प्रतिमाह दिये जाते हैं। बहुद्देशीय कार्यकर्त्ता पूर्णकालिक शासकीय सेवक होते हैं।

अतः २०वीं सदी की इस सर्व लोकोपयोगी योजना की सफलता उसी में निहित है कि जनस्वास्थ्य रक्षक जानकारी रखकर एवं उसके त्वरित इलाज करने की क्षमता अपने आपमें बनावें।

इस महद किन्तु मधुर कार्य के लिए मेरे मित्रों ने एवं विद्यार्थियों ने कई बार यह आग्रह किया कि जब आप इस योजना की शिक्षा देते हैं, तो शिक्षा की पूर्णता के लिए एक पुस्तक भी सरल हिन्दी भाषा में होनी चाहिये।

एतदर्थ यह पुस्तक "स्वास्थ्य निर्देशिका" केरूप में आपके समक्ष प्रस्तुत है। पुस्तिका के सम्बन्ध में आपके अमूल्य सुझाव एवं संशोधन सादर आमन्त्रित हैं।

लेखक

डॉ० ओमप्रकाश बंसल

एम० बी० बी० एस०

सहायक शल्य चिकित्सक

प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र

हातोद जिला इन्दौर

(म० प्र०)

आभार

हमारी लोकप्रिय सरकार ने सुदुर गाँवों में जहाँ पर कि चिकित्सा सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हैं, ऐसे स्थानों पर सामान्य लोगों को स्वास्थ्य सुविधाएँ मिलें इस हेतु "जन स्वास्थ्य रक्षक योजना" कार्यान्वित कर "मानव" मात्र की सेवा करने का अभूतपूर्व कार्य किया है, सबसे पहले मैं शासन के इस निर्णय को "मानव" मात्र के लिए एक अलभ्य वरदान मानता हूँ।

जनस्वास्थ्य रक्षकों के लिए अभी तक राष्ट्रभाषा हिन्दी में कोई पुस्तक नहीं थी। चूँकि इस योजना के क्रियान्वय एवं उसके शिक्षण में मेरा प्रारम्भ से ही योगदान रहा है अतः छात्रों (जन-स्वास्थ्य रक्षकों) की माँग पर मुझे उक्त पुस्तक लिखने की प्रेरणा प्राप्त हुई, अतः सर्वप्रथम मैं उनका आभारी हूँ।

पुस्तक के "महद" किन्तु मधुर कार्य को सरल भाषा में लिखने के लिए मुझे मेरे साथी डा० एम० एल० पोरवाल सहायक शल्य चिकित्सक हातोद का सक्रिय सहयोग प्राप्त हुआ, उसके लिए उनका आभारी हूँ।

पुस्तक के सुन्दर मुद्रण में मुझे मेसर्स 'अजन्ता प्रिन्टर्स' आगरा का सक्रिय सहयोग प्राप्त हुआ, उसके लिए भी मैं उनका अभारी हूँ।

अन्य कई मित्र, ज्ञात अज्ञात लेखकों तथा सह-योगियों का भी जिससे मुझे सहयोग व मार्ग दर्शन मिला है, मैं उनका भी आभारी हूँ।

—डॉ० ओमप्रकाश बंसल

अनुक्रमणिका

क्र०	विषय	पृष्ठ
१.	शरीर रचना	१
२.	पाचन संस्थान (Digestive System)	६
३.	श्वसन संस्थान (Respiratory System)	१०
४.	विसर्जन क्रिया (Excreatory System)	१३
५.	रक्त संचार प्रणाली (Circulatory System)	१५
६.	प्रजनन प्रबन्ध के अंग	२०
७.	स्त्री जननांग (Female Organs of Generation)	२३
८.	नाड़ी संस्थान (Nervous System)	२७
९.	स्वास्थ्य व रोग	२७
१०.	परिभाषाएँ	२९
११.	रोग फैलाने में सहायक प्रतिनिधि	३०
१२.	बीमारी की रोकथाम	३४
१३.	रोगी का परीक्षण	३५
१४.	दर्द (Pain)	४२
१५.	टांसिल (Tonsilitis) में सूजन	४४
१६.	गले (Pharyngitis) में सूजन	४५
१७.	नाक से खून बहना (Epistaxis)	४६
१८.	पिम्पल्स (Acne Vulgeris)	४७
१९.	सिरोसिस ऑफ लिवर (Cirrhosis of Liver)	४८
२०	खाँसी	५०
२१.	बुखार	५१
२२.	इनफ्लूएन्जा (Influanza)	५२
२३.	निमोनिया (Pneumonia)	५३
२४.	क्षय रोग (Tuberculosis)	५५
२५.	कुकर खाँसी (Whooping Cough)	५९
२६.	डिप्थेरिया (Diphtheria)	६०
२७.	बोदरी माता (Measels)	६३
२८.	छोटी माता (Chicken Pox)	६५
२९.	चेचक (Small Pox)	६६
३०.	मम्पस (Mumps)	६८
३१.	मलेरिया (Maleria)	६९
३२.	हैजा (Cholera)	७३
३३.	मोतीझरा (Typhoid)	७५
३४.	दस्त लगना (Diahhorea)	७९

३५. पीलिया (Infective Hepatitis) ८१
३६. टिटेनस (Tetanus) ८२
३७. रेबिस (Rabies) ८४
३८. सिफिलिस (Syphilis) ८५
३९. गोनोरिया (Gonorrhea) ८७
४०. कृमि (Worm Infeotations) ८७
४१. सुत्र कृमि (Thread Worm) ८८
४२. अंकुश कृमि (Hook Worm) ८९
४३. फीता कृमि (Tap Worm) ९१
४४. पोषक आहार ९३
४५. बेरीबेरी (Beri Beri) ९७
४६. पेलाग्रा (Pellagra) ९८
४७. स्कर्वी (Scurvy) ९८
४८. रिकेट्स (Rickets) ९९
४९. खुजली (Scabies) १००
५०. दाद (Ring Worm) १०१
५१. धोबी की खुजली (Tinea Cruris) १०२
५२. सिर की दाद (Ring worm of Scalp) १०२
५३. भूख व खाने की इच्छा व खाने की आदत १०२
(अ) भूख १०३
(ब) खाने की इच्छा १०३
(स) खाने की आदत १०३
५४. घबराहट, जी घबराना (Nausea) १०४
५५. उल्टी आना (Vomating) १०४
५६, गैस (Flatulence) १०५
५७. कब्जियत (Const:pation) १०५
५८. जलना व झुलसना (Burn & Scald) १०६
५९. डूबना (Drowing) १०८
६०. बिजली का झटका लगना १०८
६१. रक्ताल्पता (Anaemia) ११०
६२. मातृ एवं शिशु कल्याण कार्यक्रम ११२
६३. एन्जाइना पेक्टोरिस (Angina Pectoris) ११६
६४. गर्भ की जानकारी (Diagnosis of Pregnency) ११८
६५. सामान्य गर्भ में कुछ तकलीफें १२०
६६. मासिक धर्म के समय दर्द होना १२५

६७. सफेद पानी (Leukorrhea) १२६
६८. सर्विसायटिस (Cervicitis) १२७
६९. इनफर्टिलिटी (Infertility) १२८
७०. सम्भोग के समय दर्द (Dyspareunia) १२९
७१. प्रसव (Dilivery) १३०
७२. साँप का काटना १३५
७३. बिच्छू का डंक मारना १३७
७४. कीड़ों का काटना १३७
७५. बुखार लेना १३८
७६. दाँत दर्द (Toothaine) १३८
७७. आँख १३९
७८. आँखों के रोग १४०
७९. आँख में फुन्सी होना (Stye) १४०
८० आँखें आना (Conjectivitis) १४१
८१. रोहे (Trachoma) १४१
८२. आँखों में मल्हम लगाने की विधि १४२
८३. कम दिखाई देना १४३
८४. रतोंधी १४३
८५. आँखों में चोट लगना १४४
८६. कान के रोग १४५
८७. कान में दर्द १४५
८८. घाव तथा रक्त स्राव १४६
८९. रक्त स्राव पर नियन्त्रण १४७
९०. मरहम पट्टी तथा पट्टियाँ १४८
९१ फोड़े-फुन्सी १५०
९२. लू लगना १५१
९३. पेट में दर्द (Pain in abdomen) १५१
९४. अमाशय का छाला (Peptic Ulcer) १५३
९५. अपेन्डिसाइटिस (Appendicitis) १५५
९६. अमाशय में सूजन (Gastritis) १५६
९७. पित्त की थैली में सूजन १५९
९८. अमाशय का केन्सर (Carcinoma of Stomach) १६१
९९. मुँह के छाले १६३
☐ कृत्रिम श्वांस की विधि
१००. होल्गर नेल्सन विधि (Holger Nielsen Method) १६४

१०१. शेफराज विधि १६७
१०२. सिवेस्टर विधि १६८
१०३. मुँह दर मुँह विधि १६९
१०४. इन्जैक्शन लगाने का तरीका १७०
१०५. प्रतिरोधात्मक टीके १७१
१०६. ठण्डे पानी की पट्टियाँ १७३
१०७. भाँप लेना १७४
१०८. गरारे करना १७४
१०९. परिभाषाएँ (दवाइयाँ) १७५
११०. सल्फोनामाइड १७६
१११. पेनिसिलिन १७८
११२. सेलिसलेट (Salisalate) १८३
११३. पुरुष नसबन्दी १८४
११४. महिला नसबन्दी १८५
११५. यकृत (Liver) १८७
११६. जनसंख्या समस्या १८८
११७. परिवार कल्याण १९१
११८. जल २००
११९. कूड़ा करकट का विसर्जन २०४
१२०. मानव मल-मूत्र तथा पशु मल-मूत्र का निवारण २०७
१२१. ग्रामीण स्वच्छता २११
१२२. नेतृत्व २१४
१२३. प्रचार प्रसार में दृष्य श्राव्य साधनों का योगदान २१६
१२४. संचार २१८
१२५. प्रेरणा २२०
१२६. समुदाय में कार्य करने के चरण २२२
१२७. स्वास्थ्य शिक्षा २२६
१२८. स्वास्थ्य सेवाएँ २३०
१२९. सेवाएँ २३३
१३०. बहुउद्देशीय कार्यक्रम योजना २३५
१३१. ग्रामीण स्वास्थ्य योजना २४१
१३२. जन स्वास्थ्य रक्षक के कार्यभार २४२

१. शरीर रचना

मानव शरीर निम्न अवयवों से बना है :

(१) **त्वचा**—यह बाहरी परत है जिसका कार्य शरीर की रक्षा करना है। इसमें छोटे-छोटे छिद्र होते हैं जिनसे पसीना आता है। यह शरीर का तापमान स्थिर रखते हैं। त्वचा कहीं-कहीं पर मोटी हो जाती है जैसे—हथेलियों में व पगथलियों में। यह दो परतों में होती है। ऊपर की परत को इपीडर्मिस (Epidermis) व नीचे की परत को डर्मिस (Dermis) कहते हैं। इसके द्वारा तैल इत्यादि सोख लिये जाते हैं अतः इसके द्वारा मनुष्यों के शरीर में दवाई पहुँचाई जाती है जैसे सिर दर्द में बाम इत्यादि, सिर की त्वचा पर मलने से पहुँचाया जाता है। यह विसर्जन क्रिया में मदद करती है। त्वचा के द्वारा पसीना बाहर निकलता है। इससे शरीर का फालतु साल्ट इत्यादि बाहर निकल जाता है। सूर्य की किरणों से त्वचा अल्ट्रावायोलेट किरणें प्राप्त करती है व विटामिन डी बनाती है व शरीर को पहुँचाती है जिससे रिकेट्स नामक बीमारी नहीं होती है। यह बाहरी वातावरण जैसे गर्मी, सर्दी, कीटाणु इत्यादि से शरीर की रक्षा करती है।

(२) **माँसपेशियाँ**—शरीर का ज्यादातर हिस्सा माँसपेशियों से ढका रहता है। सिर से लगाकर पैरों की पगथलियों तक शरीर माँसपेशियों से ढका रहता है।

ये ३ तरह की होती हैं :

(१) **ऐच्छिक** (Voluntary)

(२) **अनैच्छिक** (Involuntary)

(३) **हृदय की** (Cardiac)।

(१) **ऐच्छिक** (Voluntary)—ये माँसपेशियाँ मानव अपनी इच्छा से सिकोड़ सकता है अथवा फैला सकता है। ये माँसपेशियाँ त्वचा के अन्दर पाई जाती हैं। ये लाल रंग के तन्तुओं से बनी होती हैं। इनमें सिकुड़ने की अर्थात् छोटा तथा मोटा होने की शक्ति होती है। मानव की इच्छानुसार सभी कार्य इन्हीं के द्वारा होते हैं जैसे चलना, नाचना, खाना-पीना, पढ़ना इत्यादि। ये अन्दर की ओर हड्डियों से जुड़ी रहती हैं।

(२) **अनैच्छिक** (Involuntary)—ये माँसपेशियाँ मानव के अधिकार में नहीं होती हैं। ये अपना कार्य स्वयं ही करती हैं। ये भोजन नली, मूत्राशय, धमनियाँ इत्यादि में पाई जाती हैं।

(३) **हृदय की** (Cardiac)—ये मानव के अधिकार में नहीं होती हैं, ये भी अपना कार्य स्वयं ही करती हैं। ये हृदय में पाई जाती हैं।

हड्डियाँ (Bone)—ये मनुष्य के पूरे शरीर में पाई जाती हैं। ये सफेद व कड़ी होती हैं। इसके मज्जा (Marrow) रक्त के लाल कण (Red Cell) बनाते हैं। ये शरीर को आकृति प्रदान करते हैं। यह शरीर की रक्षा करते हैं। ज्यादातर शरीर के महत्वपूर्ण अंग (vital organ) इन्हीं से ढके रहते हैं जैसे—दिमाग, यकृत, तिल्ली, गुर्दे इत्यादि।

खोपड़ी (Skull)—यह शरीर में सबसे ऊपर का भाग है। खोपड़ी की हड्डियाँ मस्तिष्क को ढके रहती हैं। खोपड़ी के पीछे व नीचे के भाग को आधार (Base) कहते हैं। इसमें एक बड़ा छेद होता है जिसमें से स्पायनल कार्ड (Spinal Card) निकलता है। साथ ही इसमें छोटे-छोटे छेद होते हैं। उनमें से शिरायें, धमनियाँ व नाड़ियाँ निकलती हैं।

चेहरे की हड्डियों के जोड़ दृढ़ता से चिपके रहते हैं। नाक व आँख के छिद्र चेहरे की हड्डियों से बनते हैं। मुँह का छेद ऊपरी चेहरे की हड्डी व नीचे का जबड़े (Mandible) की सहायता से बनता है।

रीढ़ की हड्डी :

ये ३३ होती हैं :

सर्विकल (Cervicle) गर्दन में	७
थारोसिक (Thorasic) छाती में	१२
लम्बर (Lumber) कमर में	५
सेक्रम (Sacrum) चूतड़ में	५
कोकीक्स (Cocyx) पूछ की	४

स्पायनल कार्ड (Spinal Card) रीढ़ की हड्डियों के बीच में रहता है। ये रीढ़ की हड्डियाँ गला, कमर व छाती को सीधा रखती हैं।

पसलियाँ (Ribs) :

ये १२ जोड़ होती हैं व बायें व दाहिने छाती में रहती हैं। पीछे की तरफ वरटीब्रा से जुड़ी रहती हैं व सामने की तरफ स्टरनम (Sternum) से जुड़ी रहती हैं परन्तु ऊपर की सिर्फ ७ पसलियाँ ही स्टरनम से जुड़ी रहती हैं। ये पसलियाँ सीने को घेरे रहती हैं और फेफड़े, यकृत, तिल्ली, हृदय को सुरक्षित रखती हैं।

ऊपर का अंग (Upper Limb) :

क्लेविकल (Clavicle)—इसे कालर बोन (Collor bone) भी कहते हैं और गाँवों में इसे हंसली के नाम से जाना जाता है। यह स्टरनम के ऊपर के भाग से कन्धे तक रहती है।

स्केपुला (Scapula)—यह पीठ के पीछे व ऊपर के भाग में होती है। यह पत्ते की तरह होती है। यह हंसली के साथ जोड़ बनाती है।

ह्यूमरस (Humerus)—यह ऊपर के बाजू में होती है। यह ऊपर की तरफ कन्धे में स्केपुला व हंसली से मिलकर कन्धे का जोड़ बनाती है व नीचे की ओर कोहनी का जोड़ रेडियस व अल्ना से मिलकर बनाती है। यह लम्बी होती है।

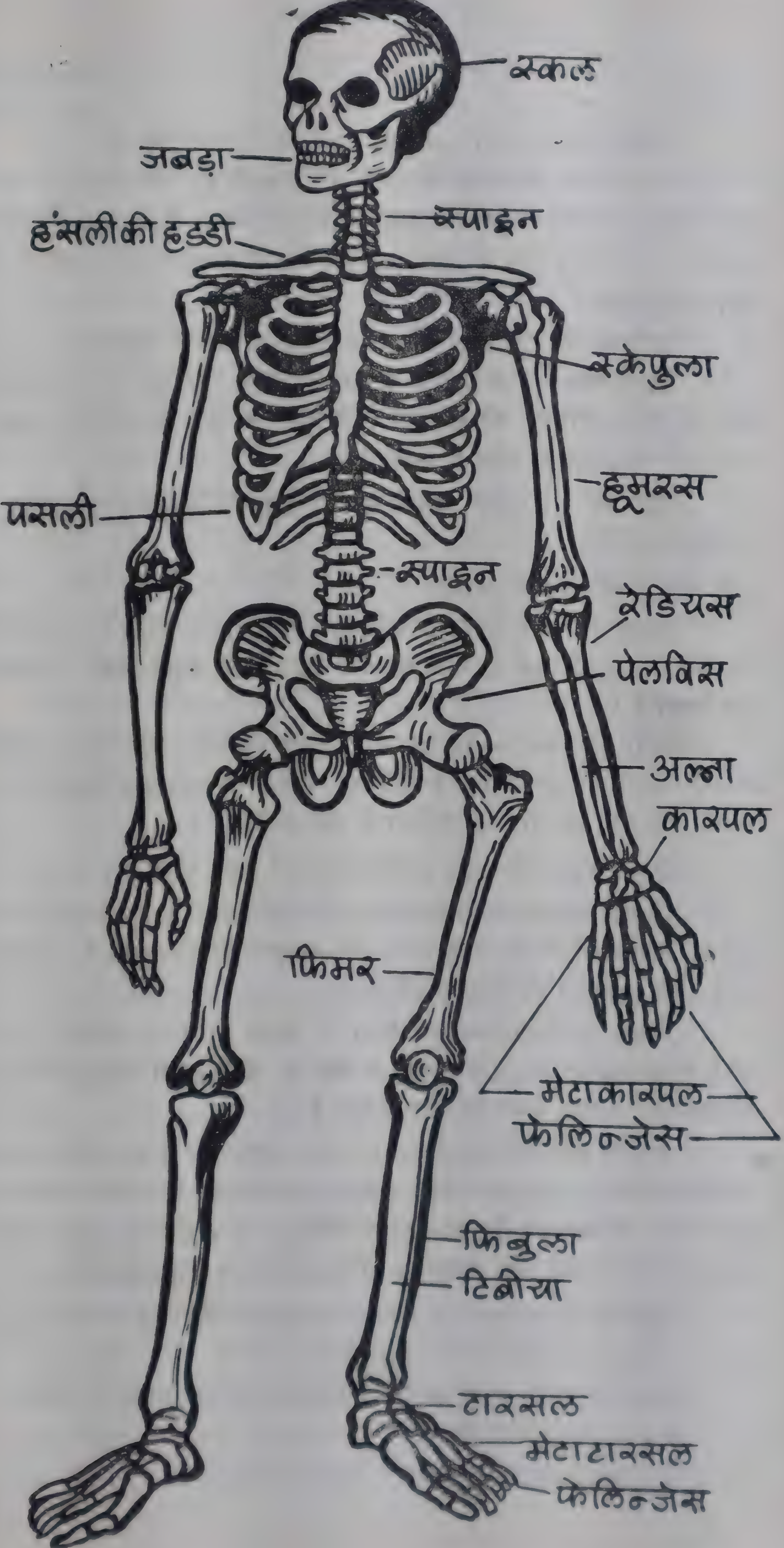
स्कल
जबड़ा
स्पाइन
हंसली की हडडी
स्केपुला
ह्यूमरस
पसली
स्पाइन
रेडियस
पेलविस
अल्ना
कारपल
फिमर
मेटाकारपल
फेलिन्जेस
फिबुला
टिबीया
टारसल
मेटाटारसल
फेलिन्जेस

अग्रबाहु (Forearm)—अग्रबाहु इसमें दो हड्डियाँ होती हैं :

(१) रेडियस जो बाहर की तरफ अर्थात् अंगूठे की तरफ व दूसरी अल्ना जो छोटी अंगुली की तरफ होती है। ये हड्डियाँ ऊपर की तरफ ह्यूमरस से मिलकर कोनी का जोड़ बनाती हैं व नीचे की तरफ कारपल बोन से कलाई का जोड़ बनाती हैं।

हाथ की हड्डियाँ :

कारपल—ये आठ होती हैं व ४-४ की दो पंक्तियों में रहती हैं।

मेटाकारपल—ये ५ होती हैं व ऊपर की तरफ कारपल से जोड़ बनाती हैं व नीचे की तरफ अंगुलियों की हड्डियाँ फेलिन्जैस से जोड़ बनाती हैं। हथेली का ढाँचा इन्हीं हड्डियों की मदद से बनता है।

फेलिन्जैस—ये प्रत्येक अंगुली में ३ व अंगूठे में २ होते हैं। ये प्रत्येक अँगुली के जोड़ बनाते हैं।

कूल्हा तथा निचले अंग (Pelvis) :

पेल्विस (Pelvis)—यह इननामिनेट बोन के द्वारा बनता है। पीछे की ओर कोकिक्स (Cocyx) रहती है, नीचे की ओर यह पैर की हड्डी फिमर (Femer) से जुड़ा रहता है।

फिमर (Femer)—यह एक लम्बी हड्डी होती है। यह पैर के अग्रभाग में होती है। ऊपर की तरफ यह इननामिनेट बोन (Innominate Bone) से जोड़ बनाती है व नीचे की ओर यह टीबिया से जोड़ बनाती है।

पटेला (Patella)—यह घुटने में आगे की तरफ रहता है।

टाँग की हड्डियाँ—टीबिया ऊपर की ओर फिमर से घुटने का जोड़ बनाती है। यह पैरों के सामने की तरफ हाथों द्वारा महसूस की जा सकती है। टारसल बोन द्वारा टखने (ankle) का जोड़ बनाती है।

फिबुला (Fibula)—यह टीबिया के बाहर की तरफ रहती है व इसका ऊपर का भाग घुटने का जोड़ बनाने के काम में नहीं आता परन्तु नीचे का भाग टारसल बोन के साथ टखने का जोड़ बनाता है।

टारसल बोन (Tarsal bone)—ये ७ होती हैं। ये ऊपर की तरफ टखने का जोड़ टीबिया व फिबुला के साथ बनाती है व नीचे की ओर मेटा टारसल से जोड़ बनाती है। **मेटाटारसल** पैर को आकृति देती है। ये ५ होती हैं। ऊपर की ओर ये टारसल से व नीचे की ओर फेलिन्जस (Phalynges) से जोड़ बनाती है।

अँगुलियों की हड्डियाँ—ये प्रत्येक पैर में १४ होती हैं। प्रत्येक अँगुली में ३, ३ व अँगूठे में २ होती हैं।

जोड़ (Joint)—ये दो या दो से अधिक हड्डियों के मिलने से बनते हैं।

ये दो प्रकार के होते हैं :

(१) अचल जोड़, (२) सचल जोड़।

(१) **अचल जोड़**—इस प्रकार के जोड़ में हड्डियों के किनारे एक दूसरे में जुड़े रहते हैं अतः जोड़ में गतिशीलता बिल्कुल नहीं रहती। जैसे मुँह के जोड़ व खोपड़ी की हड्डी के जोड़।

(२) **सचल जोड़**—इस प्रकार के जोड़ों में गतिशीलता रहती है। ये जोड़ एक केप्सूल से एक दूसरे से दृढ़ता से जुड़े रहते हैं। केप्सूल के अन्दर की झिल्ली से एक प्रकार का तरल पदार्थ निकलता है जिसे सायनोवियल फ्लूड (Synovial fluid) कहते हैं। यह चिकना होता है व जोड़ों को चिकना रखता है। अतः जोड़ों की गतिशीलता में बाधा नहीं आने देता।

(१) **गेंद तथा कटोरीदार जोड़**—इनमें एक हड्डी का गोल उभरा हुआ (convex type) सिरा दूसरी हड्डी के कटोरी की तरह गोल व धंसा हुआ कानकेव (concave type) के आकार के गड्ढे में पूरा आ जाने से बनता है। अतः इनमें गति अधिक होती है। अतः ये चारों ओर स्वतन्त्र रूप से गति ले सकते हैं जैसे कन्धे का जोड़, कूल्हे का जोड़।

(२) **चूलदार जोड़**—इनमें हड्डियों की गति सिर्फ एक ही तरफ को हो सकती है। जैसे कोनी व घुटने का जोड़।

(३) **कम सचल जोड़**—इनमें गति सीमित होती है, जैसे रीढ़ की हड्डियों के जोड़।

खोपड़ी व उसके अंग :

यह हड्डियों की बनी होती है व मस्तिष्क (Brain) को ढके रहती है। मस्तिष्क शरीर की सभी गतिविधियों पर दृष्टि रखता है। मस्तिष्क जीवन का महत्वपूर्ण (vital) अंग है। यह खोपड़ी की हड्डियों में सुरक्षित रहता है।

छाती और उसके अंग :

यह पसलियों, माँसपेशियों से घिरी रहती है। इसमें हृदय होता है जो शरीर के सारे भागों में खून पहुँचाता है। इसमें ४ चेम्बर होते हैं। दो दाहिनी तरफ व दो बायीं ओर। बायीं तरफ शुद्ध खून रहता है जो एक बड़ी धमनी जिसे एवारटा (Avorta) कहते हैं, की सहायता से छोटी-छोटी धमनियों में जाता है व उनके द्वारा सारे शरीर में पहुँचता है व शरीर को शक्ति प्रदान करता है। दाहिनी ओर अशुद्ध खून रहता है जोकि शिराओं द्वारा सारे शरीर से इकट्ठा करके लाया जाता है। उसे हृदय फेफड़ों में पल्मोनरी धमनी द्वारा पहुंचाता है व रक्त वहाँ शुद्ध होकर वापिस पल्मोनरी शिरा द्वारा हृदय के बायें भाग में आ जाता है।

फेफड़े—ये दो होते हैं। एक दाहिनी तरफ रहता है व दूसरा बाँयीं तरफ होता है। यह स्पन्ज की तरह होता है व पूरे वक्ष को घेरे रहता है। इसमें वातावरण से हवा श्वसन नली के द्वारा आती है व यहाँ अशुद्ध खून का शुद्धिकरण होता है।

उदर व उसके अंग

उदर व छाती के बीच में एक परत होती है जो माँसपेशियों की बनी होती है, उसे डायफ्राम कहते हैं। पेट में दाहिनी ओर पसलियों के नीचे यकृत होता है व बायें तरफ पसलियों के नीचे तिल्ली होती है व पीठ की तरफ गुर्दे होते हैं। ये दो होते हैं—एक बायीं तरफ रहता है व दूसरा दाहिनी तरफ रहता है। पेट में ऊपर व बीच की ओर अमाशय होता है। इसमें भोजन इकट्ठा होता है व यहाँ भोजन में पाचक रस मिलता है व भोजन छोटी आँत में आ जाता है व यहाँ भी पाचक रस मिलता है व भोजन हजम होता है। उदर में ही अमाशय के पीछे पेनक्रियाज ग्रन्थि होती है जो इनसुलिन नामक रस उत्सर्जन करती है जो कार्बोहाइड्रेट के हजम करने में सहायक होता है। पेट के नीचे व बीच में पेशाब की थैली होती है। जिसमें पेशाब इकट्ठा होता है व पेशाब नली (urethra) द्वारा बाहर निकाल दिया जाता है।

●

२. पाचन संस्थान
(DIGESTIVE SYSTEM)

पाचन-संस्थान में निम्नलिखित अंग आते हैं :

(१) मुँह (जबान, दाँत, लार की ग्रन्थियाँ), (२) भोजन नली, (३) अमाशय, (४) छोटी आँत, (५) बड़ी आँत, (६) रेक्टम, (७) मलद्वार, (८) यकृत, (९) पेनक्रियाज, (१०) पित्ताशय।

(१) **मुँह** (Mouth)—मुँह से पाचन संस्थान की शुरूआत होती है। यह एक गुहिका (cavity) है। जिसमें सामने, दाहिने व बायें तरफ दांत होते हैं जो गालों के व होठों के द्वारा ढके रहते हैं। ये मसूड़ों में फिक्स होते हैं। नीचे की ओर जबान होती है। यह माँस-पेशियों की बनी होती है व चारों तरफ घूम सकती है। सर्वप्रथम खाना इसी में जाता है। मुँह में ही लार की ग्रन्थियाँ लार का उत्सर्जन करती है जो भोजन में मिल जाता है। लार में भोजन को पचाने में मदद करने वाले एन्जाइम्स (Enzymes) होते हैं, जो भोजन में मिल जाते हैं। दांत भोजन को छोटे-छोटे टुकड़ों में परिवर्तित कर देते हैं। जबान भोजन को इधर से उधर पहुंचाने में मदद करती है, व जबान के द्वारा ही अलग-अलग स्वाद मालूम होता है। जब भोजन एक बोलस (Bolus) के रूप में हो जाता है तो जबान की मदद से भोजन, भोजन नली में चला जाता है। **इपीग्लाटिस**—यह भोजन निगलते समय स्वांसनली को बन्द कर देता है।

भोजन नली—यह एक खोखली नली होती है जो गले से शुरू होती है व अमाशय के ऊपरी भाग (cardiac end) पर खुलती है।

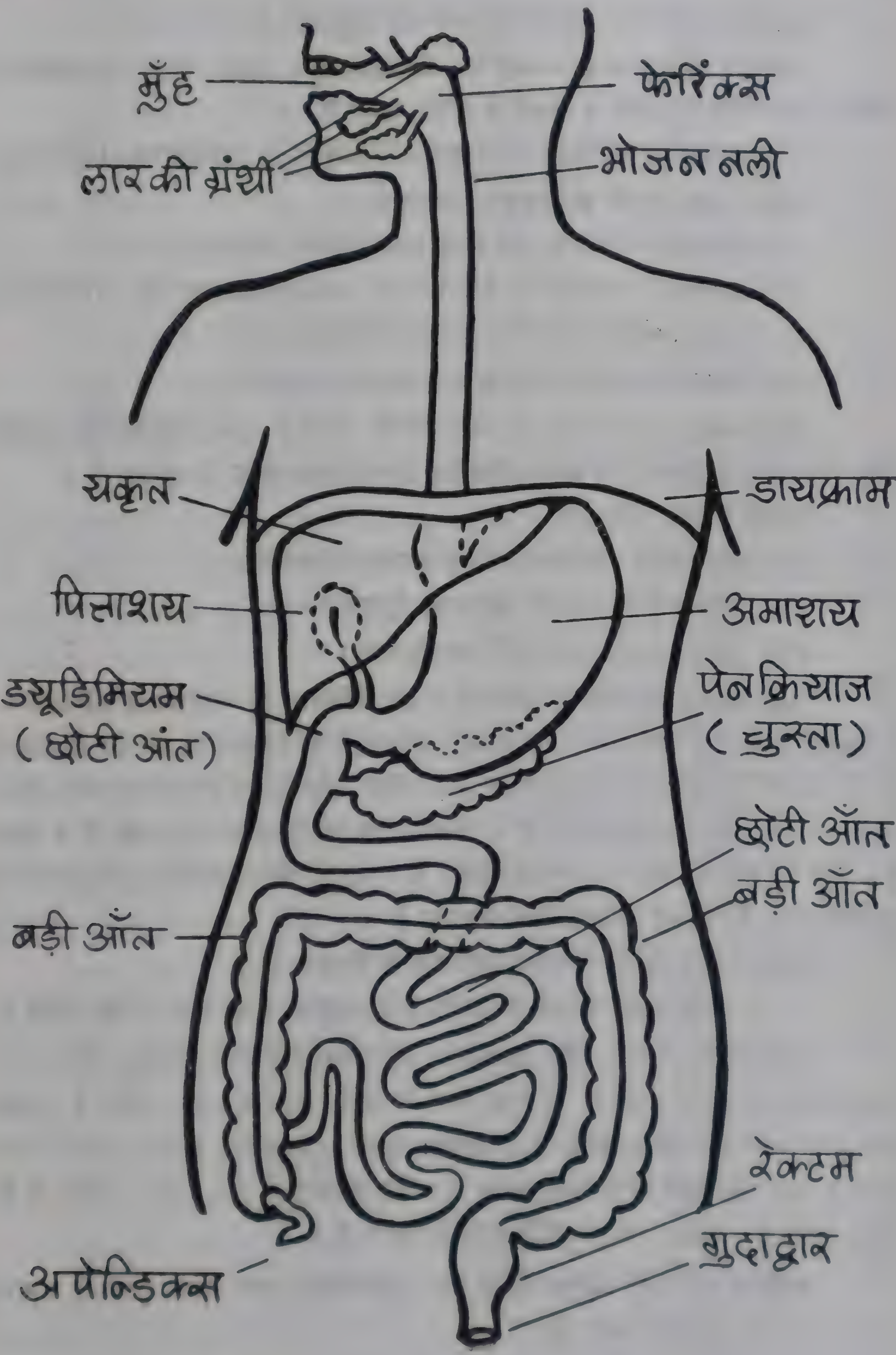
मुँह
लार की ग्रंथी
फेरिंक्स
भोजन नली
यकृत
डायफ्राम
पित्ताशय
अमाशय
डयूडिमियम
(छोटी आंत)
पेन क्रियाज
(चुस्ता)
छोटी आँत
बड़ी आँत
बड़ी आँत
रेक्टम
गुदाद्वार
अपेन्डिक्स

कार्य—भोजन को मुँह से अमाशय तक पहुँचाती है ।

अमाशय (Stomach)—यह पेट में रहता है । इसमें १ से १½ किलो तक भोजन रह सकता है । इसे ३ भागों में बाँटा जाता है :

(१) फन्डस (Fundus), (२) बाडी (Body), (३) पायलोरस (Pylorus) ।

कार्य—यह भोजन को इकट्ठा रखता है ।

(२) अमाशय में भोजन पूरी तरह मिल (Mix) जाता है ।

(३) अमाशय में पाचक रस (Grastric Juice) निकलता है जो भोजन में मिल जाता है । अतः भोजन को पचने में आसानी होती है ।

(४) अमाशय में भोजन का कुछ हिस्सा पच जाता है ।

छोटी आँत—यह करीब २५ फीट लम्बी होती है, यह अमाशय के पायलोरिक सिरे से शुरू होती है व इसका निचला हिस्सा बड़ी आँत में खुलता है ।

इसके ३ भाग होते हैं :

(१) ड्योडेनियम (Duodenum) ऊपर का हिस्सा ।

(२) जेजुनम (Jejunum) बीच का हिस्सा ।

(३) इलियम (Illeum) नीचे का हिस्सा ।

इसमें खाना अमाशय से जाता है । ड्यूडेनियम में बाइलडक्ट (Bileduct) व पेनक्रियेटिक डक्ट (Pancreatic duct) खुलती है व इसका रस भोजन में मिलता है जो भोजन को पचाने में मदद करता है । छोटी आँत में सेगमेन्टेशन मूवमेन्ट (Segmentation movement) होते हैं । इसमें आँत की दिवाल सिकुड़ती है व फैलती है । अतः भोजन को पचाने में मदद करती है । दूसरे पेरिस्टलसिस (Paristalsis) मूवमेन्ट होते हैं । इसमें भोजन आगे सरकता है ।

कार्य—(१) इसमें भोजन पाचक रस से मिलता है ।

(२) इससे भोजन पचता है व पचा हुआ भाग यह सोख लेती है ।

बड़ी आँत—रेक्टम और मलद्वार यह इलियो-कोलिक जंक्शन (Illo-colic Junction) से शुरू होती है व गुदा द्वार के यहाँ समाप्त हो जाती है । इसके नीचे वाले भाग को रेक्टम कहते हैं । इसका लूमन (lumen) छोटी आँत से बड़ा होता है अतः इसे बड़ी आँत कहा जाता है । वैसे लम्बाई में यह छोटी आँत से कम लम्बी होती है । इसमें भोजन छोटी आँत से आता है ।

कार्य— (१) यहाँ भोजन में से बचा हुआ पानी सोख लिया जाता है । करीब ६०% से ८०% पानी सोखती है ।

(२) **सलाइन**—सलाइन बड़ी आँत सोख लेती है ।

(३) **ग्लूकोज**—यह ६ ग्राम ग्लूकोज को १ घन्टे में सोख लेती है । अतः ५% ग्लूकोज हम रेक्टम के द्वारा दे सकते हैं ।

(४) **दवाइयाँ**—कुछ दवाइयाँ भी यह सोख लेती है ।

(५) जो पदार्थ शरीर के लिए उपयोगी नहीं होते उन्हें यह शरीर के बाहर मल द्वारा निकाल देती है।

यकृत (Liver)—यह शरीर की सबसे बड़ी ग्रन्थि होती है। यह पेट में दाहिने व ऊपर की ओर पसलियों के पीछे होता है। इसका वजन मनुष्यों में १·४ से १·६ किलोग्राम व स्त्रियों में १·२ से १·४ किलोग्राम होता है। यह १५ से २० से. मी. चौड़ा व १५ से १६ से. मी. लम्बा तथा १२ से १५ से. मी. मोटा होता है। यह दो मुख्य भागों से विभक्त होता है :

(१) दाहिना लोब, (२) बाँया लोब।

यकृत (Liver) **के कार्य**—यह शरीर का एक महत्वपूर्ण अंग है। यह शरीर में निम्नलिखित कार्य करता है :

(१) यह इन्टरमिजियट मेटाबोलिज्म (Intermediate metabolism) करता है अर्थात् आँत से सोखे गये पदार्थों को यह ऊतकों (Tissue) के उपयोगी पदार्थों में बदल देता है तथा यह व्यर्थ पदार्थों को व विषैले पदार्थों को बाइल रस (Bile Juice) के द्वारा आँत में पहुँचा देता है जो टट्टी व मूत्र के द्वारा बाहर निकाल दिये जाते हैं।

कार्बोहाइड्रेट—(१) यह कार्बोहाइड्रेट को ग्लूकोज में परिवर्तित करता है। (२) यह लेक्टिक एसिड, पायवुरिक एसिड व ग्लिसराल को ग्लूकोज व ग्लायकोजन में परिवर्तित कर देता है। (३) यह ग्लायकोजन को सुरक्षित रूप से जमा कर लेता है व जब रक्त में ग्लूकोज कम हो जाता है तो जमा ग्लायकोजन को रक्त में ग्लूकोज के रूप में पहुँचा देता है अतः यह रक्त में ग्लूकोज का प्रतिशत व्यवस्थित रखने में सहायता करता है।

वसा (Fat)—(१) यह वसा के आक्सीडेसन में मदद करता है अर्थात् वसा को कारबोलिक एसिड व पानी के अन्तिम पदार्थ में तोड़ देता है।

(२) यह पित्त के लवण बनाता है जो वसा को पचाने व सोखने में मदद करते हैं।

रक्त—(१) यह भ्रूण में रक्त के लाल कणों को बनाता है।

(२) यह रक्त के लाल कणों के नष्ट होने में भी भाग लेता है।

(३) यह रक्त से बिलिरुबिन को हटाता है।

(४) रक्त का थक्का जमाने के लिए प्रोथ्रोम्बिन तथा फाइब्रीनोजन का निर्माण विटामिन 'के' की सहायता से करता है।

(५) यह रक्त के तरल भाग (Plasma) के प्रोटीन का निर्माण करता है।

(६) यह चिकनाई, आयरन (लोह तत्व) को सुरक्षित जमा रखता है व विटामिन ए व डी को भी सुरक्षित जमा रखता है व जरूरत होने पर शरीर के ऊतकों (tissue) को पहुँचाता है।

(७) यह भारी मेटल्स, विषाणु, विषैले पदार्थ व दवाइयों को बाइल रस के द्वारा आँत में पहुँचाता है जहाँ से उनका विसर्जन मूत्र तथा मल के द्वारा हो जाता है।

(८) यह कोलेस्ट्राल व बाइल पिगमेन्ट का भी विसर्जन बाइल रस के द्वारा करता है।

(९) कुछ दवाइयाँ जैसे स्ट्रीचिनिन, निकोटिन इत्यादि यकृत के द्वारा नष्ट कर दी जाती हैं।

(१०) आर. ई. सेल (R. E. Cell) कुछ कीटाणुओं को नष्ट कर देते हैं।

३. श्वसन संस्थान

श्वसन क्रिया जीवित प्राणियों व पौधों सभी में होती हैं। हवा नाक व मुंह से जाती है व क्रमशः स्वास नली (Trachea, Broncus) व फेफड़ें में जाती है।

नाक—सर्वप्रथम हवा नाक में प्रवेश करती है, नाक में रास्ता कुछ टेड़ा-मेड़ा होता है व नाक से म्यूकस (Mucus) नामक चिपचिपा व चिकना रस निकलता रहता है, व नाक में छोटे-छोटे बाल होते हैं अतः हवा के साथ जो धूल के कण व कीटाणु इत्यादि जाते हैं वे चिपक जाते हैं व सिर्फ शुद्ध हवा ही अन्दर जा सकती है व नाक में सूंघने की शक्ति रहती है। अतः दुर्गन्धमय हवा को हम अन्दर नहीं जाने देते हैं।

स्वांस नली (Trachea)—इसे हवा की नली (Windpipe) भी कहते हैं। यह लगभग चार इंच लम्बी होती है। यह गले से निकलकर पाँचवीं वर्टीब्रा के अन्दर तक जाती है जहाँ यह दो नलियों में बँट जाती है। उसकी अन्दर की परत श्लेष्मा (Mucous) झिल्ली से बनी होती है जिसमें महीन बाल होते हैं। ये बाल ऊपर की तरफ हिलते रहते हैं अतः धूल के कण, पराग, कीटाणु आदि बाहर निकाले जाते हैं।

श्वसनी (Bronchi)—ये दो होती हैं। एक दाहिने फेफड़े में जाती है व दूसरी बायें फेफड़ें में जाती है।

फेफड़े—फेफड़े संख्या में दो होते हैं और श्वसन क्रिया के प्रमुख अंग हैं। ये स्पंज की तरह के होते हैं। छाती में रहते हैं व इनके मध्य में हृदय व बड़ी रक्तवाहिका द्वारा पृथक किये जाते हैं। ये शंख के आकार के होते हैं। ये लोब्स (Lobes) में विभाजित होते हैं। दाहिने फेफड़े के तीन व बायें फेफड़े के दो लोब होते हैं। इनमें खून की नसों का जाल सा होता है। फेफड़ों में रक्त हवा में से आक्सीजन सोख लेता है व कार्बन-डाइ-आक्साइड छोड़ देता है। यह कार्बन-डाइ-ऑक्साइड बची हवा से मिलकर वापस बाहर निकल आती है।

श्वसन के कार्य (Function of Respiration) :

(१) इसके द्वारा शरीर को आक्सीजन मिलती है व शरीर में से कार्बन-डाइ आक्साइड बाहर निकाल दी जाती है।

(२) कुछ पदार्थ जैसे अल्कोहल, अमोनिया इत्यादि शरीर से बाहर निकाल दिये जाते हैं।

(३) रक्त इसके द्वारा कुछ दवाइयाँ व गैसेस सोख लेता है जैसे—कार्बन मोनो आक्साइड, अमाईल नाइट्रेट, विक्स इत्यादि।

(४) **तापमान**—यह शरीर का तापमान स्थिर रखने में मदद करती है। अगर शरीर का तापमान बढ़ जाता है तो शरीर से निकलने वाली हवा गरम निकलती है।

(५) जब श्वांस तेज चलता है तो हृदय भी तेजी से धड़कने लगता है अतः यह रक्त के दौड़ने में मदद करती है।

(६) अगर कोई बाहरी वस्तु श्वांस के द्वारा अन्दर चली जाती है तो खाँसी या छींक के द्वारा बाहर निकाल दी जाती है।

(७) बोलना भी इसी के अन्तर्गत आता है। हमेशा मनुष्य श्वांस छोड़ते समय ही बोलता है।

(८) इसके द्वारा ही हम किसी भी वस्तु को सूँघते हैं।

श्वसन क्रिया की विधि (Mechanism of Respiration) :

श्वसन में दो क्रियायें होती हैं :

(१) श्वाँस लेना (Inspiration)

(२) श्वाँस छोड़ना (Expiration)।

श्वांस लेना—जब दिमाग से इम्पल्स (Impulse) आता है तो सभी पसलियाँ (Inter costal) ऊपर व बाहर की ओर उठ जाती है व डायफ्राम (छाती व पेट के बीच की परत) के सिकुड़ने के कारण डायफ्राम नीचे की ओर चला जाता है अतः छाती का व्यास आगे से पीछे की तरफ व ऊपर से नीचे की तरफ बढ़ जाता है अतः छाती की गुहिका (Cavity) बड़ी हो जाती है, व फेफड़े फूल जाते हैं अतः छाती में दबाव (Pressure) कम हो जाता है और इस दबाव को बराबर करने के लिए हवा नाक या मुँह द्वारा अन्दर फेफड़ों में पहुँच जाती है।

एक आम आदमी सोचता है कि हवा अन्दर जाती है इसलिये छाती फैलती है परन्तु होता इसका उल्टा है। अर्थात् छाती फैलती है अतः हवा अन्दर जाती है।

श्वांस छोड़ना (Expiration)—आखिर में सभी माँसपेशियाँ फैल (Relax) जाती हैं अतः फेफड़ों पर उनका दबाव पड़ता है और वह दबाव (Pressure) वातावरण के दबाव से अधिक होता है अतः हवा फेफड़ों में से बाहर निकल जाती है।

श्वसन संस्थान

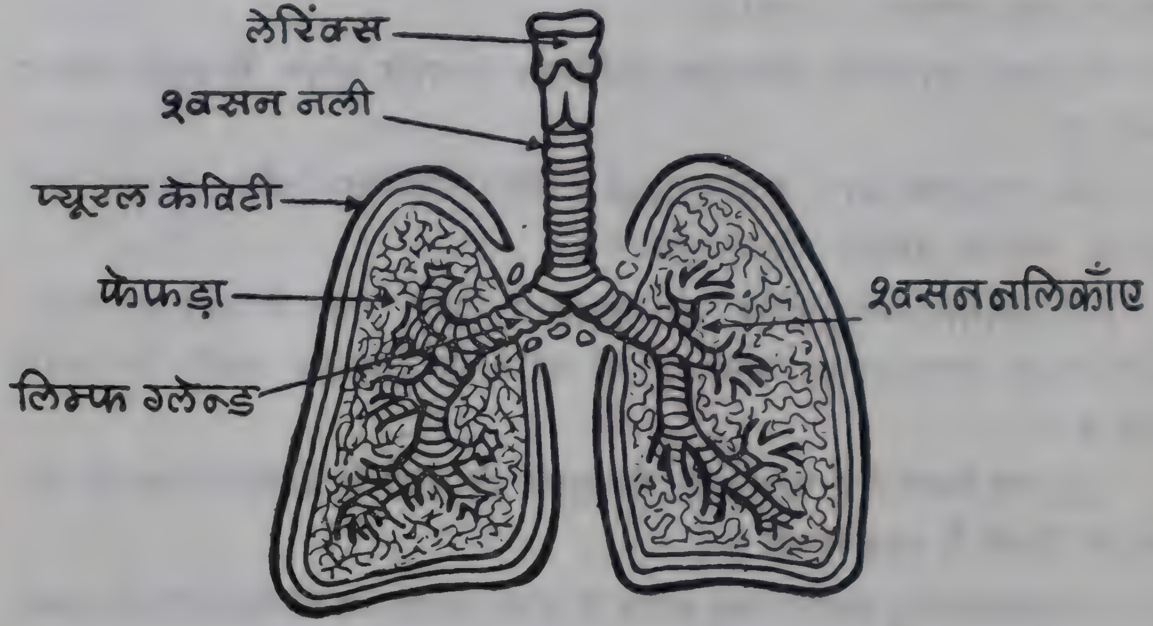

विसर्जन संस्थान

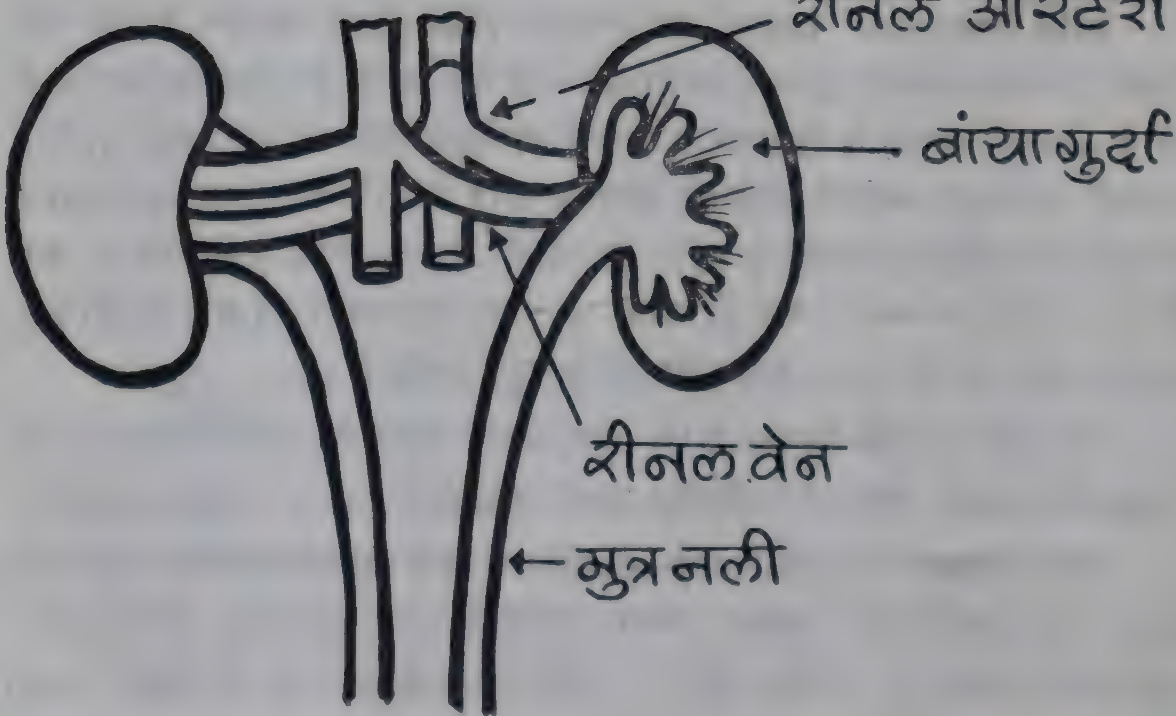

इस तरह स्वसन क्रिया १ मिनिट में वयस्क में १४ से १८ बार होती है।
,, ,, ,, नवजात शिशु में ४० बार
,, ,, ,, १ वर्ष में ३० बार
,, ,, ,, २ से ५ वर्ष में २४ बार

●

४. विसर्जन क्रिया
(EXCREATORY SYSTEM)

विसर्जन क्रिया के द्वारा शरीर अपनी उपयोगी वस्तु को बाहर निकाल देता है अगर किसी कारण से इन वस्तुओं को बाहर निकालने से असमर्थ हो जाता है तो विभिन्न प्रकार के रोग हो जाते हैं व मनुष्य का जीवन संकट में पड़ जाता है।

विसर्जन क्रिया में निम्न अंग भाग लेते हैं :

(१) गुर्दे (Kidney), (२) त्वचा (Skin), (३) फेफड़े (Lungs), (४) पाचन-संस्थान (Gastro-Intestinal tract), (५) लार की ग्रन्थि (Salivary gland), (६) यकृत (Liver)।

(१) **गुर्दे** (Kidney)—ये कमर के हिस्से में रहते हैं। ये दो होते हैं एक दाहिनी तरफ रहता है दूसरा बायीं तरफ। दायाँ गुर्दा बायें की अपेक्षा थोड़ा नीचे रहता है क्योंकि दायें यकृत अधिक भाग घेरे रहता है। इसकी लम्बाई ४ से ५ इन्च, चौड़ाई २½ इन्च तथा मोटाई १½ इन्च होती है। इसका वजन लगभग १४० ग्राम होता है। ये फलि (Bean) के आकार के होते हैं। इनकी बाहरी सतह उभरी (convex) हुई रहती है व भीतरी सतह धंसी हुई रहती है। इनमें करीब १० लाख नेफ्रान्स होते हैं। इनमें रक्त आता है व शुद्ध होता है। साधारणतया इनमें से १५० लिटर रक्त प्रतिदिन निकलता है परन्तु सभी वापिस सोख लिया जाता है व करीब १½ लिटर मूत्र प्रतिदिन बाहर निकाल दिया जाता है।

कार्य—(१) यह नाइट्रोजन व सल्फर की वस्तुओं का विसर्जन करती है जो कि शरीर के लिए उपयोगी नहीं है।

(२) यह शरीर में पानी का सन्तुलन बराबर रखती है।

(३) यह रक्त को पतला नहीं होने देती अतः रक्त का व कोशिकाओं का दबाव बराबर रखने में मदद देती है।

(४) यह शरीर से विषैले पदार्थ व दवाइयों का विसर्जन करती है।

मूत्र नली (Ureter)—ये दो नलियाँ होती हैं। प्रत्येक एक-एक गुर्दे से लगी होती है और मूत्राशय तक जाती है। इसकी लम्बाई लगभग चौदह से सोलह इन्च तक होती है व सलाई जितनी मोटी होती है।

कार्य—ये गुर्दे से मूत्र मूत्राशय तक पहुँचाती है।

मूत्राशय (Urinary bladder)—यह नाशपाती के आकार का होता है। यह मूत्र को जमा करता है। यह पेट के निचले भाग (पेड़ू) में रहता है। इसमें २२० सी. सी. तक मूत्र रखने की गुन्जाइश रहती है परन्तु अलग-अलग मनुष्यों में यह अलग-अलग रहती है। यह १२० सी. सी. से ३२० सी. सी. तक हो सकती है।

मूत्र मार्ग (Urethura)—यह एक नली होती है जो मूत्राशय से निकलती है व बाहरी छिद्र तक जाती है। इसकी अन्दर की परत श्लेष्मा (Mucus) झिल्ली होती है। स्त्रियों का मूत्र मार्ग १ से १$\frac{1}{2}$ इन्च लम्बा व पुरुष का मूत्र मार्ग ७ से ९ इन्च लम्बा होता है।

कार्य—यह मूत्र को मूत्राशय से बाहर निकाल देता है।

मूत्र करना (Micturation)—मूत्र करने की क्रिया को मूत्र करना (Micturation) कहते हैं। मूत्र करने की इच्छा मूत्राशय में बढ़े दबाव के कारण होती है। जब ६ से ८ ओंस मूत्र मूत्राशय में इकट्ठा हो जाता है तो दबाव बढ़ जाता है। अतः दिमाग से इम्पल्स आने पर मूत्राशय की माँसपेशियाँ सिकुड़ती हैं व स्फिंकटर ढीले हो जाते हैं व पेट की माँसपेशियाँ भी सिकुड़ती हैं जिससे मूत्राशय से मूत्र, मूत्र मार्ग के द्वारा बाहर निकल जाता है।

(2) **त्वचा** (Skin)—यह शरीर का बाहरी आवरण बनाती है। यह मुख्यतया दो परतों में होती है : (१) इपीडर्रमिस (Epidermis), (२) डरमिस (Dermis)।

(१) **इपीडरमिस** (Epidermis)—इसमें शिरायें व धमनियाँ नहीं होती हैं। अतः इनसे खून का दौरा नहीं होता। यह अपना भोजन लिम्फ (Lymph) से प्राप्त करती है। इनमें नाड़ियाँ होती हैं। इसमें निम्नलिखित परतें होती हैं : (१) स्ट्राएटम कारनियम (Stratum Corneum) (२) स्ट्राएटम ल्यूसिडम (Stritum Lucidum) (३) स्टाएटम-ग्रेन्यूलोशन (Striatum granulosm) (४) रेटी म्यूकोजम (Rete mucosum)।

(२) **डरमिस** (Dermis)—इसमें निम्नलिखित परत होती हैं : (१) लार्ज सेल (Large cell) (बड़ी कोशिकाएँ) (२) फाइन इलेस्टिक फाइबर (Fine elastic fibers) (३) केपिलरी ब्लड वेसल्स (Capillary Blood Vessels) (४) नाड़ियों के सिरे (Sensory nerve ending) (५) बालों की जड़ें (Hair root) (६) पसीना निकालने वाली ग्रन्थियाँ (Sweat gland) (७) सबेसियस ग्लेन्ड (Sebaceous gland) (८) In voluntary mucile fibers.

कार्य

(१) **रक्षा**—यह चोट से, कीटाणुओं से, गर्मी-सर्दी इत्यादि से शरीर की रक्षा करती है।

(२) इसके द्वारा गर्मी, सर्दी, दर्द इत्यादि महसूस होते हैं।

(३) यह शरीर का तापमान स्थिर रखने में मदद करती है।

(४) इसके द्वारा कुछ दवाइयाँ सोख ली जाती हैं जैसे बाम, विक्स, इथाइल क्लोराइड इत्यादि ।

(५) इसके द्वारा पानी, साल्ट इत्यादि का विसर्जन पसीने के द्वारा होता है ।

(६) सबेशियस ग्लेन्ड से चिकना पदार्थ रिसता है जो त्वचा को चिकना रखने में मदद करता है।

(७) शरीर में जल व लवण का बेलेन्स बनाये रखने में मदद करती है ।

(८) विटामिन डी सूर्य की किरणों से प्राप्त करती है जो शरीर के विकास में मदद करता है ।

(९) यह वसा, पानी, लवण व ग्लूकोज को जमा करती है व आवश्यकता होने पर ऊतकों तक पहुँचाती है ।

फेफड़े (Lungs)—ये भी विसर्जन क्रिया में मदद करते हैं। इनके द्वारा कार्बन-डाइ-ऑक्साइड का विसर्जन होता है तथा ये अल्कोहल इत्यादि कुछ दूसरे पदार्थों का भी विसर्जन करते हैं।

कुछ मात्रा में ये पानी का भी विसर्जन करते हैं ।

पाचन संस्थान—भोजन के उपयोगी पदार्थ आँत के द्वारा सोख लिये जाते हैं व अनउपयोगी पदार्थ पाचन संस्थान से मल द्वारा निष्काषित कर दिये जाते हैं। इसके द्वारा कुछ दवाइयों व विषैले पदार्थों का भी विसर्जन किया जाता है ।

लार की ग्रन्थि—कुछ हेवी मेटल्स का इसके द्वारा विसर्जन किया जाता है

यकृत—(१) इसके द्वारा बिलिरुबिन का विसर्जन किया जाता है ।

(२) कुछ विषैले पदार्थ, कीटाणु, दवाइयों को यह बाइल रस के द्वारा आंत में पहुँचाता है । जहाँ मल द्वारा इनका विसर्जन कर दिया जाता है ।

५. रक्त संचार प्रणाली
(CIRCULATORY SYSTEM)

मानव शरीर में रक्त हमेशा दौड़ता रहता है व शरीर को शक्ति प्रदान करता है । यह अनउपयोगी वस्तुओं को बाहर निकाल देता है, व घाव इत्यादि के होने पर या संक्रमण होने पर रक्त के सफेद कण पहुँच जाते हैं व कीटाणुओं पर आक्रमण कर देते हैं । इस प्रकार रक्त मनुष्य की संक्रमण से रक्षा करता है । शरीर में लगभग ४ से ५ लिटर रक्त होता है जो लगभग १२०० सी. सी. आक्सीजन शरीर के ऊतकों को पहुँचाता है । जो सिर्फ ५ मिनिट के लिए काफी होती है व शरीर को फिर से आक्सीजन की जरूरत होती है अतः शरीर को आक्सीजन पहुँचाने के लिए रक्त को हमेशा दौड़ते रहना पड़ता है । यह कार्य रक्त, हृदय, धमनियों व शिराओं के द्वारा करता है ।

हृदय—यह शंख के आकार का खोखला माँसपेशियों का बना अंग है जिसका चौड़ा भाग ऊपर को व नोंक नीचे की ओर रहती है, व बांयी ओर झुकी रहती है। यह वक्ष में स्टरनम हड्डी के पीछे, दाहिनी ओर की अपेक्षा बाईं ओर अधिक रहता है। इसका $\frac{1}{3}$ भाग छाती के दाईं ओर तथा $\frac{2}{3}$ भाग छाती में बायीं ओर होता है। यह १२ से. मी. लम्बा, ८ से ९ से. मी. चौड़ा व ६ से. मी. मोटा होता है।

यह मजबूत झिल्ली के परदे (Septum) द्वारा दो भागों में विभाजित होता है व प्रत्येक भाग दो-दो भागों में विभाजित हो जाते हैं। इस तरह यह चार भागों में विभाजित हो जाता है। ऊपर का भाग एट्रीया व नीचे के भाग को वेन्ट्रीकल कहते हैं। इस तरह दाँया व बाँया एट्रिया व दांया व बांया वेन्ट्रीकल बनाते हैं।

दाहिना एट्रिया :

यह हृदय की दाहिनी परत बनाता है। इसमें अशुद्ध रक्त सुपीरियर वेना केवा, इनफीरियर वेना केवा (शरीर की सबसे बड़ी शिरायें) व कोरोनरी सायनस के द्वारा पहुँचाया जाता है। इसके सिकुड़ने पर यह अशुद्ध रक्त दाहिने वेन्ट्रिकल में एक छिद्र के द्वारा जाता है जिसमें एक वाल्व लगा होता है जिसे ट्राइकस्पिड वाल्व कहते हैं। यह खून को एक ही दिशा में अर्थात् सिर्फ एट्रिया से वेन्ट्रीकल में जाने देता है।

दाहिना वेन्ट्रीकल :

यह हृदय की बाहरी सतह बनाता है। इसमें अशुद्ध रक्त दाहिने एट्रिया से आता है व इसमें सिकुड़न होने पर रक्त फेफड़ों में पल्मोनरी (Pulmonary) धमनी के द्वारा फेफड़ों में पहुँचता है। फेफड़ों में अशुद्ध रक्त कार्बन-डाइ-आक्साइड छोड़ देता है व ऑक्सीजन ग्रहण कर लेता है व रक्त शुद्ध हो जाता है।

बाँया एट्रिया :

यह दाहिने एट्रिया से छोटा होता है। इसमें पल्मोनरी शिरायें फेफड़ों से शुद्ध रक्त इसमें पहुँचाती है ! इसमें सिकुड़न होने पर शुद्ध रक्त बायें वेन्ट्रिकल में एक छिद्र के द्वारा पहुँचता है जिसमें एक वाल्व लगा होता है जिसे माइट्रल वाल्व कहते हैं, यह खून का दौरा एक ही दिशा में रखता है।

बाँया वेन्ट्रीकल :

यह दाहिने वेन्ट्रिकल से बड़ा होता है और हृदय का निचला सिरा बनाता है जिसे एपेक्स कहते हैं, यह हृदय की बाँयी व बाहर की सतह बनाता है। इसमें शुद्ध खून बायें एट्रिया से आता है व इसमें सिकुड़न होने पर शुद्ध रक्त एक बड़ी धमनी में जाता है जिसे (Aorta) अवारटा कहते हैं। इसके द्वारा रक्त पूरे शरीर में फैल जाता है। यह छोटी-छोटी धमनियों में बँटा रहता है। ऊतकों को ऑक्सीजन देने के पश्चात् रक्त उतकों से कार्बन-डाइ-ऑक्साइड ग्रहण कर लेता है व अशुद्ध हो जाता है। यह अशुद्ध खून शिराओं द्वारा वापिस दाहिने एट्रिया को पहुँचा दिया जाता है।

हृदय की स्थिति :

दाहिनी सतह—तीसरे कास्टल कार्टिलेज की ऊपरी सतह के १·२ से. मी. बाहर की तरफ से नीचे की ओर, दाहिने छठे कास्टल कार्टिलेज तक एक लाइन खींचिये। यह लाइन बाहर की ओर उभरी हुई होनी चाहिए।

नीचे की सतह—एक लाइन छठे दाहिने कास्टल कार्टिलेज की निचली सतह से एपेक्स तक खींचिये।

एपेक्स (Apex)—इसकी सिकुड़न व फैलाव बायें निपिल के अन्दर की तरफ व कुछ नीचे महसूस की जा सकती है या देखी जा सकती है। यह ५वीं इन्टरकास्टल स्पेस से शरीर के बीच से 9 से. मी. बाहर की तरफ स्थित रहती है।

नाड़ी (Pulse)—जब हृदय से रक्त पम्प किया जाता है तब धमनियों पर बड़े दबाव को नाड़ी कहते हैं। जहाँ धमनी अस्थि के ऊपर से निकलती है वहाँ इसे सुविधापूर्वक महसूस किया जा सकता है जैसे—कलाई के सामने की रेडियल धमनी। नाड़ी की सामान्य गति एक मिनिट में ७० होती है। नवजात शिशु १४०, प्रथम वर्ष १२०, दूसरे वर्ष ११०, पाँच वर्ष में ९६ से १००, दस वर्ष में ८० से ९० वयस्क में ६० से ८०।

रक्त चाप (Blood Pressure) **:**

यह रक्त के उस दबाव की शक्ति है जो वह रक्त वाहिकाओं की उन दीवारों के विरुद्ध प्रयोग करता है जिनमें वह रहता है।

सिस्टोलिक दबाव (Systolic Pressure)—जब बायाँ वेन्ट्रिकल सिकुड़ता है तो रक्त वेन्ट्रीकल से अवारटा में जाता है व चाप (Pressure) सबसे ऊँचा पहुँच जाता है। इसे सिस्टालिक चाप (Systolic Pressure) कहते हैं। यह सामान्यतः १२० से १४० मि. मी. होता है।

रक्तचाप शारीरिक थकान की क्रियाओं जैसे व्यायाम, व्याकुलता इत्यादि में थोड़ा परिवर्तित होता है। इसीलिये रक्तचाप केवल उसी समय लिया जाता है जब व्यक्ति सुविधाजनक स्थिति में हो।

रक्तचाप नापना :

रक्त चाप नापने के लिए एक यन्त्र जिसे स्फिगमोमेनोमीटर (Sphygmomanometer) कहा जाता है, का प्रयोग किया जाता है। बाँह के ऊपरी भाग को एक कफ में रखे हुए फूलने वाली रबड़ की थैली से लपेट दिया जाता है। यह कफ प्रेशर पम्प तथा मेनोमीटर से जुड़ी रहती है। हवा भरने के द्वारा थैली का दबाव २०० मि. मी. तक पहुँचा दिया जाता है। यह ब्रेकियल धमनी को फैलाने के लिए पर्याप्त है। इससे रक्त बाहर नहीं निकलता व रेडियल धमनी भी फैल जाती है। तब दबाव को उस बिन्दु तक नीचे लाया जाता है जहाँ नाड़ी (Pulse) महसूस हो। इस बिन्दु पर मेनोमीटर में दिखाया गया चाप सिस्टोलिक चाप होता है। डायस्टोलिक चाप स्टेथोस्कोप से मालूम किया जाता है। स्टेथोस्कोप को ब्रेकियल धमनी पर रखिये

आवाज सुनाई देगी अब दबाव धीरे-धीरे कम करते रहिये। जब आवाज आना बन्द हो जाये वह बिन्दु डायस्टलिक चाप होगा।

प्रमुख रक्त वाहिनियाँ :

अवारटा (Aorta)—यह शरीर की मुख्य धमनी है। यह बायें वेन्ट्रीकल से निकलता है। इसके मुख पर अवोर्टिक वाल्व लगा रहता है। यह मेनुब्रियम स्टरीनाय तक जाती है। यहाँ इसमें से तीन शाखाएँ निकलती हैं :

(१) **इननामिनेट धमनी** (Innominate artery)—यह दो इंच लम्बी होती है तथा यह दो धमनियों दायीं कामन केरोटिड व दायीं सब क्लेवियन धमनियों में विभक्त हो जाती है।

(२) **बाँयी कामन केरोटिड**—गर्दन के ऊपर जाती है व थायराइड कार्टीलेज के स्तर पर इन्टरनल व एक्सटरनल केरोटिड धमनियों में विभाजित हो जाती है।

इन्टरनल केरोटिड धमनी केरोटिड केनाल से निकल कर खोपड़ी में जाती है व आप्थेलमिक, एण्टीरियर व मिडिल सेरिब्रल धमनी में विभाजित हो जाती है।

एक्सटरनल केरोडिट तीन भागों में विभक्त हो जाती है :

(अ) **फेशियल धमनी**—यह चेहरे पर गालों इत्यादि को रक्त देती है।

(ब) **टेम्पोरल**—सिर के किनारों को रक्त देती है।

(स) **आक्सीपीटल**—सिर के पीछे के भाग को रक्त देने के लिए शाखाओं में बँट जाती है।

(३) **सब क्लेवियन धमनी**—यह पहली पसली से गुजरती है व फिर क्लेविकल के नीचे से जाकर बगल (खॉक) में प्रवेश करती है व यहाँ यह एक्जीलरी (axillary) धमनी बन जाती है व बगल की निचली सतह पर ब्रेकियल धमनी बन जाती है व कोहनी के जोड़ पर रेडियल धमनी व अल्नर धमनी में विभक्त हो जाती है।

ब्रेक्रियल धमनी कोहनी के जोड़ पर सामने की तरफ बाईसेप माँसपेशी के टेन्डन के अन्दर की तरफ महसूस की जा सकती है।

रेडियल धमनी—यह कोनी के नीचे भुजा में बाहर की तरफ नीचे को जाती है व रक्त पहुँचाती है।

अल्नर धमनी—यह कोनी के नीचे बाँह में अन्दर की तरफ नीचे को जाती है व रक्त पहुँचाती है।

उदरीय अवारटा (Abdominal aorta)—यह अवारटा का ही भाग है इसमें से निम्नलिखित शाखाएँ निकलती हैं :

(१) **सिलिएक एक्सिस**—यह डायफ्राम के नीचे से निकलती है तथा हिपेटिक (Hepatic), ग्रेस्ट्रिक (Gastric) व स्प्लेनिक (Splenic)। ये यकृत, अमाशय तथा तिल्ली को रक्त पहुँचाती है।

मेसेन्ट्रिक धमनियाँ—ये मेसेन्ट्री व आँतों को रक्त देती है।

रीनल (Renal)—गुर्दे को रक्त देती है। पुरुषों में टेस्टिकुलर (Testicular) अण्डकोषों को व स्त्रियों में ओवेरियन (ovarian) अण्डाशयों को रक्त देती है।

कमर के चौथे वरटिब्रा के सामने अवारटा बायीं तथा दायीं कामन इलियक धमनियों में विभाजित हो जाता है। ये फिर दायीं और बायीं इन्टरनल व एक्सटरनल इलियक धमनी में बँट जाती है। एक्सटरनल इलियक नीचे जांघ में चली जाती है व फिमोरल धमनी बन जाती है। यह प्रोफन्डा फिमोरल धमनी व पोपलिटियल धमनी में घुटने के जोड़ के पीछे जाकर बन जाती है। यहाँ यह दो भागों में विभाजित होती है :

(१) **एण्टिरियर टीबियल धमनी**—यह पैर पर डारसेलिस पेडिस धमनी बन जाती है। यह पैर के ऊपरी सतह को रक्त देती है।

पोस्टिरियर टीबियल धमनी—यह पैर के नीचे के भाग को रक्त देती है।

मुख्य शिराएँ—शिरायें शरीर से रक्त इकट्ठा करके हृदय तक ले जाती है। कोशिकाओं के एक साथ जुड़ने के द्वारा ये छोटी-छोटी वाहिकाओं के रूप में प्रारम्भ होती है। ये छोटी-छोटी शिरायें मिल जाती हैं व बड़ी शिरायें बनाती हैं। हृदय के निकट तक आते-आते ये आकर में बड़ी हो जाती हैं। शिरायें धमनियों की अपेक्षा अधिक तथा बड़ी होती हैं।

गहरी शिरायें—ये मुख्य धमनियों के साथ-साथ जाती हैं व उन्हीं के नाम के अनुरूप इनका नाम होता है।

ऊपरी शिरायें (Superficial veins)—ये त्वचा के नीचे होती है व गहरी शिराओं में मिल जाती है। खोपड़ी में रक्त वीनस सायनेस में बहता है।

इण्टरनल जुगलर शिरा (Internal Juglar Vein)—गले की गहराई में रहती हैं। इसमें खोपड़ी के भीतरी भाग का रक्त रहता है तथा इसमें लिगुअल (Lingual) फेशियल (Facial) व थायराइड (Thoiroid) शिराएँ भी मिलती हैं। ये सब क्लेवियन शिराओं में मिल जाती हैं व दोनों तरफ की इननामिनेट शिरायें मिलकर सुपीरियर वेना केवा बनाती हैं।

पेड़ू तथा उदर की शिरायें (Veins of Pelvis & abdoman)—फीमोरल शिरा इंगवाइनल लिगामेंट के नीचे से होकर पेड़ू में जाती है। यहाँ एक्सटरनर इलियक शिरा बन जाती है। एक्सटरनल व इन्टरनल इलियक मिलकर कामन इलियक शिरा बन जाती है। दायें व बायें कामन इलियक शिराये कमर के पाँचवें वरटिब्रा के जहाँ जुड़कर इनफीरियर वेना केवा बनाते हैं।

पोरटल (Portal) **शिरायें**—आँतों का रक्त पोरटल शिराओं के द्वारा लिवर में पहुँचता है व इनफीरियर वेना केवा के द्वारा हृदय में जाता है।

★

६. प्रजनन प्रबन्ध के अंग

(THE ORGANS OF REPRODUCTIVE ORGAN)

प्रजनन के अंग जननांगी (Jenital tract) मार्ग बनाते हैं जो मूत्र मार्ग से सम्बन्धित होता है। पुरुष में ये मार्ग घनिष्टता से सम्बन्धित रहते हैं। महिला में जननांगी मार्ग मूत्र मार्ग के अत्यन्त निकट होता है पर वे मिले हुए नहीं होते। महिलाओं के जनन अंग पेड़ू (Pelvis) में होते हैं तथा पुरुषों के जनन अंग पेड़ू के बाहर होते हैं।

पुरुष जन-इन्द्रिय :

पुरुष जन-इन्द्रिय में निम्नलिखित अंग होते हैं—

(१) अंडकोष (Testies), (२) एपिडिडायमिस (Epididimis),

(३) (शुक्राणुनली) वास डिफरेन्स (Vas deference),

(४) सेमिनल बेसिकल (शुक्राशय) (Seminal Vesicle),

(५) इजेक्यूलेटरी डक्ट (Ejeculatory duct),

(६) प्रोस्टेट (Prostate) (पोरुष ग्रन्थी), (७) शिश्न (Penis),

(८) पोते (Scrotum), (९) यूरेथ्रा (Urethra) (मूत्र मार्ग)।

(१) **अण्डकोष** (Testies)—ये दो होते हैं, इनका आकार अण्डे की तरह होता है। ये पोते (Scrotum) में स्परमेटिक कार्ड के द्वारा लटके रहते हैं। बायें तरफ का अण्डकोष कुछ नीचे लटका रहता है। इसकी लम्बाई ४ से ५ से. मी., चौड़ाई २.५ से. मी. व मोटाई ३ से. मी. होती है। इसका वजन १० से १४ ग्राम होता है। इसका ऊपरी सिरा आगे व बाहर की ओर झुका रहता है व नीचे का सिरा पीछे और अन्दर की ओर झुका रहता है।

कार्य—(१) ये शुक्राणुओं का निर्माण करते हैं।

(२) टेस्टोस्टेरान (Testosteron) का उत्सर्जन होता है।

(२) **एपिडिडायमिस** (Epididimis)—यह एक लम्बी पतली नली होती है जो अण्डकोष के पीछे मुड़ी रहती है। इसी में से शुक्राणु अंडकोष से निकलकर वासडिफरन्स में आते हैं।

(३) **वास डिफरेन्स** (Vas deference) **शुक्राणु नली**—यह एक लम्बी नली होती है जो एपिडिडायमिस के निचले भाग के निकलती है व अंडकोष के पीछे और ऊपर जाते हुए स्परमेटिक कार्ड में प्रवेश करती है व कार्ड में पीछे की तरफ से होती हुई पेट की गुहिका में इंगवाइनल की नली से होकर पेड़ू में चली जाती है व इजेक्यूलेटरी डक्ट (ejeculatory duct) बनाती है।

कार्य—यह शुक्राणुओं को एपिडिडायमिस से लेकर इजेक्यूलेटरी डक्ट तक पहुँचाती है।

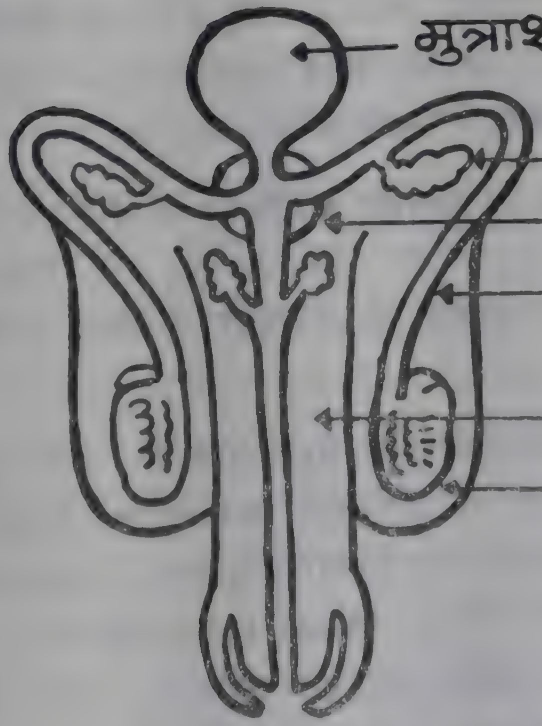

पुरुष जन-इन्द्रिय

(४) **सेमिनल वेसिकल** (Seminal Vesicle) **शुक्राशय**—ये दो होते हैं व मूत्राशय की बेस (Base) की तरफ रहते हैं। ये ५ से. मी. लम्बे होते हैं व पिरामिड के आकार के होते हैं। इनका चौड़ा सिरा ऊपर की तरफ होता है। इनका नीचे का सिरा एक पतली नली जैसा रहता है जो शुक्राणु नली (Vasdeference) से निकलकर इजेक्यूलेटरी डक्ट (ejeculatory duct) बनाता है।

कार्य—इसमें एक प्रकार का रस बनता है जो वीर्य में मिल जाता है।

(५) **इजेक्यूलेटरी डक्ट** (Ejeculatory duct)—ये दो होती हैं। यह २ से. मी. लम्बी होती है। यह सेमिनल वेसिकल व शुक्राणु नली के द्वारा बनती है व प्रोस्टेटिक यूट्रिकल के खुलने के स्थान के पास खुलती है।

(६) **प्रोस्टेट (पोरुष ग्रन्थी)**—यह एक बड़े अखरोट के आकार की ग्रन्थि होती है तथा पेड़ू में मूत्राशय के नीचे स्थित रहती है, यह ४ से. मी. लम्बी, ३ से. मी. चौड़ी व २ से. मी. मोटी होती है। इसका वजन लगभग ८ ग्राम होता है। इसके बीच में से यूरेथ्रा व इजेक्यूलेटरी डक्ट निकलते (Pass) हैं।

कार्य—(१) यह एक रस का उत्सर्जन करती है जो वीर्य की मात्रा बढ़ाता है।

(२) इसका रस शुक्राणु की जिन्दगी व कार्य करने की क्षमता बढ़ाता है।

(७) **शिश्न** (Penis)—यह गोल और लम्बा होता है। पीछे की ओर यह दोनों जाँघों के बीच में जुड़ा रहता है व आगे का भाग स्वतन्त्र रहता है व लटका रहता है। यह त्वचा से ढका रहता है। यह छेददार (Spongy) ऊतकों से बना होता है। इसका अगला भाग ग्लान्स पेनिस (Glans Penis) बनाता है जो प्रेप्यूस (Prapuse) या फोर स्किन (Fore Skin) से ढका रहता है। इसमें यूरेथ्रा खुलती है। शिश्न के चमड़ी वाले भाग व ग्लान्स (Glans) के जोड़ पर एक गड्ढा सा होता है जिसे गला (neck) कहते हैं। इसमें स्मीग्मा नामक पदार्थ रिसता रहता है जिसमें विशेष प्रकार की गन्ध आती है।

कार्य—(१) इसमें Erectile उत्तेजित होने वाले ऊतक होते हैं जिनके उत्तेजित होने पर यह कड़ा व खड़ा हो जाता है।

(२) इसी के द्वारा सम्भोग किया जाता है।

(३) यह मूत्र को यूरेथ्रा के द्वारा बाहर निकालता है।

(८) **पोते** (Scrotum)—यह एक थैली सा अंग होता है, तथा ऐसी त्वचा का बना होता है जिसमें चर्बी नहीं होती। इसमें अण्डकोष स्परमेटिक कार्ड द्वारा लटके रहते हैं। स्परमेटिक कार्ड की लम्बाई बांयी ओर अधिक रहती है अतः बांयी ओर

पोता ज्यादा लटका रहता है। गर्मी में और बुढ़ापे में ये ज्यादा लटक जाते हैं। ठंड व जवानी में ये सिकुड़े हुए रहते हैं।

कार्य—(१) ये अण्डकोष व स्परमेटिक कार्ड को सुरक्षित रखते हैं।

(२) पोते में अण्डकोष को घूमने (Movement) के लिये काफी जगह होती है अतः इनमें चोट लगने की सम्भावना कम होती है।

(३) पोते की त्वचा काफी नरम होती है अतः सूजन आने पर यह काफी फैल जाती है।

(६) **यूरेथ्रा** (Urethra)—यह ७ से ६ इंच लम्बा होता है। यह मूत्राशय से निकलता है व ग्लान्स पर आकर बाहर की ओर खुल जाता है। यह प्रोस्टेट के बीच में से निकलता है।

कार्य—(१) यह मूत्र बाहर निकालता है।

(२) यह वीर्य बाहर निकालता है।

वीर्य निम्नलिखित वस्तुओं से बनता है :

(१) शुक्राणु, (२) इपीडिडायमिस का रस, (३) सेमिनल वेसिकल का रस, (४) प्रोस्टेट का रस, (५) काउपर्सग्लेण्ड (Couper's gland) का रस।

एक बार में यह २ से ४ सी. सी. निकलता है। इसमें २०० से ३०० मिलियन (१ मिलियन=१० लाख) शुक्राणु होते हैं। इनमें से ८०% ४५ मिनिट तक गतिशील रहते हैं। परन्तु ३ घण्टे से अधिक गतिशील नहीं रहते।

७. स्त्री जननांग

(FEMALE ORGANS OF GENERATION)

ये बाहरी अंग व भीतरी अंग में विभाजित होते हैं।

बाहरी अंग :

इन्हें भग (Vulva) भी कहा जाता है। इनमें निम्नलिखित अंग होते हैं :

(१) **मोन्स वेन्रिस** (Mons Veneris)—यह पेड़ू के निचले भाग में, सिम्फायसिस प्यूबिस के सामने चर्बी की गद्दी होती है, यह भाग उभरा हुआ रहता है। तरुणावस्था में इस भाग पर बाल आते हैं।

(२) **लेबिया मेजोरा** (Labia Majora)—इन्हें भग के होंठ भी कहा जाता है। यह लगभग तीन इंच लम्बे होते हैं। ये भग के दोनों किनारे बनाते हैं। यह त्वचा व वसा के द्वारा बना होता है।

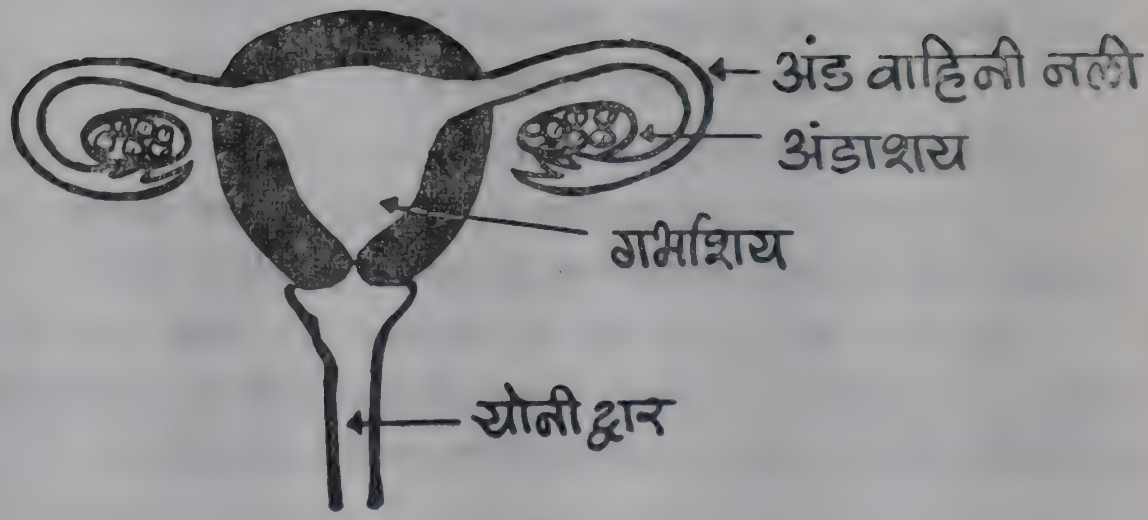

स्त्री-जननांग

(३) **क्लाइटोरिस**—यह योनी की चोटी पर होता है, उत्तेजना की अवस्था में यह खड़ा हो जाता है। इस पर घर्षण होने से स्त्री को आनन्द आता है। यह पुरुष के शिश्न का प्रति उत्तर है।

(४) **वेस्टिब्यूल** (Vestibuls)—यह चिकना, त्रिकोणात्मक होता है जो दोनों ओर लेबियल तहों द्वारा सीमित है। क्लाइटोरिस के पीछे मूत्र मार्ग (Urethra) खुलता है। बारथोलियन व ग्रेटर वेस्टिबूलर ग्रन्थियाँ म्यूकस का उत्सर्जन करती है तथा लेबिया माइनोरा व हाइमन (Hymen) के बीच खुलती है। हाइमन एक पतली छेददार पर्त होती है। इसमें से मासिक धर्म छन कर आता है। यह योनी के द्वार पर रहती है व भीतरी तथा बाहरी जननांक को पृथक करती है। प्रथम संभोग के समय हाइमन फट जाती है।

भीतरी अंग :

योनी—यह एक पेशीय नाली होती है जो वेस्टिबूल या क्लेफ्ट से निकलकर लेबिया माइनोरा के बीच हो गर्भाशय तक जाती है। यह ७·५ से. मी. से ६ से. मी. लम्बी होती है व इसकी चौड़ाई आगे की अपेक्षा पीछे अधिक होती है। इसकी दीवारें सामान्यतः सम्पर्क में रहती है। यह मूत्राशय व रेक्टम के बीच में रहती है। यह सर्विक्स (cervix) के निचले भाग को घेरती है।

कार्य—(१) यह संभोग के समय हिस्सा लेती है।
(२) माहवारी के समय रक्त बाहर निकालती है।
(३) वीर्य सर्वप्रथम इसी में इकट्ठा होता है उसमे से शुक्राणु गर्भाशय में चले जाते हैं।

गर्भाशय—यह एक नाशपाती के आकार का एक खोखला अंग होता है जो पेरिटोनियम से ढका रहता है। इसके पीछे मलाशय (Rectum) व सामने मूत्राशय (Bladder) होता है। यह माँसपेशियों का बना होता है। इसकी लम्बाई ७·५ से. मी. चौड़ाई ५ से. मी. व मोटाई २·५ से. मी. होती है। यह सामने की ओर कुछ झुका हुआ व मुड़ा होता है। इसके ३ भाग होते हैं :

(१) **फण्डस**—यह सबसे ऊपर का भाग होता है तथा उभरा हुआ होता है।
(२) **बॉडी** (Body)—बा॰॰ व फन्डस के जोड़ पर गर्भाशय की नलियाँ खुलती हैं। यह ऊपर से नीचे की तरफ सकरी होती जाती है।
(३) **सर्विक्स** (cervix)—यह २·५ से. मी. लम्बी होती है तथा गोल (cylendricle) होती है। इसका कुछ भाग योनी में रहता है व खुलता है उसे एक्सटरनल (externalos) आस कहते हैं।

कार्य :

(१) शुक्राणु इसी के द्वारा गर्भनली में जाते हैं।
(२) गर्भकाल में शिशु का विकास इसी में होता है।

गर्भनली (Uterine tube)—ये दो होती हैं। ये १० से. मी. लम्बी होती है व सलाई जितनी मोटी होती है। इसका एक सिरा गर्भाशय में फन्डस व बॉडी के बीच में खुलता है।

कार्य—(१) अण्डे (ovum) को अण्डाशय से गर्भाशय तक पहुँचाती है।

(२) अण्डे (ovum) का व शुक्राणु का मिलन इसी नली में होता है।

अण्डाशय (Ovary)—ये पुरुष के अण्डकोष का प्रति उत्तर है, ये बादाम के आकार की दो ग्रन्थियाँ होती हैं। इनमें से प्रत्येक गर्भाशय के एक-एक ओर होती है। इसमें अपरिपक्व अंडाणुओं की एक बड़ी संख्या होती है इसे प्रारम्भिक अंडक कहते हैं। मासिक धर्म के प्रत्येक चक्र में, इनमें से एक प्रारम्भिक अण्डक परिपक्व होने लगता है तथा शीघ्र ही इसका विकास हो जाता है व मासिक धर्म के १४वें दिन यह पेरिटोनियल गुहिका (cavity) में से फिम्ब्रिल सिरे द्वारा गर्भ नली में चला जाता है। जहाँ यह शुक्राणु से मिलता है। इस प्रकार यह एक बार बायीं ओर व दूसरी बार दाहिनी ओर से निकलता है।

कार्य—(१) अंडाणु उत्पन्न करना।
(२) इस्ट्रोजन उत्पन्न करना।
(३) प्रोजेस्ट्रान उत्पन्न करना।
} मासिक धर्म का नियन्त्रण

स्तन (Mamary gland)—स्तन स्त्री जननांग का सहायक जननांग अंग है। इनमें से दूध का उत्सर्जन होता है। यह स्त्री और पुरुष दोनों में पाई जाती हैं परन्तु पुरुषों में यह प्रारम्भिक (Rudimentary) रहती है। ये दो होती हैं व छाती के दोनो तरफ स्टरनम अस्थि व बगल के बीच में व दूसरी पसली से लेकर छठी या सातवीं पसली तक फैली रहती है। इसका वजन व आकार भिन्न-भिन्न होता है। तरुणाई में ये बढ़ने लगते हैं। गर्भ के समय और प्रसव के बाद में ये बढ़ जाते हैं। बुढ़ापे में यह सिकुड़ जाते हैं। स्तन सामने की तरफ उभरे हुए रहते हैं तथा इनके बीच में एक उभार रहता है उसे चूचक (nipple) कहते हैं। यह गोल होता है व चौथी व पाँचवी पसलियों के बीच में होता है। इसकी मांसपेशी में सिकुड़न होने पर यह खड़ा हो जाता है। तरुणाई में इसका रंग गुलाबी होता है परन्तु प्रथम प्रसव के पेट में होने के दूसरे माह से इसका रंग कत्थई हो जाता है। चूचक के आधार के पास सबेसियस ग्रन्थियाँ (Subecious gland) होती हैं जिनमें से चिकना तरल रिसता है जो चूचक को कोमल रखता है। चूचक के ऊपर १५ से २० छेद होते हैं जो ग्रन्थि की नलियों के मुँह होते हैं।

कार्य—(१) जन्म के समय स्त्री व पुरुष दोनों की छाती से दूध रिसता है।
(२) बच्चे के लिए दूध रिसता है।

८. नाड़ी संस्थान
(NERVOUS SYSTEM)

इस संस्थान को मास्टर आफ सिस्टम (Master of System) भी कहते हैं क्योंकि यह संस्थान सभी संस्थानों पर नियन्त्रण करती है। यह शरीर के दोनों भागों से एक सरीखी फैली रहती है।

यह दो भागों में विभाजित की जा सकती है :

(१) **मस्तिष्क** (Brain)

(२) **स्पायनल कार्ड** (Spinal cord)।

(१) **मस्तिष्क**—मस्तिष्क में रक्त का दौरा बहुत होता है। २५० से ४०० सी. सी. रक्त एक मिनिट में दिमाग का दौरा कर लेता है। इसी प्रकार दिमाग में ऑक्सीजन की आवश्यकता भी अधिक होती है।

यह ग्रे मेटर व व्हाइट मेटर का बना होता है। ग्रे मेटर बाहर की तरफ व व्हाइट मेटर अन्दर की तरफ होता है।

स्पायनल कार्ड—यह दिमाग से निकलता है व रीड की हड्डी के बीच में से गुजरता है। इसमें से ३१ जोड़ें स्पायनल नाड़ी के निकलते हैं बाकी बची जगह में सेरिब्रोस्पायनल फ्लूड (रस) भरा रहता है।

कार्य :

१. ये माँसपेशियों की सिकुड़न व फैलाव में मदद करते हैं।
२. इनके कारण ग्रन्थियों से रस निकलता है।
३. शरीर पर कोई भी वस्तु इन्हीं के द्वारा महसूस होती है।
४. इन्हीं के द्वारा दर्द महसूस होता है।
५. सूँघना स्वाद इत्यादि इन्हीं की सहायता से मालूम होता है।
६. पेशाब व दस्त की जानकारी इन्हीं की सहायता से होती है।
७. इन्सान का सोचना, याद करना, लिखना, पढ़ना इन्हीं के द्वारा होता है।
८. देखना, सुनना इन्हीं के द्वारा होता है।

●

९. स्वास्थ्य व रोग

परिभाषा—विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार सम्पूर्ण शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक कुशलता ही स्वास्थ्य है और न कि केवल रोग रहित रहना।

शारीरिक स्वास्थ्य—जब मनुष्य की इन्द्रियाँ जैसे कान, आँख, नाक, जिब्हा व सभी संस्थान समुचित रूप से कार्य कर रहे हों व मनुष्य सुगठित हो तब मनुष्य शारीरिक रूप से स्वस्थ माना जाता है।

मानसिक स्वास्थ्य—जब मनुष्य हीन भावना से ग्रसित न हो व अपनी गलतियों को स्वीकार करता है व तनाव का जीवन न जीता हो व समाज में अपना महत्व समझता हो व दूसरों की मदद करता हो ऐसे व्यक्ति को मानसिक रूप से स्वस्थ कहा जायगा।

सामाजिक स्वास्थ्य—समाज के दूसरे व्यक्तियों के साथ सामन्जस्य स्थापित करते हुए दैनिक जीवन में सफलता, संतोष व सुख प्राप्त करना ही सामाजिक रूप से स्वस्थ रहना है।

स्वास्थ्य पर प्रभाव डालने वाली बातें :

(१) अनुवंशिक, (२) वातावरण, (३) रहन-सहन।

(१) **अनुवंशिक**—कुछ रोग अनुवंशिक होते हैं अर्थात् जो माता पिता के द्वारा बच्चों में पाये जाते हैं, जैसे अविकसित मस्तिष्क, दमा, मधुमेह, फिट आना (झटके)।

(२) **वातावरण**—जिनसे मनुष्य घिरा हुआ है या वह जिन परिस्थितियों में रहता है उसे मनुष्य का वातावरण कहते हैं।

वातावरण के प्रकार :

(१) **भौतिक वातावरण**—ये अजीवित वस्तुएँ जैसे पानी, हवा, मौसम, भूमि, प्रकाश, मल-मूत्र के निकास की व्यवस्था, ये सभी किसी भी रूप में मनुष्य के स्वास्थ्य पर प्रभाव डालते हैं।

(२) **जैविक वातावरण** (Biological)—पेड़-पौधे, प्राणी, कीट-पतंगे, सूक्ष्म जीवाणु इत्यादि।

(३) **सामाजिक वातावरण**—समाज में रहने वाले लोग, रीति रिवाज, सामाजिक मान्यताएँ, धर्म, जीवन स्तर आमदनी इत्यादि।

(४) **रहन-सहन**—मनुष्य का रहन सहन, कार्य मनोरजन, व्यायाम, निद्रा, स्वच्छता, अच्छी आदतें, व्यवहार स्वास्थ्य सम्बन्धी ज्ञान व स्वास्थ्य सेवाओं का समुचित उपयोग इत्यादि।

रोग :

शरीर का कोई अगं या संस्थान की उस दशा को कहते हैं जिसमें उसके कार्य विपरीत रूप से प्रभावित होते हैं। मनुष्य और वातावरण के असामन्जस्य को भी रोग की संज्ञा दी गयी है।

रोग की प्रक्रिया :

यह दो चरणों में होती है :

(१) **प्रिपेथोजिनेसिस फेज या चरण**—यह मनुष्य में रोग होने के पूर्व का समय है। इस चरण में रोग के लक्षण प्रगट नहीं होते परन्तु रोग मनुष्य को चारों ओर से घेर लेता है। जब रोग के प्रतिनिधि (Agent), मेजमान (Host) एवं वातावरण की

आपसी क्रिया होती है तब मनुष्य में रोग के विकास की क्रिया प्रारम्भ हो जाती है। रोग के लिए रोग प्रतिनिधि, मेजमान एवं वातावरण ये तीन महत्वपूर्ण हैं।

(२) **आक्रमण का चरण**—जब रोग के कीटाणु शरीर में प्रवेश करते हैं तब से आक्रमण काल प्रारम्भ होता है। परन्तु रोग के लक्षण कुछ समय पश्चात प्रगट होते हैं इस समय को उद्भवन काल कहते हैं। यह विभिन्न रोगों में अलग-अलग होता है।

उद्भवन काल के पश्चात जब रोग के लक्षण प्रगट होते हैं तो मनुष्य का स्वास्थ्य बिगड़ जाता है व मनुष्य रोगी हो जाता है।

जीवाणु प्रवेश करने पर :

१. शरीर में अगर प्रतिरोधात्मक शक्ति है तो जीवाणु शरीर में प्रवेश करने के पश्चात मर जाते हैं और रोग उत्पन्न नहीं होता।
२. यदि शरीर में शक्ति न हो तो कीटाणु बढ़ते हैं और रोग के लक्षण उत्पन्न करते हैं। यदि व्यक्ति स्वस्थ है तो वह रोगोत्पत्ति को रोक सकता है।
३. यदि व्यक्ति में न तो प्रतिरोधात्मक शक्ति है और न वह स्वस्थ है तो वह रोग का शिकार हो जाता है।
४. यदि कीटाणु बहुत शक्तिशाली है और उनका विष बहुत तीव्र है और व्यक्ति कमजोर है तो उसकी मृत्यु कुछ घण्टों में हो सकती है।

१०. परिभाषाएँ

संक्रमण (Infection) **:**

कीटाणुओं के शरीर में प्रवेश करने की क्रिया को संक्रमण (Infection) कहते हैं। ये कीटाणु विषाणु पर जीवित होते हैं।

यह दो प्रकार का होता है :

(१) जनरल (General), (२) लोकल (Local)।

(१) **जनरल** (General)—जब कीटाणु शरीर में प्रवेश करने के बाद खून में प्रवेश कर जाते हैं व रोग के लक्षण पूरे शरीर पर दिखाई देते हैं जैसे—टाइफाइड।

(२) **लोकल** (Local)—जब कीटाणु शरीर के किसी एक ही भाग पर असर करते हैं। जैसे—डिप्थेरिया के कीटाणु सिर्फ गले व नाक पर ही असर करते हैं।

संक्रामक रोग (Infectious diseases) **:**

जो रोग संक्रमण के कारण होते हैं उसे संक्रामक रोग कहते हैं जैसे—टाइफाइड, डिप्थेरिया इत्यादि।

संसर्गत रोग (Contageous disease) :

जो बीमारी रोगी के सम्पर्क में आने पर हो जाती है, उसे संसर्गत रोग कहते हैं जैसे—कुकर खाँसी इत्यादि ।

इपिडेमिक (Epidemic) :

जब कोई विशेष रोग विशेष भाग में अधिक लोगों पर आक्रमण करता है, इपिडेमिक कहते हैं ।

एण्डोमिक (Endomic) :

जब कोई संक्रामक रोग किसी विशेष भाग में हमेशा लोगों पर आक्रमण करता रहता है, उसे एण्डोमिक कहते हैं ।

पेन्डेभिक (Pandemic) :

जब कोई संक्रामक रोग किसी बहुत बड़े भाग या सारे संसार के लोगों पर आक्रमण करता है तो उसे पेन्डेमिक कहते हैं ।

उद्भवन काल (Incubation Period) :

रोगाणु के व्यक्ति के शरीर में प्रवेश से लेकर रोग के प्रारम्भिक लक्षण दिखाई देने तक के समय को उद्भवन काल कहते हैं । यह अलग-अलग रोग से अलग-अलग होता है ।

संक्रमण का स्रोत्र (Reservior of Infection) :

वह स्थान जहाँ रोगाणुओं की वृद्धि होती है जैसे—पानी, आदमी, भोजन, हवा, जमीन इत्यादि ।

मेजमान (Host) :

जिस व्यक्ति में अवरोध शक्ति कम होती है रोगाणु प्रवेश कर बीमारी के लक्षण उत्पन्न करते हैं, उसे मेजमान कहते हैं ।

कीट वाहक :

ये वे कीड़े अथवा जानवर होते हैं जो माध्यम बनकर रोगाणुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाते हैं जैसे—मक्खी, मच्छर इत्यादि ।

वाहक :

वह व्यक्ति या पशु जो रोगी न होते हुए भी रोगाणुओं द्वारा रोग फैलाते हैं ।

★

११. रोग फैलाने में सहायक प्रतिनिधि

रोग क्षमता का अर्थ है शरीर के अन्दर किसी भी रोग से लड़ने और बचने की क्षमता ।

इसका वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया गया है :

(१) प्राकृतिक रोग क्षमता (Natural Immunity)

(२) उपार्जित रोग क्षमता (Aquired)

(३) कृत्रिम रोग क्षमता (Artificial)।

(१) **प्राकृतिक रोग क्षमता**—इस प्रकार की रोग क्षमता मनुष्य व जानवरों में जन्म से ही पाई जाती है जैसे मुर्गियों को टिटेनस की बीमारी नहीं होती है और कुत्तों को व चूहों को तपेदिक की बीमारी नहीं होती है। अफ्रीका में नीग्रो लोगों को पीला बुखार (Yellow Fever) नामक बीमारी नहीं होती है। इसी प्रकार कुछ परिवार वाले बीमारी के फैलने पर भी बचे रहते हैं। कुछ व्यक्तियों को संक्रामक रोग गम्भीर रूप से ग्रसित कर लेते हैं व कुछ को ज्यादा असर नहीं होता है। अगर बहुत ज्यादा मात्रा में रोगाणु शरीर में प्रवेश कर जाते हैं तो वे रोग क्षमता को नष्ट कर देते हैं व व्यक्ति संक्रामक रोग से पीड़ित हो जाता है। जैसे अगर बहुत अधिक मात्रा में टिटेनस के कीटाणु अगर मुर्गी के शरीर में पहुँचाये जाते हैं तो मुर्गी को टिटेनस की बीमारी हो जाती है।

प्राकृतिक रोग क्षमता वाले व्यक्ति को अगर कृत्रिम रोग क्षमता पहुँचाई जाती है तो उसकी रोग क्षमता और बढ़ जाती है।

(२) **उपार्जित रोग क्षमता**—इस प्रकार की रोग क्षमता, यदि रोग किसी व्यक्ति को एक बार हो जाता है तो उस व्यक्ति के अन्दर उस रोग की, रोग क्षमता पैदा हो जाती है। जिससे उसे वह रोग दुबारा नहीं होता है या होता भी है तो बहुत हल्के रूप में होता है। जैसे चेचक का रोग होने पर उस पुरुष को रोग क्षमता पैदा हो जाती है व चेचक का रोग उसे फिर कभी नहीं होता है। डिप्थेरिया के बाद भी रोग क्षमता पैदा हो जाती है परन्तु वह चिरस्थाई नहीं होती है और बहुत अधिक लम्बे समय तक नहीं रहती है। इस प्रकार की क्षमता जो रोग होने के पश्चात पैदा होती है, को उपार्जित रोग क्षमता कहते हैं।

(३) **कृत्रिम रोग क्षमता**—शरीर से रोग के जीवित जीवाणु विषाणु या मृत जीवाणु प्रवेश कराने से जो प्रतिरोधात्मक क्षमता उत्पन्न होती है उसे कृत्रिम रोग क्षमता कहते हैं।

यह दो प्रकार की होती है :

(१) सक्रिय क्षमता (Active Immunity)

(२) निष्क्रिय क्षमता (Passive Immunity)।

(१) **सक्रिय क्षमता**—इसमें जीवित जीवाणुओं के विष की प्रबलता को रासायनिक क्रियाओं द्वारा कम करके मनुष्य के शरीर में पहुँचाते हैं। शरीर में इनके पहुँचने से शरीर एण्टीबाडिज (Antibodies) बनाता है जो इन कीटाणुओं का संक्रमण होने पर कीटाणुओं का विष नष्ट कर देता है। इस प्रकार की क्षमता टीका (Vaccine) देकर पैदा की जाती है।

टीकाकरण (Vaccination)—जिस क्रिया के द्वारा टीका शरीर में पहुँचाया जाता है, उसे (वेक्सीनेशन) टीकाकरण कहते हैं।

टीका (Vaccine)—टीकाकरण के लिए जो पदार्थ उपयोग में लाया जाता है उसे टीका कहते हैं। साधारणतया यह इंजैक्शन के द्वारा शरीर में पहुँचाया जाता है परन्तु पोलियो का टीका मुँह के द्वारा दिया जाता है। रोग क्षमता टीका लगाने के कुछ दिनों या सप्ताहों बाद शुरू होती है। किसी टीके के बाद रोग क्षमता बहुत समय तक रहती है व किसी से कम समय तक रहती है जैसे—चेचक का टीका लगाने के बाद रोग क्षमता काफी समय तक रहती है परन्तु हैजे का टीका लगाने के बाद रोग क्षमता सिर्फ छः माह बाद समाप्त हो जाती है।

निष्क्रिय रोग क्षमता—जब एक शरीर से एण्टीबाडिज बनाकर उनको दूसरे व्यक्ति में रोग के बचाव के लिए पहुँचाते हैं उसे निष्क्रिय रोग क्षमता कहते हैं।

शरीर में रोग के कीटाणु को प्रविष्ट कराने से रोग का आक्रमण होता है। अगर ये कीटाणु थोड़ी मात्रा में शरीर में पहुँचाये जाते हैं, तो रोग हल्का होगा और शरीर में रोग को सहन करने की क्षमता (Antibodies) पैदा होगी। कुछ समय पश्चात शरीर रोग के अधिक कीटाणु भी सहन कर सकेगा। जन्तु में रोग की उच्च कोटि की क्षमता पैदा होने के पश्चात शरीर से रक्त निकाल कर उसमें से सीरम (खून तरल भाग) को अलग कर लेते हैं इससे एण्टीबाडीज उपस्थित है जो जन्तु द्वारा पैदा हुई है। इसके द्वारा शरीर में एण्टीबाडी पैदा नहीं होती बल्कि सिरम स्वयं में एण्टीबाडी रहती है। अतः इसकी क्षमता अल्प स्थायी है। इस प्रकार की रोग क्षमता टीटेनस, डिप्थेरिया, रेबिज की बीमारी में पैदा की जाती है।

ये एण्टीबाडीज रोग के टीके के रूप में भी उपयोग में लाई जाती है व इलाज के लिए भी उपयोग में लाई जाती है।

जिस रोग को पैदा करके एन्टीबाडी बनाई जाती है वह उसी विशेष बीमारी में उपयोगी होती है जैसे—टीटेनस।

रोग फैलाने में सहायक प्रतिनिधि :

रोग फैलाने में निम्नलिखित कीटाणु सहायक होते हैं :

(१) कीटाणु (Bactiria), (२) प्रोटोझोआ (Protozoa), (३) विषाणु (Virus), (४) फँगाई (Fungi), (५) छोटे प्राणी (Lower animals)।

(१) **कीटाणु**—साधारणतया कीटाणु संक्रामक रोग पैदा करते हैं। ये सूक्ष्म-दर्शी से देखे जा सकते हैं। ये ३ μ (म्यू) मोटे व ३० से ४० μ (म्यू) लम्बे होते हैं। कुछ कीटाणु हिल-डुल नहीं पाते हैं व कुछ हिल-डुल सकते हैं। ये गोल व लम्बे होते हैं। कुछ कीटाणु आक्सीजन की सहायता से बढ़ते हैं व कुछ की वृद्धि बगैर आक्सी-जन के भी हो सकती है। कुछ कीटाणुओं की वृद्धि शरीर की जिन्दा कोशिकाओं से होती है व वहां अपना भोजन प्राप्त करते हैं एवं उन्हें परजीवी (Parasite) कहते हैं। कुछ कीटाणु शरीर की मृत कोशिकाओं में वृद्धि करते हैं, उन्हें सेप्रोफाइट (Sapro-phite) कहते हैं।

कीटाणु शरीर में पहुँचकर विष का निर्माण करते हैं। यही विष बीमारी के लक्षण पैदा करता है।

विषाणु (Virus)—ये बहुत ही छोटे होते हैं व सूक्ष्मदर्शी से देखे नहीं जा सकते। ये इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप के द्वारा देखे जाते हैं। ये शरीर में प्रवेश करके कई बीमारियाँ करते हैं, जैसे—चेचक, मम्पस इत्यादि।

फंगस (Fungi)—फफुँद इनके कारण खुजली की बीमारी हो जाती है।

छोटे प्राणी—मनुष्यों पर आक्रमण करते हैं, जैसे स्त्री परजीवी से स्केबिस, अंकुशकृमी, फीताकृमि इत्यादि।

संक्रामक रोग का फैलाव :

श्वसन संस्थान—ज्यादातर रोग छिंक होने से व श्वांस के द्वारा फैलते हैं। रोग के कीटाणु इन माध्यमों से दूसरे स्वस्थ पुरुष के संसर्ग में आते हैं व रोग फैलाते हैं, जैसे—डिप्थेरिया, चेचक इत्यादि।

पाचन संस्थान—इसके द्वारा संक्रमण मल के द्वारा फैलता है, जैसे—टाइफाइड, हैजा इत्यादि। रोग के कीटाणु मल में होते हैं अतः कीटाणु मक्खी इत्यादि के द्वारा दूध अथवा भोजन को दूषित कर देते हैं या मल पानी में पहुँचकर पानी को दूषित कर देता है व रोग फैलाता है।

रोग फैलने के प्रकार :

यह ४ तरह का होता है :

(१) डायरेक्ट (Direct), (२) इनडायरेक्ट (Indirect),

(३) वाय केरियर (By carrier), (४) कीट के द्वारा।

(१) **डायरेक्ट** (Direct)—यह संक्रामक रोग किसी संक्रमित व्यक्ति के संसर्ग में आने पर किसी स्वस्थ पुरुष को हो जाता है, जैसे—चेचक, डिप्थेरिया इत्यादि।

(२) **इनडायरेक्ट** (Indirect)—संक्रामक रोग के कीटाणु संक्रमित व्यक्ति के मल इत्यादि से निकलकर बाहर आ जाते हैं व किसी भी माध्यम से जैसे—पानी, दूध इत्यादि में पहुँचकर स्वस्थ मनुष्य के शरीर में प्रवेश कर जाते हैं व रोग पैदा कर देते हैं।

(३) **केरियर** (Carrier)—जब व्यक्ति को संक्रामक रोग हो जाता है व वह उस रोग से अच्छा हो जाता है तो उसमें उस रोग के प्रति रोग क्षमता उत्पन्न हो जाती है। अतः रोग के कीटाणु उसके शरीर में मौजूद रहते हैं परन्तु रोग क्षमता के कारण बीमारी के लक्षण नहीं होते हैं। ऐसे व्यक्ति को केरियर कहते हैं। यह व्यक्ति भी स्वस्थ पुरुष को बीमारी फैला सकता है। क्योंकि उसके मल इत्यादि में कीटाणु मौजूद रहते हैं जो किसी भी स्वस्थ पुरुष के शरीर में पहुँचकर रोग फैला देते हैं।

कीट द्वारा—कुछ कीट भी बीमारी फैलाने में सहायक होते हैं। ये रोग के कीटाणु एक संक्रमित पुरुष से लेकर दूसरे स्वच्छ पुरुष में पहुँचाते हैं। जैसे—मलेरिया मादा एनाफिलिज मच्छर के द्वारा फैलाया जाता है।

मक्खियाँ हैजा व अनेक बीमारियों को फैलाने में सहायक होती हैं। हैजे के कीटाणु संक्रमित पुरुष के मल में मौजूद रहते हैं। मक्खी जब मल पर बैठती है तो कीटाणु उसके पैरों पंखों इत्यादि में चिपक जाते हैं व जब मक्खी मनुष्यों के भोजन पर बैठती है तो कीटाणु मक्खी के पैरों इत्यादि से छूटकर भोजन में छूट जाते हैं व भोजन को दूषित कर देते हैं। वही दूषित भोजन जब व्यक्ति करता है तो कीटाणु शरीर में प्रवेश कर जाते हैं।

★

१२. बीमारी की रोकथाम

संक्रामक रोग एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को होते हैं। बीमारी के कीटाणु रोगी के सम्पर्क में आने से अथवा किसी भी माध्यम से स्वस्थ पुरुष के शरीर में प्रवेश कर बीमारी फैलाते हैं।

(१) रोग का पता जल्दी से जल्दी लगाना चाहिए व रोगी को इलाज देकर अच्छा करना चाहिए।

(२) **अलग रखना** (Isolation)—रोगी को एक कमरे में या अस्पताल में अलग रखना चाहिए। रोगी को किसी से भी मिलने नहीं देना चाहिए। रोगी के उपयोग में लाई गयी वस्तुएँ जैसे—बरतन, टावेल, कपड़े इत्यादि पानी में उबालना चाहिए। बिस्तर इत्यादि धूप में डालना चाहिए। रोगी के अच्छा होने के बाद कमरे के फर्श व दिवालों को अच्छी तरह धोना चाहिए।

रोगी का खंकार, मल-मूत्र इत्यादि जला देना चाहिए या निमक्रंमण करके घर से दूर गाड़ देना चाहिए।

अधि-सूचना :

कुछ बीमारियों की सूचना अस्पताल में जल्दी से जल्दी देना चाहिए जैसे—हैजा, चेचक, डिप्थेरिया इत्यादि।

कुछ संक्रामक रोग के कीटाणु किसी माध्यम द्वारा जैसे मलेरिया, मच्छरों के द्वारा व हैजा मक्खियों के द्वारा फैलता है अतः माध्यम को नष्ट करना चाहिए।

कुछ संक्रामक रोग मनुष्य को मनुष्य के सम्पर्क में आने से हो जाते हैं। रोग के कीटाणु मनुष्य के खाँसने या छीकने पर थूक की बूँदों के साथ बाहर आते हैं व स्वांस द्वारा स्वस्थ मनुष्य के अन्दर पहुँच जाते हैं। अतः खाँसते व छींकते समय मुँह पर रूमाल रखना चाहिए।

★

१३. रोगी का परीक्षण

जब रोगी आपके पास आता है तो उसके साथ मधुर व्यवहार करना चाहिए व उसे महसूस होना चाहिए कि आप उसके प्रति पूर्ण रूप से हमदर्द हैं। इससे रोगी का विश्वास आपके प्रति बढ़ेगा और वह आपके दिए हुए सुझावों पर पूर्ण रूप से अमल करने की कोशिश करेगा।

जब रोगी आता है तो रोगी की जानकारी इस प्रकार लें :

(१) वर्तमान बीमारी की जानकारी।

(२) भूतकाल की बीमारी की जानकारी।

(३) मासिक धर्म की जानकारी (महिला)।

(४) इलाज की जानकारी।

(५) पारिवारिक जानकारी।

(६) कार्य की जानकारी।

नाम, पता, उम्र, धन्धा इत्यादि पूछना चाहिए।

(१) वर्तमान बीमारी की जानकारी :

सर्वप्रथम रोगी से पूछिए **उसे क्या तकलीफ है ?** उसके तकलीफ बताने पर उससे पूछिए **इस तकलीफ के साथ-साथ और क्या तकलीफ है ?** क्योंकि कई मरीज सिर्फ एक ही शिकायत लेकर आते हैं जैसे किसी मरीज को बुखार है अतः वह डाक्टर के पास बुखार के लिए जाता है परन्तु साथ ही उसे सर्दी भी है जिसे वह महत्व नहीं देता है अतः इसके लिए सबसे अच्छा उपाय है कि आप मरीज से पूछिये कि **वह बिलकुल अच्छा कितने दिन पहले था व फिर क्या हुआ ?** अतः मरीज आपको पूर्ण जानकारी सही दे सकेगा। उपरोक्त उदाहरण में मरीज आपको बतायेगा कि ५-६ रोज पहले वह बिल्कुल अच्छा था व फिर उसे सर्दी हुई व कल से बुखार आया है।

मरीज की बताई गयी सभी शिकायतों को आप लिख लीजिये व उसके सामने लिख लीजिये कि वे तकलीफें कब से हैं। जानकारी एकत्रित करते समय ध्यान रखिये कुछ मरीज मेडिकल शब्दों का प्रयोग करते हैं जैसे किसी मरीज को बुखार आता है तो वह आपके पूछने पर कहेगा उसे मलेरिया हो गया है या जोड़ों में दर्द होने पर कहेगा कि उसे र्‍यूमेटिज्म (Rheumatism) हो गया है। ऐसे मरीजों को कहिएगा कि वे उनकी तकलीफ बतावें व पूछिए **कि उन्हें बुखार आता है या जोड़ों में दर्द होता है ?** व उन्हें मेडिकल शब्द उपयोग में लाने से मना करे।

फिर आप प्रत्येक शिकायत के बारे में मरीज से प्रश्न पूछ कर पूर्ण जानकारी लीजिये जैसे किसी मरीज के पेट में दर्द होता है। **आप मरीज से पूछिए दर्द कहाँ होता है ?** व देखिये कि मरीज अपने पेट में एक विशेष स्थान बताता है अथवा पूरे पेट में बताता है। अगर पेट में एक ही स्थान पर दर्द बताता है तो वह दर्द उस स्थान

पर रहने वाले अंग के कारण हो सकता है। फिर आप पूछिये **यह दर्द उसी स्थान पर रहता है अथवा किसी दूसरे स्थान पर जाता है?** जैसे—अपेन्डिसाइटिस का दर्द पेट के ऊपर व बीच के हिस्से से शुरू होता है व दर्द पेट के दाहिनी तरफ व नीचे आता है। **फिर पूछिये दर्द पीड़ादायक होता है अथवा धीरे-धीरे होता है?** पीड़ादायक दर्द अपेन्डिसाइटिश, कोलिसिस्टाइटिस इत्यादि में होता है। फिर आप पूछिये **दर्द रात में होता है अथवा दिन में व अगर दर्द रात में होता है तो उसकी नींद खुल जाती है?** क्योंकि अमाशय में छाले का दर्द पेट खाली होने पर होता है अतः रात के २-३ बजे साधारणतया पेट खाली हो जाता है व मरीज को दर्द होता है। **दर्द किस प्रकार का होता है जलन होती है अथवा सूई चुभने जैसा होता है अथवा ऐंठन आती है?** पेट में जलन हाइपरएसिडिटि (Hyper-acidity) व अमाशय में छाला होने पर होती है। सूई चुभने जैसा दर्द अमाशय के केन्सर में होता है। ऐंठन जैसा दर्द सूजन आने पर होता है।

किस वस्तु के लेने से दर्द कम हो जाता है व किस प्रकार की वस्तु लेने से दर्द बढ़ जाता है? जैसे हाइपर एसिडिटी या अमाशय के छाले में दूध लेने पर दर्द कम हो जाता है। इसी प्रकार हृदय के कारण जो दर्द होता है वह काम करने पर बढ़ जाता है व आराम करने पर कम हो जाता है।

(२) भूतकाल की बीमारी की जानकारी :

आप मरीज से पूछिये कि—**इसी प्रकार की बीमारी उसे पहले हुई थी क्या व कब हुई थी?** जैसे मरीज को आँव-खून के दस्त बार-बार लग जाते हैं। अतः उसे अमिबायोसिस (Amoebiosis) हो सकता है। इसी तरह र्‌यूमेटिज्म (Rheuma-tism) में जोड़ों में दर्द बार-बार होता है।

उसे और कोई भी बीमारी पहले हुई है क्या? फिर उससे गुप्त रोगों के बारे में पूछिये कि **उसे कभी शिश्न पर कोई छाला हुआ था या कभी पेशाब करने की जगह से मवाद निकला था क्या?**

(३) मासिक धर्म की जानकारी :

महिला मरीज से मासिक धर्म के बारे में जानकारी लेना चाहिए। साधारण-तया मासिक धर्म २८ दिनों में आ जाता है। परन्तु यह कम या ज्यादा भी हो सकता है। फिर पूछिये **मासिक धर्म कितने वर्ष की उम्र से आना शुरू हो गया था?** और अगर मासिक धर्म आना बन्द हो तो पूछिये **कितने समय पहले से मासिक धर्म बन्द हो गया है?** साधारणतया ४५ वर्ष की आयु से मासिक धर्म आना बन्द हो जाता है। फिर पूछिये **मासिक धर्म में खून अधिक तो नहीं जाता है या कम तो नहीं जाता है?** अगर मासिक धर्म के समय खून २ दिन से कम या ८ दिनों से अधिक दिन आवे तो उसका इलाज जरूरी होता है फिर पूछिये **उसे मासिक धर्म**

के समय पेट में दर्द होता है क्या ? मासिक धर्म के समय दर्द स्पास्मोडिक डिस्मनोरिया (Spasmodic dismannorhea) में होता है।

(४) इलाज की जानकारी :

रोगी से पूछिये कि **उसने पहले किसी डाक्टर को दिखाया है तथा इलाज भी कराया है या नहीं ?** अगर मरीज को रक्तालपता (Anaemia) हो व उसने पहले क्लोरमफेनिकाल लिया हो तो रक्तालपता क्लोरमफेनिकाल (chloramphenicol) के कारण हो सकती है।

(५) पारिवारिक जानकारी :

रोगी से उसके परिवार के सदस्यों के स्वास्थ्य के बारे में जानकारी लेना चाहिए। मरीज से पूछिये कि **उसके परिवार वाले (माता, पिता, बच्चे, दादा, दादी, इत्यादि) स्वस्थ हैं या किसी को कोई बीमारी है ?** अगर कोई परिवार का सदस्य मर गया हो तो पूछिये वह **किस बीमारी से मरा था ?** क्योंकि कुछ बीमारियाँ वंशानुगत (Heredatory) होती हैं।

(६) कार्य की जानकारी :

फिर रोगी से पूछिये कि—**वह क्या काम करता है ?** क्योंकि कुछ बीमारियों का सम्बन्ध कार्य से होता है जैसे मन्दसौर में पेम के कारखानों में काम करने वालों को न्यूमोकोनियोसिस (Pneumoconiosis) नामक बीमारी हो जाती है। फिर पूछिये कि **वह तम्बाखू खाता है या बीड़ी, सिगरेट पीता है या शराब पीता है अथवा नहीं ?** क्योंकि बीड़ी सिगरेट पीने वालों को ब्रोकांइटिस (Bronchitis) की या केन्सर की बीमारी हो जाती है व शराब पीने वालों को यकृत (liver) की बीमारी हो सकती है।

साधारण प्रश्न :

पाचन संस्थान (भोजन नली, अमाशय, छोटी आँत व बड़ी आँत)

दर्द—दर्द पेट के किसी भाग में होता है या पूरे पेट में होता है ? अगर दर्द पेट के किसी एक ही भाग में होता है तो उस भाग में स्थित अंग में बीमारी हो सकती है जैसे अगर दर्द पेट के नीचे व दाहिनी तरफ होता है तो दर्द अपेन्डिसाइटिस के कारण हो सकता है। **क्या दर्द किसी भी तरफ जाता है ?** जैसे अपेन्डिसाइटिस का दर्द पेट के ऊपर व बीच वाले भाग से शुरू होता है व पेट के नीचे व दाहिनी तरफ के भाग में जाता है। इसी तरह गुर्दे में खराबी होने पर दर्द पेट में से शुरू होकर पीठ की तरफ जाता है। **क्या दर्द रुक-रुक कर होता है या लगातार होता है ?** आँतों में सिकुड़न के कारण दर्द रुक-रुक कर होता है। अमाशय के केन्सर के कारण दर्द लगातार होता रहता है। **क्या दर्द कुछ खाने पर कम हो जाता है अथवा अधिक हो जाता है ?** अमाशय में या ड्यूडिनियम में छाला होने पर दर्द खाने के बाद कम हो जाता है। **क्या दर्द के कारण रात में नींद खुल जाती है ?**

अमाशय के छाले में रात २-३ बजे के करीब पेट खाली हो जाता है अतः अम्ल का उत्सर्जन होता है व छाले के समीप्य में आने से मरीज को पीड़ा होती है व उसकी नींद दर्द के कारण खुल जाती है। **"किस वस्तु के उपयोग से दर्द ज्यादा हो जाता है ?** अमाशय के छाले में मिर्च इत्यादि अधिक लेने से दर्द बढ़ जाता है। **"भूख पहले से बढ़ गई है अथवा कम हो गई है ?** साधारणतया पेट की बीमारी में भूख कम हो जाती है परन्तु जब डयोडिनियम (छोटी आँत का पहला भाग) में छाला होता है तो मरीज ज्यादा खाता है क्योंकि मरीज को खाने पर आराम महसूस होता है। भूख अगर कम हो गयी है तो पूछिये **कि आपको भूख नहीं लगती है या दर्द होने के डर के कारण आप खाना नहीं खाते हैं ?**

क्या आपका वजन पहले से कम हुआ है या बढ़ गया है या उतना ही है ?

उल्टी—"उल्टी दिन में कितनी बार होती है ? क्या उल्टी होने के बाद दर्द कम हो जाता है ?"

अगर कहीं पर दर्द रुकावट (obstraction) के कारण होता है तो उल्टी होने के बाद मरीज को आराम महसूस होता है।

"उल्टी कितनी मात्रा में होती है व उसका रंग कैसा है ?"

क्या उल्टी काफी के रंग की आती है ? अगर उल्टी के साथ खून आयेगा तो उसका रंग कॉफी की तरह हो जाता है क्योंकि अमाशय में खून का तरल भाग व खून के कण अलग-अलग हो जाते हैं।

"क्या आपको उल्टी आने के पहले घबराहट होती है ?" पाचन संस्थान की बीमारी के कारण उल्टी हमेशा घबराहट होने के बाद होती है।

"क्या हवा बराबर निकलती है अथवा नहीं ?" क्या हवा निकलने के पश्चात् आपको आराम मिलता है ?

क्या कोई भी पदार्थ निगलते समय तकलीफ होती है ? यह तकलीफ साधारणतया भोजन नली की बीमारी के कारण होती है।

दस्त—दस्त दिन में कितनी बार जाना पड़ता है ? क्या कोई चीज खाने पर दस्त लग जाते हैं। जैसे कुछ व्यक्तियों को तली चीजों के खाने के बाद दस्त लग जाते हैं क्योंकि तली चीजों को हजम करने की शक्ति आंत में क्षीण हो सकती है।

"दस्त कौनसे रंग के आते हैं ?" सफेद पतले चावल के मांड की तरफ के दस्त हैजे में, पतले दस्त दस्त लगने में (Diahhorea) आँव व खून के दस्त डिसेन्टरी (Dysentery) में आते हैं।

"क्या दस्त के पहले पेट में ऐठन होती है ?" संक्रमण के कारण जो दस्त लगते हैं उनमें ऐठन होती है।

कब्जियत—क्या कब्जियत व दस्त बारी-बारी से होते हैं ?

कृमि के संक्रमण में कभी मरीज को पतले दस्त लग जाते हैं व कभी-कभी कब्जियत हो जाती है। **क्या दस्त में खून या आंव आती है ? क्या पेट में दर्द होता है ? क्या मरीज भोजन पेट भरकर करता है ? क्या आप भोजन में हरी साग-सब्जियाँ लेते हैं या नहीं ?** अगर कोई व्यक्ति भोजन में हरी सब्जियाँ कम लेते हैं तो भी कब्जियत हो जाती है।

अगर मरीज को दर्द होता हो तो पूछिये **क्या उसे पाद (हवा गुदा द्वार के द्वारा निकलना) आने के बाद आराम महसूस होता है ?**

अगर पेट में दर्द दाहिनी तरफ व ऊपर की तरफ हो तो पीलिया के लिए उसकी आँखें देखिये व मरीज से पूछिये **क्या उसे पेशाब पीला आता है ? क्या टट्टी सफेद रंग की आती है ?** पीलिया की बीमारी में पेशाब पीला आता है व टट्टी सफेद रंग की आती है क्योंकि वसा का हाजमा (Digesion) नहीं हो पाता है। **क्या उसके परिवार में किसी दूसरे सदस्य को पीलिया है ?** क्योंकि यह संक्रामक रोग है अतः किसी परिवार वाले पुरुष के द्वारा हो सकता है। **शरीर में खुजली चलती है क्या ?**

प्रजनन संस्थान :

क्या पेशाब में जलन होती है ? व्यक्ति अगर पानी कम पीता है या गोनोरिया (Gonorrhea) में मूत्र मार्ग (Urethra) में छाले हो जाते हैं अतः मरीज को जलन होती है। **क्या पेशाब के रास्ते से मवाद निकलता है ?** गोनोरिया (Gonorrhea) में पेशाब के रास्ते से मवाद निकलता है। क्या **अण्डकोष** (Testies) **में सूजन आई है ?** किसी चोट की वजह से सूजन आ सकती है। **शिश्न पर कभी छाला हुआ है ?**

रक्त संचार प्रणाली (Cardiovascular System) :

क्या कभी जोड़ों में दर्द होता है ? र्यूमेटिजम (Rheumatism) में जोड़ों में दर्द होता है। **दर्द बड़े जोड़ों में होता है अथवा छोटे-छोटे जोड़ जैसे—अंगुलियों इत्यादि के जोड़ों में होता है ?** र्यूमेटयोइड आर्थ्राईटिस (Rheumatiod Arthritis) में छोटे जोड़ों में दर्द होता है। **दर्द सभी जोड़ों में एक साथ हुआ या पहले एक जोड़ में हुआ व फिर दूसरे में व फिर तीसरे में ?** र्यूमेटिजम (Rheumatism) में दर्द पहले एक जोड़ में होता है व फिर दूसरे में। फिर तीसरे में। **क्या कभी जोड़ों में सूजन आई है ?** र्यूमेटिजम (Rheumatism) और र्यूमेटाइड (Rheumatoid)। **क्या स्वांस तेजी से चलती है ? स्वांस तेजी से कुछ कार्य करने के पश्चात् चलने लगती है ?** हृदय की बीमारी में स्वाँस कुछ कार्य करने के पश्चात तेजी से चलने लगती है। **छाती में दर्द होता है क्या व यह दर्द कहाँ जाता है, कन्धे पर या हाथों में या गरदन पर ?** साधारणतया हृदय के कारण जो दर्द होता है वह छाती में स्टरनम (Sturnum) अस्थि जो कि छाती के बीच में रहती है, के पीछे से शुरू होता है व बायें हाथ में या बायें कन्धे पर या गरदन के बांयी तरफ जाता है। **क्या दर्द कुछ**

कार्य करने से बढ़ जाता है ? हृदय की बीमारी के कारण जो दर्द होता है वह कार्य करने से बढ़ जाता है व आराम करने से कम हो जाता है। **क्या दर्द आराम करने से कम हो जाता है ? क्या धड़कन महसूस होती है ? क्या पैरों में सूजन आ जाती है ?** कन्जेस्टिव कार्डियक फेल्यूर (C. C. F.) में पैरों में सूजन आ जाती है।

क्या खाँसी खंकार के साथ आती है व खंकार के साथ खून आता है ? माइट्रल स्टनोसिस (Mitral Stenosis) में खंकार के साथ खून आता है।

श्वसन संस्थान :

खाँसी—खाँसी सूखी आती है या खाँसी के साथ खंकार भी आती है ? कुकर खाँसी में खाँसी सूखी आती है निमोनिया ने खाँसी के साथ खंकार भी आती है। **खंकार कौन-से रंग का आता है ?** सफेद खंकार ब्रोकांइटिस (Bronchitis) में आता है। लाल खंकार जिसमें खून होता है तपेदिक (T. B.) में आता है। पीला सफेद मवाद वाला जिसमें बदबू आती है ब्रांकिएक्टेसिस (Bronchactasis) में आता है।

दर्द—छाती में दर्द होता है क्या व कौन-सी जगह होता है ? स्वांस लेने से या खाँसने पर दर्द ज्यादा हो जाता है क्या ? फेफड़ों के संक्रमण में दर्द स्वांस लेने में या खाँसने में बढ़ जाता है।

मूत्र संस्थान—क्या पेशाब के वक्त जलन होती है ?

क्या पेशाब में खून आता है ?—पेशाब में खून गुर्दे (Kidney) की टी. बी. में आता है, या पथरी (Stone) मूत्राशय मूत्रनली या गुर्दे में होने पर आता है।

क्या पेशाब में मवाद आता है ? गोनोरिया में आता है। **क्या पेट में दर्द होता है व दर्द नीचे अंडकोष (Testes) की तरफ जाता है।** गुर्दे (Kidney) की बीमारी में दर्द नीचे की तरफ जाता है। **क्या परिवार के किसी सदस्य को रक्तचाप (Blood Pressure) की बीमारी है ?** नेफ्राइटिस (Nephritis) व (Nephrotic Syndrom) में रक्तचाप बढ़ जाता है। **क्या मुँह पर सूजन आती है ?** नेफ्रोटिक सिन्ड्रोम (Nephrotic Syndrom) में मुँह पर व हाथ पैरों पर सूजन आ जाती है।

परीक्षण करना—रोगी से बीमारी की जानकारी लेने के पश्चात् उसका परीक्षण करना चाहिए।

परीक्षण इस प्रकार करना चाहिए :

(१) देखकर (Inspection)

(२) छूकर (Palpation)

(३) बजाकर (Percussion)

(४) आले द्वारा (Ausculation By Stethoscope)।

(१) **देखकर** (Inspection)—सर्वप्रथम देखिये रोगी स्वस्थ दिखाई देता है या बीमार या सामान्य दिखाई देता है।

रोगी मोटा है दुबला है या सामान्य है । मुंह पर पैरों पर या कहीं सूजन है या नहीं । कहीं कोई फोड़ा इत्यादि या फुनसियाँ तो नहीं हैं ।

त्वचा—त्वचा में सफेदपन, नीलापन, पीलापन है अथवा नहीं । पीलापन पीलिया की बीमारी के कारण हो सकता है । नीलापन खून में आक्सीजन की कमी के कारण या किसी विष के प्रभाव से हो सकता है ।

त्वचा में कहीं बारीक-बारीक फुन्सियाँ या दाफड़ तो नहीं है व इनमें खुजली चलती है क्या ? यह त्वचा की बीमारी में हो जाता है, जैसे—स्केबिस ।

आँख (Eye)—(१) आँखें अन्दर की ओर धँसी हुई दिखाई देती हैं या सामान्य दिखाई देती हैं । डिहाइड्रेशन में आँखें अन्दर की तरफ धँसी दिखाई देती हैं ।

(२) पलकें आँखों पर गिरी हुई हैं या नहीं । Ptosis में पलकें आँखों पर गिर जाती हैं । फिर स्वच्छ मंडल (Conjectiva) को देखिये । पीलापन, सफेदपन व नीलापन, लालपन आँखों में चोट लगने पर हो सकता है या आँखें आने पर हो जाता है ।

पुतली (Pupil)—आकार देखिये, दोनों आँखों की पुतली बराबर है अथवा नहीं । इस पर प्रकाश का असर होता है अथवा नहीं । साधारणतया प्रकाश गिरने पर पुतली सिकुड़ जाती है ।

मुँह और गला

होंठ—रंग देखिये, पीलापन, सफेदपन, नीलापन कोई छाला तो नहीं है ।

जबान—रंग, छाले हैं अथवा नहीं, जमाव (Coated) सफेद जमाव मोतीझरे में दिखाई देगा ।

दाँत—दाँत व मसूड़े देखना चाहिए । मसूड़ों में से पीव या खून आ रहा है क्या ?

गला—गले की झिल्ली का रंग संक्रमण के कारण लाल हो जाता है ।

टान्सिल (Tonsil) बड़े हैं क्या व उन पर कोई सफेद झिल्ली तो नहीं है जो डिप्थेरिया में पाई जाती है । अंगुलियों के नख—सफेदपन, पीलापन, नीलापन ।

नाड़ी—नाड़ी करीब एक मिनट तक देखना चाहिए । नाड़ी में निम्न चीजें देखनी चाहिए :

(१) **गति** (Rate)—नाड़ी एक मिनिट में कितनी बार धड़कती है ।

(२) **रिदम** (Rhythum)—दो धड़कन के बीच का समय बराबर है या नहीं ।

(३) नाड़ी का उछाल (Amplitude)

(४) केरेक्टर (Charecture)

(५) धमनी की हालत (Condition of Versel Wall) देखिये । धमनी मोटी व कड़क तो नहीं हो गयी है ।

छाती दो तरफ एक सरीखी है या नहीं। श्वसन क्रिया एक मिनिट में कितनी बार होती है।

पेट—पेट फूला हुआ है अथवा सामान्य है। **छूकर** (Palpation)—यकृत, पित्ताशय, तिल्ली व गुर्दे को देखिये।

१४. दर्द
(PAIN)

संसार में कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं है जो दर्द के बारे में नहीं जानता हो। कार्य करते समय या कभी भी मनुष्य को दर्द हो सकता है। प्रत्येक मनुष्य दर्द से बहुत डरता है व कोशिश यही करता है कि किसी भी तरह उसे दर्द से छुटकारा मिले। वह इस प्रकार के कार्य से दूर रहने की कोशिश करता है। जिस कार्य के करने से दर्द होने की सम्भावना रहती है। वास्तव में यह दर्द क्या है?

दर्द—यह एक प्रकार का रक्षा करने वाला संवेदन (Protective sensation) है जो किसी भी अंग के सामान्य कार्य न करने के कारण अथवा किसी भी अंग में चोट लगने के कारण महसूस किया जाता है। दर्द को देखा नहीं जा सकता है बल्कि महसूस किया जा सकता है।

रक्षा करने वाला संवेदन (Protective Sensation) :

दर्द इन्सान का सबसे बड़ा रक्षक है। जब कि मनुष्य दर्द को अपना सबसे बड़ा शत्रु समझता है। उदाहरण के लिए अगर आपको कोई बीमारी हो जावे और उस बीमारी का अगर जल्दी ही पता न लगे तो बीमारी उग्र रूप धारण कर लेती है और मनुष्य को उसके इलाज में काफी कठिनाई आती है। उदाहरण के लिए, किसी के पैरों में चोट लग जाती है उसे उसी समय दर्द होता है व मनुष्य अस्पताल जाकर अपना इलाज करवा लेता है व कुछ ही दिनों के इलाज के बाद ठीक हो जाता है। परन्तु इसके विपरीत अगर चोट लगने के बाद अगर मनुष्य को दर्द नहीं होता तो उसे पता ही नहीं लगता कि उसे चोट लगी है। अतः उसका इलाज करवाने का तो प्रश्न ही नहीं है। अतः उस चोट में मवाद पड़ जाता है और धीरे-धीरे उसका पूरा पैर ही सड़ जाता है और बेकार हो जाता है। परन्तु क्योंकि चोट लगने पर दर्द महसूस होता है अतः वह उसका इलाज करवा लेता है। आपने केन्सर की बीमारी के बारे में तो सुना ही होगा इसमें जो गटान होती है उसमें किसी प्रकार का दर्द नहीं होता है। अतः मरीज को मालूम ही नहीं होता कि उसे कोई बीमारी है। वह गटान बढ़ती जाती है व जब मरीज को मालूम होता है तब तक काफी देर हो चुकी होती है व मरीज की रक्षा करना बहुत ही मुश्किल हो जाता है। अतः दर्द मनुष्य का सबसे बड़ा रक्षक है।

मानव शरीर एक मशीन की तरह है। इसमें विभिन्न अंग हैं। जिनके अपने-अपने अलग-अलग कार्य हैं। दर्द इन्सान को मस्तिष्क (Brain) के द्वारा मालूम होता है। मस्तिष्क से नसें पूरे शरीर में फैली रहती हैं व जरा सा आभास होने पर ही उसकी खबर मस्तिष्क तक पहुँचा देती है।

दर्द के कारण :

(१) संक्रमण के द्वारा (By Infection)
(२) विष के द्वारा (By Toxin)
(३) सूजन (Inflamation)
(४) छाले (Ulceration)
(५) पेट फूलने पर (Distension)
(६) ऑक्सीजन की कमी के कारण (Anoxia)
(७) ऐठन होने पर (By Spasm)।

(१) **संक्रमण के द्वारा** (By Infection)—साधारणता संक्रमण किसी भी जीवाणु (Bactiria) या विषाणु (Virus) के द्वारा हो सकता है। जब ये जीवाणु या विषाणु अधिक संख्या में मानव शरीर में पहुँच जाते हैं तो मानव को दर्द होता है। जैसे—डिप्थेरिया के जीवाणु जब मानव के शरीर में प्रवेश कर जाते हैं तो गले के अन्दर टांसिल पर आक्रमण करते हैं व गले में दर्द महसूस होता है। वैसे ही (Amoeba) अमीबा नामक जीवाणु जब शरीर में पहुँच जाते हैं तो मनुष्य को दस्त लग जाते हैं व पेट में दर्द होता है।

इलाज :

जीवाणु या विषाणु को दवाइयों के द्वारा नष्ट करना चाहिए।

(२) **विष के द्वारा** (By Toxin)—कुछ विषाणु व जीवाणु स्वयं मानव अंगों पर अपना कोई हानिकारक प्रभाव नहीं छोड़ते हैं परन्तु वे विष छोड़ते हैं जो मानव शरीर के लिए हानिकारक होता है। अगर किसी भी प्रकार का विष मनुष्य के शरीर में पहुँच जाता है तो उसे दर्द होता है।

(३) **सूजन** (Inflamation)—शरीर के किसी भी अंग में किसी भी कारण से सूजन आने पर मनुष्य को जोरों का दर्द होता है, जैसे—चोट लगने पर उस स्थान पर सूजन आ जावेगी व दर्द होगा।

इलाज :

(१) आयोडेक्स या बाम लगाना चाहिए। (२) सुगनारिल (Suganaril) की गोली देनी चाहिए।

(४) **छाले** (Ulceration)—अगर शरीर के किसी भी हिस्से में छाले हो जावें तो दर्द होता है, जैसे—मुँह में, अमाशय में।

इलाज :

(१) ग्लिसरीन व बोरिक एसिड मिलाकर लगाना चाहिए।

(२) बी. काम्पलेक्स की गोली देनी चाहिए।

(३) अगर अमाशय में छाले हो तो एन्टसिड (Antacid) देना चाहिए।

(५) **पेट फूलने पर** (By Distension)—गैस इत्यादि के कारण पेट फूलने पर दर्द होता है।

(६) **ऑक्सीजन की कमी के कारण** (By Anoxia)—शरीर को शक्ति आक्सीजन से प्राप्त होती है। जब आक्सीजन की कमी होती है तो शक्ति बराबर नहीं मिल पाती है और मरीज को दर्द महसूस होता है।

इलाज :

ऑक्सीजन देना चाहिए।

(७) **ऐठन के द्वारा** (By Spasm)—पेट का दर्द सामान्यतः ऐटन के द्वारा होता है।

इलाज :

एण्टिस्पास्मोडिक जैसे बगलगन, स्पास्मिन्डान की गोलियाँ दिन में ३ बार देनी चाहिए।

दर्द को दूर करने के लिए साधारणतया एनलजैसिक (Analgesic) का उपयोग किया जाता है। ये बाजार में निम्न नामों से मिलती है, नावेलजिन (Novelgin), डिस्प्रिन, (Disprin), एनालजिन (Analgin), क्रोसिन (Crocin) इत्यादि।

नारकोटिक्स (Norcotics)—अगर एनलजेसिक (Analgesic) से दर्द में राहत महसूस न हो तो इनका उपयोग करना चाहिए, जैसे—लारजैक्टिल (Largectil) इत्यादि।

●

१५. टांसिल (Tonsilitis) में सूजन

इसे साधारण भाषा में टांसिल का बढ़ जाना कहा जाता है। यह अधिकतर स्ट्रेप्टोकोकस (Streptococcus) जीवाणु के कारण होता है।

लक्षण एवं चिन्ह (Sign & Symptoms) :

(१) मरीज को अकस्मात गले में दर्द होता है एवं कुछ भी निगलने में दर्द होता है।

(२) शरीर का तापमान बढ़ जाता है।

(३) मरीज को ठण्ड महसूस होती है, सिर दर्द होता है व शरीर में दर्द होता है।

(४) भूख कम लगती है।

(५) टांसिल लाल हो जाते हैं, व फूल जाते हैं व कभी-कभी मवाद टांसिल के ऊपरी सिरे पर दिखाई देता है।

(६) गले की लिम्फ (Lymph) ग्रन्थियाँ बढ़ जाती हैं व उनमें दर्द होता है।

जाँच (Investigation) :

(१) **खून की** (T & D)—इसमें सफेद रक्त कण बढ़ जाते हैं।

(२) Throat Culture.

इलाज :

(१) मरीज को पूर्ण आराम करना चाहिए।

(२) हल्का भोजन करना चाहिए व तरल पदार्थ अधिक लेना चाहिए।

(३) कुनकुने पानी में नमक डालकर गरारे करना चाहिए।

(४) एण्टिबायोटिक्स एवं सल्फा (Antibiotics & Sulfa) जैसे—सल्फा-डायजन, ओरिसूल (orisul), टेट्रासाइक्लिन, टेरामाइसिन के केप्सूल २५० मि. ग्राम के दिन में चार बार देना चाहिए।

(५) **एनलजेसिक** (Analgesic)—डिस्प्रिन, नावेल्जिन, क्रोसिन आदि दिन में ३ बार देना चाहिए।

(६) विटामिन बी. काम्पलेक्स देना चाहिए।

(७) उपरोक्त इलाज करने पर ५, ६ रोज में आराम हो जाता है।

१६. गले (Pharyngitis) में सूजन

इसे साधारण भाषा में गले में खराश आना भी कहा जाता है। इसमें गले की झिल्ली में सूजन आ जाती है व गले की झिल्ली लाल हो जाती है तथा गले में दर्द होता है।

कारण :

(१) जीवाणु (Bactiria), विषाणु (Virus)

(२) इरिटेन्ट गैसेस (Irritant gases)

(३) कुछ संक्रामक रोगों में।

यह सूजन पूरे गले में भी हो सकती है अथवा गले के एक भाग में भी हो सकती है।

लक्षण :

(१) गले की झिल्ली लाल हो जाती है व सूजन आ जाती है।

(२) बार-बार खंकार आता है।

(३) शरीर का तापमान बढ़ जाता है।

(४) शरीर में दर्द होता है।

(५) खाँसी आती है।

इलाज :

(१) मरीज को आराम करना चाहिए।

(२) मिर्च इत्यादि का उपयोग नहीं करना चाहिए।

(३) **सल्फा**—ओरिसूल (Orisul) की गोली १ सुबह व १ शाम ५ दिन तक देनी चाहिए।

(४) **एनलजेसिक** (Analgesic)—विकोरिल, डिस्प्रिन इत्यादि की गोली दिन में ३ बार देनी चाहिए।

(५) नमक के कुनकुने पानी से गरारे करना चाहिए।

(६) अल्कोहल का उपयोग नहीं करना चाहिए।

(७) बीड़ी, सिगरेट नहीं पीना चाहिए व तम्बाकू नहीं खाना चाहिए।

१७. नाक से खून बहना (Epistaxis)

नाक से खून आने पर उसी समय मरीज का इलाज करना अत्यावश्यक है। क्योंकि अधिक रक्त निकलने पर मरीज की मृत्यु भी हो सकती है।

नाक से खून दो जगहों से आता है :

(१) नाक के अन्दर के अगले भाग से।

(२) नाक के अन्दर के पिछले भाग से।

कारण :

(१) नाक पर चोट आने के कारण।

(२) नाक में संक्रमण के कारण।

(३) अगर नाक की झिल्ली सूखी हो।

(४) नाक पकड़ने पर कभी-कभी सेप्टम (Septum) में छाले हो जाते हैं व रक्त बहता है।

(५) रक्त चाप (Hypertension) बढ़ना।

(६) हेमरेजिक डिसिज (Hemmuragic disease)।

(७) नाक में फोड़ा होना (Nasal tumour)।

(८) संक्रामक रोग जैसे मिजल्स (Measles) आदि।

कभी- कभी नाक से खून बहकर गले में चला जाता है व गले से अमाशय में चला जाता है व उल्टी होने पर कॉफी के रंग की उल्टी होती है। जिसके निदान में काफी कठिनाई आती है।

इलाज :

(१) मरीज को बैठा दीजिये व उसका सिर आगे की तरफ कर दीजिये जिससे खून बाहर की ओर बहे नहीं तो खून गले के द्वारा पेट में जा सकता है।

(२) नाक की अन्दर से जाँच कीजिये व खून निकलने के स्थान का पता लगाइये।

(३) एक रुई का फोहा लीजिये व उसे हाइड्रोजन पेराऑक्साइड २५% या इपिनेफ्रिन (Epinephrin) १ : १००० के घोल में गीला कर लीजिये व नाक में डालकर ५ मिनिट तक दबाइये इससे खून बन्द हो जाता है।

(४) अगर इससे खून बन्द न हो तो एक रुई के फोहे को सुन्न करने वाली दवा जैसे ५% कोकेन (Cocain) में गीला करिये व नाक के अन्दर लगाइये व खून बहने वाले स्थान को काटराइज (Cauterize) कर दीजिये।

★

१८. पिम्पल्स (Acne Vulgeris)

साधारण भाषा में इसे चेहरे पर फुन्सियाँ होना भी कहा जाता है। ये फुन्सियाँ तरुणावस्था में युवक व युवतियों को होती हैं। इसके कारण बाद में निशान रह जाते हैं अतः चेहरा खराब दिखने लगता है। वैसे इसका कारण ज्ञात नहीं है परन्तु ऐसा देखा गया है कि जब तक सेक्स हारमोन्स (Sex Hormons) असर करते हैं ये फुन्सियाँ होती हैं। ये फुन्सियाँ अधिकतर चेहरे पर, गले पर व कन्धे पर होती हैं।

पिम्पल्स में चहरे पर शुरू में पिन के बोठे सिरे जैसा उभार हो जाता है जो क्रमशः बढ़ता जाता है व इसमें सफेद-सफेद गाढ़ा तरल पदार्थ भरा रहता है। यह तरल भी हो सकता है या गाँठ की तरह भी हो सकता है। किसी-किसी को पिम्पल्स ५०—६० वर्ष की उम्र तक भी पाये जाते हैं। साधारणतया ये २०—४० वर्ष की उम्र के बीच पाये जाते हैं।

लक्षण :

(१) मरीज को हल्का-हल्का दर्द होता है।

(२) खुजली चलती है।

(३) हल्की सूजन आ जाती है व छोटी-छोटी फुन्सियाँ हो जाती हैं जो बाद में फूट जाती हैं व इनमें से सफेद-सफेद तरल पदार्थ या गटान जैसी निकलती है जिसे बोलचाल की भाषा में कील कहा जाता है।

(४) चहरे पर निशान रह जाते हैं।

इलाज :

(१) **स्वास्थ्य शिक्षा**—मरीज को बीमारी के बारे में समझाना चाहिए व साथ ही समझाना चाहिए कि इलाज इसलिए किया जा रहा है कि निशान कम से कम रहें। वैसे इस बीमारी का कोई शर्तिया इलाज नहीं है।

(२) **भोजन**—मरीज को चिकनाई व मिर्च मसाले कम से कम उपयोग में लेना चाहिए।

(३) तेल व ग्रीस नहीं लगाना चाहिए।

(४) टेट्रासाइक्लिन २५० मि. ग्रा. के केप्सूल दिन में ४ बार देना चाहिए।

(५) रोजाना साबुन से नहाना चाहिए।

(६) सल्फर लोशन रात के वक्त सोते समय लगाना चाहिए व सुबह मुंह कुन-कुने पानी से धोना चाहिए।

★

१६. सिरोसिस ऑफ लिवर (Cirrhosis of Liver)

मानव शरीर में यकृत (Liver) एक केमिकल फैक्टरी का पूर्ण कार्य करता है। यह ग्लूकोज को ग्लायकोजन में परिवर्तित कर देता है। शरीर से जहरीले पदार्थों को बाहर निकालता है। जब शरीर को शक्ति की आवश्यकता होती है तो यह ग्लायकोजन को ग्लूकोज में परिवर्तित करके शक्ति प्रदान करता है। इसे शरीर का जीवन अंग (Vital Organ) कहा जाता है। अर्थात् अगर यह कार्य करना बन्द कर दे तो मानव किसी भी हालत में जीवित नहीं रह सकता है।

इसमें साधारणतया सिरोसिस आफ लिवर (Cirrhosis of Liver) नामक बीमारी हो जाती है। यह बीमारी यकृत में धीरे-धीरे होती है। इसका पता मरीज को व डॉक्टर को काफी अरसे बाद चलता है तब तक बीमारी काफी बढ़ जाती है।

सिरोसिस ऑफ लिवर (Cirrhosis of Liver)—यकृत के ऊतकों (Cell) धीरे-धीरे नष्ट होते हैं व उनका स्थान फाइब्रस टिस्यू (Fibrous Tissue) ले लेते हैं। ये इसके सामान्य कार्य में बाधा डालते हैं व अन्त में कार्य करना बन्द कर देते हैं।

कारण :

(१) **शराब के द्वारा** (Alcoholism)—जो मनुष्य शराब का उपयोग करते हैं और शराब के बाद उत्तम भोजन नहीं करते हैं उन्हें यह बीमारी हो जाती है। भारतवर्ष में रहने वाले अधिकतर गरीब लोग हैं। कुछ लोगों को शराब पीने की आदत हो जाती है अतः ऐसा देखा गया है कि मनुष्य के पास पैसा कम है और अगर उसे शराब पीने की आदत है तो वह उन पैसों की शराब पियेगा रोटी नहीं खायेगा।

(२) **कुपोषण** (Malnutrition)—जो लोग उत्तम भोजन नहीं करते हैं। खासकर जिन लोगों के भोजन में प्रोटीन व विटामिन की कमी होती है

(३) **यकृत में सूजन** (Hepatitis)—लीवर में सूजन आने के बाद में उसका इलाज करवा लेने के बाद भी सिरोसिस (cirrhosis) हो सकता है।

(४) **हीपेटोटाक्सिन** (Hepatotoxin)—जिन वस्तुओं का यकृत पर जहरीला (Toxic) असर होता है उनका बार-बार उपयोग करने पर जैसे कुछ दवाइयाँ कार्बन टैट्रा क्लोराइड, क्लोरोफार्म, फॉस्फोरस इत्यादि।

(५) **कन्जनाइटल सिफिलिस** (Congenital Syphilis)—जिन बच्चों को जन्म से ही सिफिलिस की बीमारी होती है, उन्हें सिरोसिस की सम्भावना अधिक रहती है।

(६) **संक्रामक रोग** (Infectious Disease)—कुछ संक्रामक रोगों के बाद भी सिरोसिस (Cirrhosis) होने की सम्भावना रहती है, जैसे—मलेरिया, पीलिया इत्यादि।

लक्षण एवं चिन्ह :

(१) शुरू में कोई लक्षण दिखाई नहीं देते हैं। बहुत समय बाद लक्षण दिखाई देते हैं।

(२) मरीज को कमजोरी महसूस होती है व थकान जल्दी आती है।

(३) मरीज का वजन कम हो जाता है व भूख कम लगती है।

(४) मरीज को घबराहट होती है।

(५) पेट में गैस बनती है व उल्टियाँ होती हैं।

(६) पेट के ऊपर, दाहिने और बीच के भाग में दर्द होता है।

(७) कुछ मरीजों को पतले दस्त लग जाते हैं व कुछ को कब्जियत रहती है।

(८) महिलाओं की माहबारी बन्द हो जाती है या देर से आती है।

(९) नपुँसकता आ सकती है।

(१०) मनुष्य का सेक्स (Sex) के प्रति लगाव कम हो जाता है।

(११) कभी-कभी मनुष्य की छाती में उभार आ जाता है।

(१२) १५% से २०% मरीजों को खून की उल्टियाँ होती हैं।

(१३) ७०% मरीजों का यकृत (liver) बड़ा हो जाता है।

(१४) यकृत के सिरे कड़क (firm) व बोठे हो जाते हैं।

(१५) पीलिया के लक्षण कुछ मरीजों में दिखाई देते हैं।

(१६) पेट में पानी भर जाता है व पेट फूल जाता है।

(१७) पैरों में सूजन आ जाती है।

(१८) ३५% से ५०% मरीजों का तापमान बढ़ जाता है।

(१९) छाती और पेट की शिराएँ (Veins) फूल जाती हैं।

जाँच (Investigation) :

बायोप्सी (Biopsy)—यकृत के हिस्से को लेकर लेबोरेटरी में जाँच करवाना चाहिए।

इलाज :

(१) शराब पीने की मनाई कर देना चाहिए।

(२) मरीज को पूर्ण आराम करना चाहिए।

(३) उत्तम भोजन करना चाहिए। भोजन में प्रोटीन अधिक मात्रा में लेने की सलाह देना चाहिए। ७५ से १०० ग्राम प्रोटीन प्रतिदिन लेना चाहिए।

(४) अगर पैरों में सूजन हो या पेट में पानी हो तो नमक बन्द कर देना चाहिए ।

(५) विटामिन देना चाहिए ।

(६) डाययूरेटिक (Diuretic) देना चाहिए जैसे—लेसिक्स (Lasix) की १ गोली रोज देनी चाहिए ।

(७) आयरन (Iron) की गोली देनी चाहिए ।

(८) विटामिन के की गोली देनी चाहिए ।

रोकथाम :

(१) शराब नहीं पीना चाहिए ।

(२) उत्तम भोजन करना चाहिए । भोजन में प्रोटीन व विटामिन अवश्य लेना चाहिए ।

★

२०. खाँसी

खाँसी साधारणतया शीत के मौसम में होती है। यह श्वसन संस्थान की बीमारी का पहला लक्षण है । यह नाक, गले, श्वसन नली या फेफड़ों में संक्रमण के कारण होती है । संक्रमण विषाणुओं व कीटाणुओं के कारण हो सकता है । यह कभी-कभी श्वसन संस्थान के अलावा दूसरी बीमारियों के कारण भी होती है जैसे कन्जेस्टिव कार्डियक फेलियूर (C.C.F.), माइट्रल वाल्व डिसिज (Mitral-Valve disease) ओटाइटिस मिडिया (Otitis media) इत्यादि ।

किसी भी व्यक्ति को लम्बे समय तक खाँसी आने पर प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र पर बताना चाहिए । जिससे उसके खंकार की जाँच करके खाँसी का कारण ज्ञात किया जा सके । क्योंकि लम्बे समय तक खाँसी तपेदिक (T. B) में भी चलती है व खंकार के साथ खून भी आता है ।

रोगी का परीक्षण :

(१) रोगी से पूछिये कि उसे खाँसी कबसे आ रही है ? (२) खाँसी रात्रि के समय ज्यादा आती है क्या ? (३) खाँसी के साथ खंकार भी आता है क्या ? (४) खंकार अगर आता है तो उसका रंग कौन सा है ? (५) क्या खंकार के साथ खून आता है ? (६) क्या खंकार में बदबू आती है ? (७) क्या गले में दर्द होता है ? (८) मरीज का गला देखिये व देखिये कि गले की झिल्ली लाल हो गयी है अथवा टान्सिल (Tonsil) बड़े हो गये हैं ।

इलाज :

(१) खाँसी का मिक्चर (Cough Sedative) दीजिये ।

(२) सल्फाडाइजन की २, २ गोली दिन में ३ बार दीजिये ।

(३) ए. पी. सी. की एक-एक गोली दिन में तीन बार दीजिये।

(४) एविल (Avil) की एक-एक गोली दिन में दो बार दीजिए।

(५) विटामिन बी. काम्पलेक्स की गोली दीजिये।

(६) विटामिन सी. की गोली दीजिये।

यह इलाज ३ दिनों तक कीजिये। अगर रोगी को आराम न हो तो पास के किसी दवाखाने में या प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र पर भेजिये।

प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र पर इलाज :

यहाँ डाक्टर साहब मरीज का परीक्षण करेंगे व निम्न जाँच के लिए सलाह दे सकते हैं :

(१) छाती का एक्स रे, (२) खंकार की जाँच, (३) खून की जाँच, (४) पेशाब की जाँच।

अगर इन जाँचों की रिपोर्ट सामान्य आती है तो डाक्टर साहब सम्भवतया यह इलाज देंगे :

(१) मरीज को समझाना चाहिए कि उसकी रिपोर्ट सामान्य है व वह कुछ समय में अच्छा हो जावेगा।

(२) **एण्टीबायोटिक**—टेरामाइसिन, टेट्रासाइक्लिन, सुभामाइसिन के २५० मि. ग्रा. के केप्सूल ६, ६ घन्टे से देंगे या टेरामाइसिन के १०० मि. ग्रा. के इन्जैक्शन एक सुबह व एक शाम को देंगे।

(३) A. P. C. डिस्प्रिन, नॉवेल्जिन की गोलियाँ दिन में ३ बार।

(४) एण्टीहिस्टामिनिक्स की गोलियाँ जैसे—एविल, फारिस्टाल, हिस्टफेन इत्यादि दिन में दो बार देंगे।

(५) बी. काम्पलेक्स व विटामिन सी. जैसे—सेलिन, बीकासूल इत्यादि देंगे।

अगर खंकार की जाँच में तपेदिक के कीटाणु दिखाई दिये तो टी. बी. का इलाज करेंगे।

★

२१. बुखार

बुखार कोई बीमारी नहीं होती है। यह किसी बीमारी का लक्षण है। जब कोई व्यक्ति बुखार से पीड़ित आवे तो अन्य लक्षण देखकर बुखार का कारण ज्ञात करना चाहिए। साधारणतया व्यक्ति का तापमान ९८·४°F होता है परन्तु जब तापमान ९८·४°F से बढ़ जाता है तो बुखार आना कहलाता है। यह ताप मापक (Thermameter) के द्वारा देखा जा सकता है।

परीक्षण करना :

रोगी से पूछिये (१) बुखार कबसे आता है। (२) बुखार रोजाना आता है अथवा एक दिन या दो दिन छोड़कर आता है। (३) बुखार जाड़ा देकर व कंपकपी के

03541

साथ आया व वैसे ही। (४) खाँसी सर्दी के बाद बुखार आया क्या ? (५) शरीर में दर्द होता है क्या ? (६) साथ में और क्या होता है जैसे सिर दर्द, उल्टी, जी मिचलाना। (७) त्वचा पर दाने हैं या नहीं। (८) रोगी को कोई चोट है अथवा नहीं। रोगी के शरीर पर अपने हाथों की अँगुलियाँ पीछे से रखिये व तापमान महसूस कीजिये। (९) तापमापक से रोगी का तापमान ज्ञात करिये। (१०) रोगी की नाड़ी की गति देखिये। (११) रोगी की जबान देखिये। (१२) रोगी का पूरा परीक्षण कीजिये।

इलाज :

(१) ए. पी. सी. की १–१ गोली दिन में तीन बार दीजिये। अन्य लक्षणों को देखिए व पाये जाने पर इलाज करिये।

(२) कोई भी बुखार आने पर मलेरिया के लिए क्लोरोक्वीन की गोलियाँ खून की जाँच करने के पश्चात् दीजिये।

★

२२. इनफ्लूएन्जा (Influanza)

यह एक संक्रामक रोग है। सामान्यतः यह जाड़े में होता है। इसका आक्रमण सभी आयु के व्यक्तियों में होता है।

प्रतिनिधि—इनफ्लूएन्जा वायरस (विषाणु)

उद्भवन काल—२४ से ४८ घण्टे।

लक्षण :

(१) यह रोग अकस्मात होता है।
(२) सिर व पीठ में दर्द होता है।
(३) रोगी को भूख नहीं लगती है।
(४) कभी-कभी घबराहट व उल्टी होती है।
(५) मरीज को ठंड लगती है।
(६) शरीर का तापमान ९९° F से १०१°F तक हो जाता है।
(७) सूखी खाँसी आती है।
(८) कभी-कभी छाती में दर्द होता है व श्वांस तेजी से चलने लगती है।
(९) कभी-कभी खाँसी के साथ गुलाबी, झागदार, चिठा खंकार आता है।
(१०) कभी-कभी पेट में दर्द होता है।

जटिलता (Complication) :

क्रोनिन ब्रोंकोइटिस (Chronic Bronchitis), तपेदिक (Tuberculosis), प्लूरेसी (Pleurisy), नाक से खून आना (epistaxis), फेफड़ों का सिकुड़ना (Pulmonary fibrosis), हृदय का बड़ा हो जाना (Cardiac dilatation), हृदय का कमजोर होना (Myocardial Weakness), जोड़ों में दर्द होना (Arthritis)।

इलाज :

(१) रोगी को पूर्ण आराम की सलाह दीजिये।

(२) रोगी को तरल पदार्थ भोजन में लेना चाहिए। ३००० सी. सी. से ५००० सी. सी. तरल पदार्थ और पानी रोजाना लेना चाहिए।

(३) ए. पी. सी. या डिस्प्रिन या नावेलजिन या विकोरिल की गोली १-१ दिन में ३ बार दीजिये।

(४) मरीज को नमक के कुनकुने पानी से गरारे करने की सलाह दीजिये।

(५) यह रोग विषाणुओं के कारण होता है अतः इसका कोई विशेष इलाज नहीं है परन्तु दूसरे संक्रमण से रक्षा हेतु सल्फाडायजन २-२ गोली दिन में ३ बार या।

(a) **एण्टीबायोटिक्स** (Antibiotics)—टेरामाइसिन या टेट्रा साइक्लिन या सुबामाइसिन २५० मि. ग्रा. के केप्सूल दिन में चार बार देना चाहिए।

(b) खाँसी के लिये कफ मिक्सचर, या बेनिड्रिल या जिट कफ एक्सपोरेन्ट १-१ चम्मच ३ बार देना चाहिए।

फैलना :

रोग के विषाणु नाक व गले की झिल्ली पर आक्रमण करते हैं। यह रोग रोगी के खाँसने से, छींकने से, हँसने से, बात करने से क्योंकि खाँसने से मुँह से कुछ थूक की बूंदें भी बाहर आती हैं। उन बूंदों में विषाणु रहते हैं। दूसरे स्वस्थ मनुष्य को हो सकता है। रोगी के कपड़े, रूमाल इत्यादि के इस्तेमाल करने से बीमारी फैलती है।

बचाव :

(१) रोगी को खांसते वक्त अपने मुँह पर रूमाल रखना चाहिए।

(२) रोगी का रूमाल, बर्तन इत्यादि उपयोग में नहीं लाना चाहिए।

(३) जाड़े से बचना चाहिए व जाड़े में ऊनी कपड़े पहनना चाहिए।

★

२३. निमोनिया (Pneumonia)

यह रोग किसी भी उम्र में हो सकता है। मगर यह रोग अधिकतर बच्चों में पाया जाता है। अधिकतर यह जाड़े के मौसम में होता है।

प्रतिनिधि—न्यूमोकोकस (जीवाणु)।

लक्षण :

(१) रोगी सर्दी, खांसी व बुखार की जानकारी २ से १० रोज पहले की देगा।

(२) तापमान १००°F से १०५°F तक हो सकता है व कंपकपी होती है।

(३) खाँसी—पहले सूखी खाँसी आती है फिर चिकना-चिकना खंकार निकलता है व कुछ दिनों बाद खंकार में मवाद आता है कभी-कभी खून भी आता है।

(४) छाती में दर्द होता है जो खाँसते वक्त व श्वांस लेते वक्त बढ़ जाता है।

(५) श्वांस तेज चलने लगती है।

(६) होठ, नाखून जबान इत्यादि नीले हो जाते हैं।

(७) सारे शरीर में दर्द होता है।

(८) नाड़ी तेज चलने लगती है।

जाँच (Investigation) :

(१) खून की जाँच में रक्त के सफेद कण १०,००० से ३०,००० तक पाये जाते हैं जबकि सामान्यत: ये ६००० से ७००० तक होते हैं।

(२) **एक्सरे छाती का**—Homogenous shadow invol\ing all or part of one or more lobes.

जटिलता :

फेफड़े (Abcess) (पीप होना)

(प्लूरा) फेफड़े की बाहरी झिल्ली—Pleurasy (फेफड़े में पानी भर सकता है) पीप (empyma) हो सकता है

नाड़ी संस्थान—मेनिन्जायटिस (Meningitis),

पाचन संस्थान—अमाशय बड़ा हो सकता है (Acute Dilation of Stomach)। यकृत में सूजन आ सकती है (Acute Hepatitis)।

इलाज :

जन स्वास्थ्य रक्षक को—

(१) सल्फाडाइजिन की २-२ गोली दिन में ३ बार देना चाहिए।

(२) ए. पी. सी. की १-१ गोली दिन में तीन बार दीजिये।

(३) विक्स या बाम रोगी की छाती में मलिये।

(४) मरीज को गर्म रखना चाहिए।

अगर आराम न हो तो मरीज को प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र भेजिये जहाँ डाक्टर साहब मरीज की जाँच करेंगे व सम्भवतया निम्न इलाज करेंगे :

विशेष इलाज (Specific Treatment) :

(१) क्रिस्टेलाइन पेनिसिलिन (Crystaline Penicillin) के १ मेगा यूनिट के इन्जेक्शन हर ८ घण्टे में लगाना चाहिए। अगर मरीज को पेनिसिलिन से रिएक्शन होती हो तो एण्टीबायोटिक्स (जैसे टेट्रासाइक्लिन. या टेरामाइसिन या इरिथ्रोमाइसिन इत्यादि) के २५० मि. ग्रा. के केप्सूल ६–६ घन्टे से देना चाहिए या १०० मि. ग्रा. के इन्जेक्शन ६–६ घन्टे से लगाना

चाहिए या एम्पीसिलिन के २५० से ५०० मि. ग्रा. के केप्सूल ६ से ८ घन्टे में दे सकते हैं।

(२) रोगी को पूर्ण आराम की सलाह देना चाहिए।
(३) रोगी के शरीर को तपाना चाहिए।
(४) खाँसी के लिए खाँसी का मिक्चर देना चाहिए या बेनिड्रल कफ सायरप भी दे सकते हैं।
(५) विक्स या बाम छाती व पीठ पर मलना चाहिए।
(६) दर्द के लिए ए. पी. सी. या विकोरिल या डिस्प्रिन या क्रोसिन या नावलजिन इत्यादि की गोली दिन में तीन बार दीजिये।
(७) **अगर होंठ, जीभ, नख नीले हो जावें या मरीज को श्वांस चल रहा हो** तो रोगी को नाक के द्वारा ऑक्सीजन देनी चाहिए।
(८) **अगर मरीज बड़बड़ाता हो तो** क्लौरल हाइड्रेड या लारजेक्टिल या परालडिहाइड देना चाहिए।
(९) अगर मरीज की हालत अधिक खराब दिखाई दे तो डेकाड्रान ४ मि. ग्रा. का इन्जेक्शन देना चाहिए या कोर्टिसोन की गोलियाँ २०० मि. ग्रा. देना चाहिए।
(१०) विटामिन सी. या सेलिन की एक-एक गोली दिन में दो बार दीजिए।
(११) बी. काम्पलेक्स यूनि बीकाम्पलेक्स की एक-एक गोली दिन में २ बार दीजिये।

★

२४. क्षय रोग

(TUBERCULOSIS)

क्षय रोग को तपेदिक, यक्ष्मा या टी. बी. भी कहते हैं। यह एक संक्रामक रोग है तथा सदियों से मनुष्यों का शत्रु रहा है। यह रोग वंशानुगत (Congenital) नहीं है। यह रोग छुआ-छूत का है। यह रोग गाँव व शहरों में समान रूप से पाया जाता है। यह रोग स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों में अधिक पाया जाता है। सामान्यतः रोग उम्र के साथ बढ़ता है।

यह रोग गरीब लोगों में अधिक पाया जाता है। रोग के बढ़ने पर रोग का पता चलता है। यह रोग ५ वर्ष से १५ वर्ष की आयु में कम पाया जाता है।

प्रतिनिधि :

माइको बेक्टिरियम ट्यूबरकुलोसिस (Micobactirium tuberculosis) नामक जीवाणु है। ये जीवाणु स्थिर (non motile), सीधे व लम्बे या विराम चिन्ह के आकार के होते हैं।

ये चार प्रकार के होते हैं :

(१) मनुष्य प्रारूप (Human type),

(२) गव्य प्रारूप (Bovine type),

(३) एटिपिकल (Atypical),

(४) पक्षी प्रारूप (Arian tubercle Bacillus)।

संक्रमण का स्रोत (Source of Infection) :

सामन्यतः रोग मनुष्य प्रारूप जीवाणु में होता है। संक्रमण रोगी की दूषित वस्तुएँ जैसे—कपड़े, बिछोने, तौलिये, रूमाल, बर्तन द्वारा भी फैलता है। साथ ही स्वांस के द्वारा भी जीवाणु प्रवेश कर जाते हैं व रोग हो जाता है।

गव्य (Bovine) प्रारूप से रोग भारतवर्ष में बहुत कम होता है क्योंकि भारतवर्ष में दूध को उबालकर ही उपयोग में लिया जाता है और ये जीवाणु दूध के उबालने से नष्ट हो जाते हैं।

पूर्व प्रवर्तक कारण (Predisposing factor) :

उम्र—यह रोग ५ वर्ष से कम आयु के बच्चों में व २० से ४० वर्ष की आयु के पुरुषों में अधिक पाया जाता है।

लिंग (Sex)—यह स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों में अधिक पाया जाता है।

पैतृक (Heredity)—यह रोग पैतृक रोग नहीं है परन्तु यदि घर का एक सदस्य इस रोग से ग्रसित है तो अन्य सदस्यों को हो सकता है।

पोषक आहार (Nutrition)—पौष्टिक पदार्थों की कमी रोग की वृद्धि में सहायक है।

गरीबी (Poverty)—यह रोग गरीब लोगों को अधिक होता है क्योंकि गरीबों के भोजन में पौष्टिक पदार्थों का अभाव रहता है व उनके घरों में गन्दगी भी अधिक रहती है व उनके रहने का स्थान भी पर्याप्त हवादार नहीं होता।

जीवाणुओं का मानव शरीर में प्रवेश :

जीवाणु दो तरह से शरीर में प्रवेश कर सकते हैं :

(१) स्वांस द्वारा, (२) मुख द्वारा।

(१) **स्वांस द्वारा**—जब रोगी खाँसता है तो टी. बी. के जीवाणु बड़ी मात्रा में हवा में आ जाते हैं व अगर कोई उनके पास हो तो वे जीवाणु स्वांस द्वारा दूसरे मनुष्य के शरीर में पहुँच जाते हैं व रोग पैदा कर देते हैं।

(२) **मुख द्वारा**—रोगी के खाँसने से टी. बी. के जीवाणु भोजन इत्यादि पर बैठ जाते हैं व मक्खियाँ अगर उस भोजन पर बैठती हैं तो मक्खियों के पैरों में चिपक जाते हैं व मक्खी फिर उड़कर अगर स्वस्थ मनुष्य के भोजन पर बैठती है तो जीवाणु वहीं रह जाते हैं व भोजन को दूषित कर देते हैं व वही दूषित भोजन खाने से जीवाणु स्वस्थ मनुष्य के शरीर में पहुँच जाते हैं और वह मनुष्य रोगी हो जाता है।

उद्‌भवन काल—कोई निश्चित नहीं।

क्षय रोग के प्रकार (Types of Tuberculosis) :

(१) **बाल्यकाल का क्षय** (Primary Complex)

(२) **वयस्कों का क्षय** (Adult type)।

१. **बाल्यकाल का क्षय** (Primary Complex)—साधारणतया जीवाणु स्वांस द्वारा फेफड़ों में पहुँच जाते हैं व मुख द्वारा आँत में प्रवेश कर जाते हैं व वहाँ पर स्थिर हो जाते हैं व बढ़ते हैं व उस स्थान के लिम्फ ग्लेन्डस (lymph glands) में सूजन आ जाती है, बाल्यकाल का क्षय (Primary Complex) कहलाता है।

बाल्यकाल क्षय के लक्षण (Primary Complex) :

(१) ज्वर—साधारणतया ज्वर हल्का-हल्का आता है व शाम के समय आता है। कभी-कभी रोज भी ज्वर आता है।

(२) बच्चा खेलने में रुचि नहीं लेता है हमेशा सुस्त रहता है।

(३) भूख की कमी अनुभव करता है व खाने में रुचि नहीं लेता है।

(४) बच्चा दुर्बल हो जाता है।

(५) बार-बार खाँसी के आक्रमण होते हैं।

अगर उपरोक्त लक्षण दिखाई दें तो :

(१) छाती का एक्स-रे (X-ray) करवाइये।

(२) ट्यूबरकुलिन टेस्ट (Tuberculin test) (मान्टू टेस्ट) करवाइये।

इलाज :

(१) स्ट्रेप्टोमाइसिन (Streptomycin) के $\frac{1}{2}$ ग्राम के इन्जेक्शन ३० दिन तक देना चाहिए।

(२) आयसोनेक्स (Isonex) की गोली ५ ग्राम प्रति किलोग्राम शरीर के वजन के अनुसार दीजिये।

२. **वयस्कों का क्षय** (Adult type)—साधारणतया यह रोग सबसे पहले फेफड़ों में होता है। जीवाणु स्वांस द्वारा फेफड़े में पहुँच जाते हैं व रोग पैदा कर देते हैं।

लक्षण—(१) खाँसी, (२) बुखार, (३) खंकार में खून आना, (४) सीने में दर्द होना, (५) सुस्ती आना, (६) वजन कम होना।

खाँसी—शुरू-शुरू में बहुत कम होती है। शनैः-शनैः बढ़ती जाती है। खाँसी के साथ खंकार भी आती है। अगर खाँसी १५ दिनों से अधिक की हो तो सभी जाँच करवाकर इलाज करवाना चाहिए।

बुखार—इस रोग में ज्वर हल्का-हल्का आता है जो शाम को अक्सर बढ़ जाता है। कभी-कभी तेज ज्वर आता है।

खंकार के साथ खून आना—खंकार के साथ खून आता है। एक बार भी खून आवे तो जाँच करवा के इलाज करवाना चाहिए।

सीने में दर्द—सीने में दर्द पसलियों मे पानी भरने के कारण होता है।

सुस्ती आना—रोगी कमजोर हो जाता है अतः उसे सुस्ती आती है व उसका किसी काम में मन नहीं लगता है।

वजन कम होना—रोगी को खाना अच्छा नहीं लगता अतः धीरे-धीरे रोगी का वजन कम हो जाता है।

निदान (Diagnosis) :

अगर उपरोक्त लक्षण हों तो रोग का पता निम्न जाँचों द्वारा लगाया जाता है :

(१) **खंकार की जाँच**, (२) **एक्स-रे** (X-ray)।

(३) **ट्यूबरकुलीन टेस्ट** (Tuberculin test)।

खंकार की जाँच—रात भर का खंकार साफ शीशी में इकट्ठा करना चाहिए व सुबह झिल नेलसन स्टेन (Jeil Nelson Stain) से जाँच कर देखी जा सकती है।

एक्सरे (X-ray)—छाती का बाल्यकाल क्षय (Primary Complex) में लिम्फ ग्लेन्ड (Lymph gland) सूजी हुई दिखाई देती है।

वयस्कों की क्षय (Adult type) में केवेटी (cavity) या फेफड़ों में भरा पानी देखा जा सकता है।

ट्यूबरकुलिन टेस्ट (Tuberculin test)—इसके द्वारा पता लगाया जाता है कि क्षय के जीवाणु मनुष्य के शरीर में मौजूद हैं या नहीं। बी. सी. जी. का टीका लगने के बाद भी यह टेस्ट पाजिटिव (Positive) आती है।

इलाज (Treatment) :

(१) १ ग्राम स्ट्रेप्टोमाइसिन (Streptomycin) का इन्जेक्शन प्रतिदिन दीजिए।

(२) आयसोनेक्स (Isonex) की ३०० मि. ग्रा. की १ गोली रोज दीजिये।

(३) थायोसिटाझोन (Thayocitazone) की १५० मि. ग्रा. की १ गोली रोज दीजिए।

(४) पास (P.A.S.) के दाने १५ ग्राम देना चाहिए।

स्ट्रेप्टोमाइसिन (Streptomycin) के इन्जेक्शन जब तक रोगी के थूक में जीवाणु आते रहते हैं देते हैं व साथ ही आयसोनेक्स (Isonex) व थायोसिटाझोन (Thiocetazone) भी देते हैं। जब थूक से जीवाणु आना बन्द हो जाये तो आयसोनेक्स (Isonex), थायोसिटाझोन (Thiocetazone) १८ से २४ माह तक देना चाहिए। मरीज को प्रोटीन ज्यादा दीजिये। विटामिन की गोलियाँ दीजिये या इन्जेक्शन लगाइये।

स्वास्थ्य शिक्षा :

स्वास्थ्य शिक्षा रोगी को व परिवार वालों को देना चाहिए।

(१) खाँसते वक्त रोगी को रूमाल रखना चाहिए।

(२) रोगी के खंकार को एक डिब्बे में इकट्ठा करना चाहिए व गड्ढा खोदकर निवासस्थान से दूर गाड़ना चाहिए या पानी में डालकर आधा घण्टे उबालना चाहिए व बिस्तर धूप में डालना चाहिए।

(३) परिवार के सभी सदस्यों को जाँच करवानी चाहिए।

(४) बी. सी. जी. के टीके लगवाना चाहिए।

★

२५. कुकर खाँसी
(WHOOPING COUGH)

यह एक संक्रामक रोग है जिसे कुत्ता खाँसी भी कहा जाता है। साधारणतया यह ५ वर्ष से छोटी उम्र के बच्चों में पाई जाती है। यह लड़कों की अपेक्षा लड़कियों में अधिक पाई जाती है। इसमें खाँसी के बार-बार आक्रमण होते हैं जिसमें हूप सरीखी निकलती है।

प्रतिनिधि—बारडेटेला परट्यूसिस (Bardetella Pertusis) नामक जीवाणु होता है।

उद्भवनकाल—७-१४ दिन।

लक्षण :

रोगी को सर्दी व खाँसी होती है। शरीर का तापमान बढ़ जाता है। खाँसी के साथ खंकार नहीं आता है। यह स्थिति एक सप्ताह तक रहती है। इसके बाद खाँसी बढ़ जाती है। बार-बार खाँसी के आक्रमण होते हैं, दिन के बजाये रात्रि में अधिक होते हैं। खाँसी के आखीर में एक हूप सी होती है। उल्टी होती है। मुँह पर निलाशपन आ जाता है। कभी-कभी उल्टियाँ भी होती हैं। यह स्थिति दो से तीन सप्ताह तक रहती है व कभी-कभी इससे भी अधिक रहती है।

हूप—स्वांस लेने से आवाज आती है।

जटिलता (Complication) :

श्वसन संस्थान—ओटाइटिस मीडिया (Otitis media), लेरिन्जाइटिस (Laryngitis), ब्रोंकिएक्टेसिस (Bronchiactasis), निमोनिया।

पाचन संस्थान : स्टोमेटाइटिस (Stomatitis)—मुँह में छाले उल्टियाँ (Vomating)।

नाड़ी संस्थान—झटके (Convulsion), आधे शरीर का लकवा (Hemiplegia), बोली बन्द होना (Aphasia)।

हृदय—हृदय का दाहिना वेन्ट्रिकल बड़ा हो सकता है।

गुर्दे—एक्यूट नेफ्राइटिस (Acute nephritis)

खाँसी से शरीर की सभी माँसपेशियों पर दबाव पड़ता है अतः हर्निया (Hernia) की बीमारी हो सकती है या रेक्टम बाहर आ सकता है।

इलाज :

(१) रोगी को सबसे अलग एक कमरे में रखना चाहिए।

(२) भोजन थोड़ा-थोड़ा बार-बार देना चाहिए।

(३) रोगी को आराम पहुँचे अतः नींद लाने वाली गोली जैसे–गारडिनाल या क्लोरल हाइड्रेड या लारजेक्टिल की देना चाहिए।

(४) **एण्टिस्पास्मोडिक**—बेलाडोना का टिंचर २.५ M. दिन में तीन बार देना चाहिए।

(५) **एन्टिबायोटिक**—यह रोग जीवाणुओं के द्वारा होता है। एन्टिबायोटिक जैसे क्लोरमफेनिकाल या इरिथ्रोमाइसीन के २५० मि. ग्रा. के कैप्सूल चार बार देना चाहिए।

(६) अगर श्वांस चलता हो तो आक्सीजन देना चाहिए।

फैलना :

यह रोग खाँसने, बोलने इत्यादि से फैलता है। खाँसने से कीटाणु हवा में फैल जाते हैं व स्वांस द्वारा दूसरे मनुष्य के शरीर में प्रवेश करते हैं व रोग फैलाते हैं।

रोकथाम :

(१) बीमार को अलग कमरे में रखना चाहिए।

(२) दूसरे बच्चों को रोगी से मिलने नहीं देना चाहिए।

(३) रोगी के थूक इत्यादि का निसंक्रमण करना चाहिए।

(४) डी. पी. टी. का टीका लगवाना चाहिए।

★

२६. डिप्थेरिया

(DIPHTHERIA)

यह एक भयानक संक्रामक रोग है। साधारणतया यह रोग २ वर्ष से ५ वर्ष की अवस्था में पाया जाता है। यह रोग महामारी के रूप में फैलता है। रोग फैलाने में रोगी व्यक्ति सहायक होता है। यह रोग मनुष्य के द्वारा मनुष्य को लगता है। इस रोग में रोगी को श्वाँस लेने में कठिनाई होती है। इसलिए इसे गला घोटू भी कहते हैं। यह ज्यादातर गले व नाक में होता है।

प्रतिनिधि—कार्निबेक्टिरियम डिप्थेरी नामक कीटाणु होता है।

उद्भवनकाल—१ से ६ दिन।

डिप्थेरिया ३ प्रकार का होता है :

(१) **फोसिल डिप्थेरिया** (Faucial diphtheria)—टांसिल के ऊपर सफेद झिल्ली आ जाती है।

(२) **लेरिन्जियल डिप्थेरिया** (Laryngeal diphtheria)—जब लेरिंक्स पर झिल्ली आ जाती है।

(३) **नेजल डिप्थेरिया** (Nasal diphtheria)—जब नाक की झिल्ली पर सफेद झिल्ली आ जाती है।

(१) **फोसिल डिप्थेरिया** (Faucial diphtheria) :

साधारणतया डिप्थेरिया के जीवाणु टांसिल पर आक्रमण करते हैं व टांसिल के ऊपर एक सफेद रंग की झिल्ली जमी दिखाई देती है। यह झिल्ली टांसिल के चारों ओर बढ़ती जाती है व मोटी होती जाती है।

लक्षण : (१) यह रोग अकस्मात् होता है। (२) थूक ज्यादा आता है। (३) झिल्ली पहले बारीक रहती है व शनैः-शनैः मोटी अपारदर्शी होती जाती है। (४) झिल्ली टांसिल से चिपकी रहती है अगर इसे निकाला जाता है तो खून आ जाता है। (५) शरीर का तापमान १०१° F. से १०३° F. तक हो जाता है। (६) कभी-कभी श्वाँस में बदबू आती है। (७) कभी-कभी मुँह से व नाक से खून भी आता है। (८) रोगी की मृत्यु हृदय के काम बन्द करने (Heart failure) के कारण या निमोनिया के कारण होती है।

(२) **लेरिन्जियल डिप्थेरिया** (Laryngeal diphtheria) :

लक्षण : (१) आवाज भारी व फटी हुई हो जाती है। (२) खाँसी आती है। (३) श्वाँस लेते समय आवाज होती है। (४) श्वाँस लेने में तकलीफ होती है। (५) नीलापन (cynosis) आ जाता है। (६) मृत्यु दम घुटने (Suffocation) से या हृदय के कार्य बन्द करने (Heart failure) के कारण होती हैं।

(३) **नेजल डिप्थेरिया** (Nasal diphtheria) :

लक्षण—(१) नाक में से पहले चिकना-चिकना तरल पदार्थ बहता है। फिर खून मिला हुआ तरल पदार्थ बहता है फिर गाढ़ा मवाद मिला हुआ तरल पदार्थ बहता है जिसमें बदबू भी आती है। यह नाक के एक तरफ से भी बह सकता है। (२) नाक के अन्दर सफेद रंग की झिल्ली दिखाई देती है। (३) यह रोग वल्वा (valva), व योनी (vagina) जबान इत्यादि पर भी हो सकता है।

जटिलता (Complication) :

रक्तसंचार प्रणाली—पहले सप्ताह के बाद व दूसरे सप्ताह की शुरूआत में में उल्टियां होती हैं व त्वचा ठण्डी हो जाती है। नाड़ी तेज चलने लगती है व रक्त चाप कम हो जाता है व बाद में हृदय बड़ा हो जाता है, श्वाँस चलने लगती है, शरीर

में नीलापन आ जाता है व हृदय कार्य करना बन्द (Heart failure) कर देता है व रोगी की मृत्यु हो जाती है।

नाड़ी संस्थान—तीसरे सप्ताह में गले के अन्दर की माँसपेशियों में लकवा हो जाता है अतः मरीज कुछ भी जैसे पानी इत्यादि लेता है तो नाक से बाहर आ जाता है (२) ३ से ५ सप्ताहों में आँखों की माँसपेशियों में लकवा हो जाता है अतः रोगी बराबर देख नहीं पाता व भेंगा (Squint) हो जाता है व आँखों की पलकें गिर जाती हैं। (३) ५ से ६ सप्ताह में चेहरे की माँसपेशियाँ लकवे से ग्रसित हो जाती हैं व गले की व पीठ की माँसपेशियाँ भी लकवे से ग्रसित हो जाती हैं अतः रोगी का सिर पीछे की ओर हो जाता है व वह बैठ नहीं पाता है। सात से नवें सप्ताह में लकवा पूरे शरीर में हो जाता है।

श्वसन संस्थान—निमोनिया।

गुर्दे—(१) पेशाब में एल्बुमिन (Albumin) आता है, (२) नेफ्राइटिस (Nephritis)।

इलाज :

जन स्वास्थ्य रक्षक द्वारा—जब भी उपरोक्त लक्षणों वाला मरीज हो जन-स्वास्थ्य रक्षक को मरीज को सीधे जिला चिकित्सालय में ले जाने की सलाह देना चाहिए। क्योंकि साधारणतया एण्टि डिप्थेरिक सिरम प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र पर नहीं होता है व प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र पर आकर खबर देना चाहिए।

जिला चिकित्सालय में इलाज—जिला चिकित्सालय में डाक्टर साहब मरीज का परीक्षण करेंगे व गले एवं नाक में से स्वाब (Swab) लेकर सूक्ष्मदर्शी से जाँच करेंगे व सम्भवतया निम्न इलाज करेंगे :

(१) मरीज को २ सप्ताह तक पूर्ण आराम करना चाहिए। (२) भोजन तरल रूप में लेना चाहिए जैसे दूध, फलों को रस इत्यादि। (३) नस के द्वारा ग्लूकोज (IV glucose) देना चाहिए। (४) दर्द के लिए ए. पी. सी. की गोली देना चाहिए। (५) नमक मिले गुनगुने पानी से कुल्ले करना चाहिए। (५) एन्टिबायटिक्स पेनिसिलिन का इन्जेक्शन हर ६, ६ घण्टे से देना चाहिए या इरिथ्रोमाइसिन (Erythromysin) की गोलियाँ देनी चाहिए।

एण्डी डिप्थेरिक सिरम (Anti diphtheric Serum)

(१) इसका एक ही इन्जेक्शन लगाया जाता है (२) बच्चे को व पुरुष को एक सरीखी मात्रा की आवश्यकता होती है। (३) इसे लगाने के पहले रिएक्शन न हो जाये अतः रिएक्शन के लिए जाँच करना चाहिए।

फिर निम्न मात्रा में यह इन्जैक्शन लगाया जाता है।

(१) नाक व गले में अगर हो (Nasopharyngeal) तो ६०,००० यूनिट (Unit)।

(२) टांसिल (Tonsil)।

जब एक ही टांसिल पर असर हो—२०,००० यूनिट (Unit)

जब दोनों टांसिल पर असर हो—४०,००० यूनिट (Unit)

जब गले में असर हो तो—६०,००० यूनिट (Unit)

जब लेरिंक्स (Larynx) में असर हो—४०,००० यूनिट (Unit)

जब लेरिंक्स व गले नाक (Laryngeal nasopharynx) में असर हो तो ८०,००० यूनिट (Unit) दिया जाता है।

अगर २४ घण्टे में आराम न हो तो १०,००० से २०,००० यूनिट ए. डी. एस. (A. D. S.) प्रतिदिन देना चाहिए जब तक की सफेद झिल्ली गायब न हो जावे।

बीमारी फैलने का तरीका :

(१) यह रोग खाँसने, बोलने इत्यादि से फैलता है। खाँसने से कीटाणु हवा में आ जाते हैं व स्वस्थ व्यक्ति के शरीर में स्वाँस के द्वारा पहुँच जाते हैं।

(२) बीमार व्यक्ति के उपयोग में लाई गयी वस्तुओं के द्वारा। जब व्यक्ति खाँसता है तो कीटाणु हवा में जाते हैं व बीमार व्यक्ति के कपड़े बर्तन इत्यादि पर या भोजन पर बैठ जाते हैं वही भोजन या बर्तन जब स्वस्थ पुरुष उपयोग में लाता है तो कीटाणु उसके शरीर में पहुँच जाते हैं।

बचाव :

(१) बीमार को सबसे अलग रखना चाहिए। (२) बीमार की उपयोग की हुई वस्तुओं का निसंक्रमण करना चाहिए। (३) डी. पी. टी. का टीका लगवाना चाहिए।

★

२७. बोदरी माता

(MEASELS)

यह एक संक्रामक रोग है। साधारणतया यह रोग बच्चों में पाया जाता है। यह रोग स्वेला (Virus) विषाणु के कारण होता है। इसमें शरीर पर लाल-लाल दाने निकलते हैं।

उद्भवन काल—१० से १४ दिन।

लक्षण—इसके लक्षण दो चरण (Stages) में पाये जाते हैं :

१. दाने निकलने के पूर्व की स्थिति (Prodromal stage)।

२. दाने की स्थिति (Stage of eruption)।

१. दाने निकलने के पूर्व की स्थिति (Prodromal Stage) :

१. यह स्थिति ४ से ५ दिन तक रहती है।

२. शरीर का तापमान १०२° F. तक हो जाता है।

कोप्लिक स्पाट (Koplic spot)—दूसरे दिन नीले सफेद रंग के छोटे-छोटे दाने नीचे वाले मोलर दाँत के सामने दिखाई देते हैं इन्हें कोप्लिक स्पाट कहते हैं। ये दाने शरीर पर दाने आने के बाद खत्म हो जाते हैं।

कभी-कभी बच्चे को दस्त लग जाते हैं।

२. **दाने की स्थिति** (Stage of eruption) :

१. ५वें दिन लाल रंग के छोटे-छोटे दाने कान के पीछे और गाल के पिछले हिस्से में दिखाई देते हैं। कुछ घण्टों में ये दाने पूरे शरीर में दिखाई देने लगते हैं। २. खाँसी व ज्वर बढ़ जाता है। ३. मुँह पर सूजन आ जाती है। ४. मरीज को प्रकाश अच्छा नहीं लगता है। ५. २४ से ४८ घण्टे में दाने खतम होना चालू हो जाते हैं। ६. दाने जिस प्रकार उठते हैं उसी प्रकार खतम होते हैं।

जटिलता (Complication) :

श्वसन संस्थान—लेरिंक्स (Laryngitis) में सूजन।

निमोनिया, श्वसन नली (Tracheitis) में सूजन।

पाचन संस्थान—मुँह में छाले (Stomatitis), गेस्ट्रो एन्ट्राइटीस।

नाड़ी संस्थान—एनकेफेलाइटिस (Encephatlitis)।

आँख—आँखें आना, आँख में छाला (Cornealulcer)।

इलाज :

१. मरीज को पूर्ण आराम करना चाहिए।

२. तरल पदार्थ अधिक लेना चाहिए।

३. आँखों को बोरिक एसिड व गुनगुने पानी से धोना चाहिए।

४. ए. पी. सी. की गोली दर्द के लिए देना चाहिए।

५. **एण्टिबायोटिक**—टेट्रासाइक्लिन के केप्सूल दिन में चार बार देना चाहिए।

फैलना :

१. रोग के कीटाणु रोगी के स्वांस द्वारा या खाँसने पर हवा में आते हैं अतः मरीज के सम्पर्क में आने से रोग हो सकता है।

२. मरीज के उपयोग में लाई गयीं वस्तुओं का उपयोग करने पर रोग हो सकता है।

बचाव :

१. मरीज को हवादार कमरे में रखना चाहिए।

२. मरीज से किसी को भी मिलने नहीं देना चाहिए।

३. मरीज के उपयोग में लाई गई वस्तुओं का निसंक्रमण करना चाहिए।

★

२८. छोटी माता
(CHICKEN POX)

यह एक संक्रामक रोग है जो वेरिसिला विषाणु (Virus) के द्वारा होता है। से अचपड़ा भी कहते हैं। यह रोग सभी उम्र के व्यक्तियों को हो सकता है परन्तु ह रोग बच्चों में अधिक पाया जाता है।

उदभवन काल—१४ से २१ दिन।

लक्षण—१. दाने निकलने के पूर्व की स्थिति (Prodomata)।
२. दाने की स्थिति (Stage of eruption)।

१. दाने निकलने के पूर्व की स्थिति (Prodomata) :

लक्षण—(१) सिर दर्द होता है, (२) गले में दर्द होता है, (३) ज्वर आ जाता है, (४) यह स्थिति २४ घन्टे तक रहती है।

२. दाने की स्थिति (Stage of eruption) :

(१) सर्वप्रथम दाने मुँह के अन्दर व गले के अन्दर निकलते हैं। फिर दाने क्रमश: पीठ, छाती, पेट, मुँह व आखिर में पैरों पर दिखाई देते हैं।

(२) दाने पहले छोटे-छोटे व कुछ ही घण्टों में कुछ बड़े व गुलाबी रंग के हो जाते हैं व कुछ समय बाद इनमें मवाद भर जाता है। २४ घण्टे बाद ये पासच्यूल (Pastule) में बदल जाते हैं। इनमें २ से ५ रोज में खरुट आ जाता है।

(३) इस रोग में दाने छाती, पेट, पीठ पर ज्यादा आते हैं।

(४) कभी-कभी रोगी को खुजली चलती है।

(५) दानों में सभी स्थिति एक साथ देखी जा सकती है।

जटिलता (Complication) :

निमोनिया, एनकेफेलाइटिस (Encephalitis)।

आधा चेहरे का लकवा (Facial palsy)।

इलाज :

(१) अगर खुजली हो तो केलामिन लोशन लगाना चाहिए।

(२) एविल (Avil) की गोली देनी चाहिए।

(३) **एण्टीबायोटिक्स**—अगर सेकेन्डरी इनफेक्शन हो तो देना चाहिए।

२६. चेचक

(SMALL POX)

यह एक भयानक संक्रामक रोग है। इसे बड़ी माता भी कहते हैं। यह रोग सभी आयु के व्यक्तियों को हो सकता है परन्तु ज्यादातर ५ वर्ष से छोटे बच्चों में पाया जाता है।

प्रतिनिधि—वेरुओला वायरस (विषाणु) यह बहुत ही छोटा होता है व खुर्दबीन से दिखाई नहीं देता है।

उद्भवन काल—७ से १७ दिन।

लक्षण :

१. शरीर का तापमान १०२° F. से १०५° F. तक बढ़ जाता है।
२. उल्टियाँ आती हैं व शरीर में दर्द रहता है। यह स्थिति ३ दिन तक रहती है। २-४ दिन बाद दाने निकल आते हैं व बुखार कम हो जाता है।
३. दाने क्रमशः चेहरे पर, सिर पर, कलाई पर, हाथों में, गरदन, पीठ पर, छाती में, हाथ व पैरों में आते हैं।
४. दानों का रंग गुलाबी होता है जो बढ़ते हैं व पेप्यूल (Papule) की स्टेज में आ जाते हैं। छठे दिन पेप्यूल (Papule) से वेसिकल (Vesicle) हो जाते हैं व इनमें से मवाद निकलने लगता है। ९वें दिन पासच्यूल (Pastule) की स्टेज आ जाती है व ११वें से १२वें दिन इन पर पपड़ी (Crust) बन जाती है। यह पपड़ी (Crust) करीब एक सप्ताह तक रहती है और फिर गिर जाती है।

दाने की स्टेजेस :

मेक्यूल (Macule)—३रे दिन
पेप्यूल (Papule)—४थे दिन
वेसिकल (Vesicle)—६ठे दिन
पासच्यूल (Pastule)—९वें दिन
पपड़ी (Scab)—१४वें दिन।

चेचक व छोटी माता में अन्तर :

चेचक	छोटी माता
१. दाने निकलने से दो, तीन रोज पहले से बुखार आता है।	१. दाने निकलने के एक दिन पूर्व साधारण ज्वर आता है।
२. सिर दर्द, पीठ दर्द व उल्टियाँ होती हैं।	२. इसमें दर्द कम होता है।

३. इसमें दाने पहले मुँह पर, फिर क्रमशः गरदन पर, कलाई पर, हाथों में व पैरों में दिखाई देते हैं।	३. इसमें दाने पहले छाती में दिखाई देते हैं।
४. दानों का क्रम एक सरीखा होता है।	४. दानों का क्रम एक सरीखा नहीं होता है। सभी स्टेजेस दिखाई देती हैं।
५. ये दाने शरीर पर स्थाई चिन्ह छोड़ जाते हैं।	५. इन दानों से त्वचा को कोई हानि नहीं होती है।
६. इसमें मृत्यु होने की सम्भावना है।	६. इसमें मृत्यु होने की कोई सम्भावना नहीं है।

इलाज :

१. पोटेशियम परमेंगनेट के घोल (१ : ५०००) से कुल्ले करके मुँह को साफ रखना चाहिए।
२. आँखें बोरिक एसिड व पानी से साफ करना चाहिए।
३. **एण्टिबायोटिक**—टेट्रासाइक्लिन या इरिथ्रोमाइसिन के २५० मि. ग्रा. के ४ केप्सूल देना चाहिए।

फैलना :

यह रोग वायु द्वारा फैलता है। इसके जीवाणु थूक, लार इत्यादि में रहते हैं। व रोगी के कपड़े, बिस्तर इत्यादि सभी वस्तुओं में रहते हैं। यदि स्वस्थ बच्चा इनके सम्पर्क में आता है तो उसे भी यह रोग हो जाता है।

चेचक से बचाव :

यह एक छूत की बीमारी है अतः

(१) इसके रोगी को अलग रखना चाहिए।
(२) रोगी से किसी को मिलने नहीं देना चाहिए खासकर बच्चों को रोगी से दूर रखना चाहिए।
(३) रोगी के बर्तन इत्यादि अलग रखना चाहिए व उन्हें अच्छी तरह उबाल लेना चाहिए।
(४) रोगी के कपड़े, चादर आदि भी पानी में उबाल लेना चाहिए।
(५) रोगी के कमरे को साबुन व पानी से धोना चाहिए व फिर १०% फारमेलिन घोल से निसंक्रमण करना चाहिए।
(६) चेचक का टीका लगवाना चाहिए।

★

३०. मम्पस
(MUMPS)

यह एक संक्रामक रोग है जो विषाणु (Virus) के कारण होता है। यह सभी उम्र के व्यक्तियों को हो सकता है परन्तु अधिकतर १५ साल से छोटे बच्चों को पाया जाता है। इसमें थूक पैदा करने वाली ग्रन्थि (Salivary gland) में सूजन आ जाती है।

प्रतिनिधि—मिक्सोवाइरस पेरोटीडीस

उद्भवन काल—१७ से १८ दिन

लक्षण :

१. शरीर का तापमान १०३° F. से १०४° F. तक बढ़ जाता है। २. गले में खराश होती है। ३ जबड़े के कोनों में खिचाव आता है। ४. कान के नीचे गले में सूजन आ जाती है व दर्द होता है। ५. सूजन तीन दिनों तक बढ़ती है व २ दिन तक रहती है व ५ दिन पश्चात कम होने लगती है। ६. गले के नीचे की ग्रन्थि बढ़ जाती है। ७. थूक आना कम हो जाता है। ८. स्वाँस में बदबू आती है। ९ मरीज करीब १० से १५ दिन में अच्छा हो जाता है।

जटिलता (Complication) :

१. **आरकाइटिस और इपिडिडाइमाइटिस** (Orchitis and epididymitis)–इसमें अंडकोष में सूजन आ जाती है और दर्द होता है।

२. **मेस्टाइटिस** (Mastitis)—स्तन में सूजन आ जाती है।

३. **उफ्राइटिस** (Oophritis)—अंडाशय (Ovary) में सूजन आती है।

४. **एक्यूट पेनक्रियेटाइटिस** (Acute Pancreati tis)—इसमें पेट में दर्द होता है, उल्टियाँ आती हैं, ज्वर होता है व शक्कर की बीमारी होने की सम्भावना रहती है।

इलाज :

१. मरीज को १० दिन तक पूर्ण आराम करना चाहिए।

२. खाना तरल रूप में लेना चाहिए।

३. दर्द के लिए ए. पी. सी. या नोवेलजिन या एनालजिन या क्रोसिन की गोली दिन में तीन बार देना चाहिए।

अगर टेस्टिज में सूजन आ जाये तो—(१) पोते पर बरफ से सेक करना चाहिए।

(२) २० मि० ग्रा० की डाइ इथाइलस्टिलबोस्टेराल की गोली दिन में ३ बार देना चाहिए।

(३) **एण्टिबायोटिक या सल्फा**—सल्फाडाइजिन या टेट्रासाइक्लिन सेकेन्डरी संक्रमण रोकने के लिए दिये जा सकते हैं।

फैलना :

रोग के कीटाणु मनुष्य के थूक में रहते हैं अतः यह बीमारी खाँसी आने से, बात करने से फैलती है।

बीमारी से रोकथाम :

१. बीमार व्यक्ति को अलग कमरे में रखना चाहिए।

२. बीमार व्यक्ति से किसी को मिलने नहीं देना चाहिए।

३. बीमार व्यक्ति की उपयोग की हुई वस्तुओं का निसंक्रमण करना चाहिए।

★

३१. मलेरिया
(MALERIA)

यह एक संक्रामक रोग है जो किटाणु के कारण होता है। रोग के कीटाणु मनुष्य में रक्त के लाल कणों पर आक्रमण करते हैं अतः व्यक्ति कमजोर हो जाता है। इसमें ठण्ड व कंपकपी लगकर ज्वर आता है।

प्रतिनिधि—बीमारी का प्रतिनिधि प्लाजमोडियम है जो चार प्रकार का होता है :

१. प्लाजमोडियम वाइवेक्स (Plasmodium Vivex)।

२. प्लाजमोडियम फेल्सीफेरम (Plasmodium Falcifarum)।

३. प्लाजमोडियम ओवेल (Plasmodium Ovale)।

४. प्लाजमोडियम मलेरिया (Plasmodium Maleria)।

७०% बीमारी वाइवेक्स के द्वारा व ३०% फेल्सीफेरम के द्वारा होती है।

मलेरिया पेरासाइट :

मलेरिया पेरासाइट २ प्रकार के जीवन चक्र से गुजरता है :

१. मनुष्य के अन्दर जीवन चक्र। २. मच्छर के अन्दर जीवन चक्र।

मनुष्य मलेरिया पेरासाइट का बीच का मेजमान (Host) है व मच्छर मुख्य मेजमान (Host) है।

मनुष्य में जीवन चक्र :

इसमें पेरासाइड बढ़ता है व नर व मादा गेमिट का मिलाप नहीं होता है। इसे एसेक्सुअल (Asexual) जीवन चक्र कहते हैं।

एसेक्सुअल जीवन चक्र (Asexual cycle) **:**

जब संक्रमित मादा एनाफिलिज मच्छर किसी स्वस्थ व्यक्ति को काटती है तो वह उस व्यक्ति का रक्त पीती है व अपना थूक (Saliva) छोड़ती जाती है। थूक में मलेरिया के कीटाणु होते हैं जिन्हें स्पोरोजोइड (Sporozoid) कहते हैं। ये आधे

घण्टे में रक्त से यकृत (Liver) में चले जाते हैं। यकृत (Liver) में ये ६ से ८ दिन तक रहते हैं व अपनी संख्या बढ़ाते हैं व स्पोरोजोइड से क्रिप्टोजोइड (Cryptozoid) में परिवर्तित हो जाते हैं व यकृत से वापस खून में चले जाते हैं व रक्त के लाल कणों पर आक्रमण करते हैं। रक्त के लाल कणों में पेरासाइट अंगूठी की स्टेज (Ring Stage) ट्रोफोजोइड (Trophozoid) व सायजोन्ट (Scizont) स्टेज से गुजरते हैं। सायजोन्ट (Scizont) से बहुत से मिरोजाइट (Merozoit) निकलते हैं व फिर लाल रक्त कणों पर आक्रमण करते हैं। कुछ मिरोजोइट नर व मादा गेमिट बन जाते हैं व जब मच्छर किसी संक्रमित व्यक्ति को काटता है तो खून के साथ के गेमिट मच्छर के पेट में पहुँच जाते हैं।

मच्छर के अन्दर का जीवन चक :

नर और मादा गेमिट मच्छर के आमाशय में पहुँच जाते हैं। नर गेमिट को मेक्रोगेमिट (Macrogemete) व मादा गेमिट को माइक्रोगेमिट (Microgemete) कहते हैं। ये दोनों मिल जाते हैं व झाइगोट (Zygote) बनाते, हैं इसे उकाइनेटिक (Ookinetic) भी कहते हैं। यह आमाशय की दीवाल में घुस जाता है व दीवाल की दो परतों के बीच रहता है व बढ़ता है और उसिस्ट (Oocyst) बन जाता है। उसिस्ट के अन्दर साइटोप्लाजम का सेगमेन्टेशन होता है व उसिस्ट (Oocyst) फट जाता है और सैंकड़ों स्पोरोझोइड (Sporozoits) निकल आते हैं व मच्छर की थूक ग्रन्थि (Salivary gland) में चले जाते हैं और जब यह मच्छर किसी स्वस्थ व्यक्ति को काटता है तो थूक के साथ ये स्पोरोझाइट (Sporozoits) मनुष्य के शरीर में प्रवेश कर जाते हैं।

मच्छर को सेक्सुअल साइकल (Sexual cycle) के पूरा होने में १० से २० दिन का समय लगता है और एक बार संक्रमित होने के बाद मच्छर करीब ४ माह तक जिन्दा रहता है।

एनाफिलिज व क्यूलेक्स में अन्तर :

एनाफिलिज	क्यूलेक्स
१. इसके शरीर व पंखों पर धब्बे होते हैं।	१. इसके पंखों पर कोई धब्बे नहीं होते हैं।
२. जब यह बैठते हैं तो ४५° के कोण से बैठते हैं।	२. जब यह बैठते हैं तो सतह के समानान्तर बैठते हैं।
अण्डा :	
१. अण्डा नोकाकार होता है।	१. अण्डा सिगार के आकार का होता है।

२. अण्डे अलग-अलग रहते हैं व पानी की सतह पर तैरते हैं।	२. अण्डें समूह में रहते हैं व पानी की सतह पर तैरते हैं।
३. अण्डें साफ जल में रहते हैं।	३. अण्डे गन्दे पानी में रहते हैं।
लार्वा :	
१. लार्वा पानी की सतह पर तैरता रहता है।	१. इसका शरीर पानी की सतह से कोण बनाता हुआ लटका रहता है।
२. स्वाँस नली छोटी होती है।	२. स्वाँस नली लम्बी होती है।

अन्डे—१ से ३ दिन में लार्वा बन जाते हैं।

लार्वा—७ से १० दिन में प्यूपा बन जाता है।

प्यूपा—१ से २ दिन में मच्छर बन जाता है।

मलेरिया के फैलने के कारण :

मलेरिया की बीमारी निम्न तीन कारणों से फैलती है :

१. संक्रमित व्यक्ति, २. मच्छर, ३. वातावरण।

(१) **संक्रमित व्यक्ति**—अगर किसी भी समुदाय में कोई भी व्यक्ति मलेरिया रोग से पीड़ित होगा या नर या मादा गेमिटोसाइट अगर उसके खून में होंगे तो वह व्यक्ति मलेरिया बीमारी फैलाने में सहायक होगा।

(२) **मच्छर**—मच्छर अगर नहीं होंगे तो मलेरिया की बीमारी फैलने का भय नहीं होगा।

वातावरण—मलेरिया का रोग मच्छरों के द्वारा होता है। अतः अगर वातावरण इस प्रकार का होगा जिससे मच्छर ज्यादा होंगे तो मलेरिया का रोग अधिक होगा जैसे अगर बरसात अधिक होगी तो मच्छरों के अण्ड़े व लार्वा, प्यूपा इत्यादि बह जाते हैं परन्तु अगर कम पानी बरसे व गढ्डे इत्यादि पानी से भर जाते हैं तो मच्छरों को अण्डे देने में सुविधा होती है व उनके अण्डे लार्वा व प्यूपा आसानी से बन जाते हैं। अधिक ठण्डे वातावरण में भी मच्छर नहीं रह पाते। इनके लिये २०°C से ३०°C तापमान सहायक होता है।

मलेरिया की रोकथाम :

(१) मच्छरों की पैदा होने की जगहों को नष्ट करना चाहिये। (२) सोते समय मच्छरदानी का उपयोग करना चाहिये। (३) जहाँ कही पानी भरा हो और बहता नहीं हो तो कोई भी तेल पानी की सतह पर डाल देना चाहिये। (४) घर के आसपास सफाई रखें। (५) कूड़ा, करकट व जानवरों का गोबर इत्यादि घर से दूर फैंकना चाहिये। (६) डी. डी. टी. छिड़कना चाहिये।

मलेरिया के लक्षण :

मलेरिया के लक्षण ३ स्टेजेस में होते हैं :

(१) ठण्ड लगना व कंपकपी आना (Cold Stage), (२) गर्मी लगना (Hot Stage), (३) पसीना आना (Sweating Stage)।

उपरोक्त लक्षणों के पहले मरीज को निम्न लक्षण होते हैं :

(१) भूख कम लगती है। (२) हाथ पैरों में दर्द होता है। (३) जी मिचलाता है व चक्कर आते हैं व कभी-कभी उल्टियाँ होती हैं।

(१) **ठण्ड लगना व कंपकवी आना** (Cold Stage)—सबसे पहले रोगी को बहुत जोरों से ठण्ड लगती है व कंपकपी आती है। रोगी ठण्ड के कारण दाँत किटकिटाता है। रोगी अपने पूरे शरीर को कम्बल इत्यादि से ढकने की कोशिश करता है। ठण्ड बुखार के एकाएक तेजी से आने के कारण लगती है। यह स्थिति (Stage) करीब १ घण्टे से २ घण्टे तक रहती है। रोगी का तापमान १०५°F से १०६°F तक बढ़ जाता है।

(२) **गर्मी लगना** (Hot Stage)—यह स्थिति (stage) ठण्ड वाली स्थिति की समाप्ति पर आती है व यह स्थिति करीब ३ से ४ घण्टे तक रहती है। इस स्थिति में रोगी की कंपकपी बन्द हो जाती है व उसे बड़ी जोर की गर्मी लगने लगती है। रोगी अपने कपड़े उतार कर फेंक देता है, सिर दर्द होता है, कभी-कभी उल्टियाँ भी होती है, स्वांस बढ़ जाता है व चमड़ी सूखी हो जाती है व चमड़ी में जलन होती है। शरीर का तापमान १०४°F से १०६°F तक रहता है व कभी-कभी इससे भी ज्यादा हो जाता है।

(३) **पसीना आना** (Sweating Stage)—यह स्थिति करीब २ से ४ घण्टे तक रहती है। इसमें रोगी को बहुत पसीना आता है। उसके कपड़े व बिस्तर पसीने से गीले हो जाते हैं। रोगी का बुखार कम हो जाता है व मरीज को आराम मिलता है। मरीज का बुखार उतर जाता है। मरीज थकान महसूस करता है व यह हालत दूसरे आक्रमण तक रहती है।

तीनों स्थितियों (stages) में करीब ६ से ८ घण्टे लगते हैं।

रोगी को बुखार कभी-कभी रोज कभी एक दिन छोड़कर या कभी-कभी तीसरे दिन आता है। साधारणतया बुखार दोपहर में व अर्ध रात्री में आता है। मरीज की तिल्ली (spleen) बढ़ जाती है।

जाँच—खून की जाँच।

रक्त पटी बनाना—विधि ।

इलाज :

इलाज दो प्रकार का होता है :

(१) **बुखार रोकने के लिए दवाई देना**—प्रिज्यूमटिव ट्रीटमेन्ट।

क्लोरोक्वीन की गोली आयु के अनुसार निम्न प्रकार से देते है :

(१) १ वर्ष से नीचे — आधी गोली, ७५ मि. ग्रा.

(२) १ वर्ष से ४ वर्ष — एक गोली, १५० मि. ग्रा.
(३) ४ वर्ष से ८ वर्ष — दो गोली, ३०० मि. ग्रा.
(४) ८ वर्ष से १४ वर्ष — तीन गोली, ४५० मि. ग्रा.
(५) १४ वर्ष से ऊपर — चार गोली, ६०० मि. ग्रा.

(१) ये गोलियाँ एक ही बार में मरीज को देना चाहिए। (२) गोलियाँ भूखे पेट मरीज को नहीं देनी चाहिए।

इसमें खून की जाँच के बाद यदि रिपोर्ट पाजिटिव है तो यह इलाज दिया जाता है।

प्रायमाक्वीन की गोली ५ दिन तक आयु के अनुसार निम्न प्रकार से देते हैं :

० से १ वर्ष	—	१ गोली क्लोरोक्वीन की प्रायमाक्वीन की आवश्यकता नहीं
१ से ४ वर्ष	—	१ गोली क्लोरोक्वीन पहले दिन १ गोली प्रायमाक्वीन (२·५ मि. ग्रा.) पाँच दिन तक
४ से ८ वर्ष	—	२ गोली क्लोरोक्वीन पहले दिन २ गोली प्रायमाक्वीन ५ मि. ग्रा. ५ दिन तक
८ से १४ वर्ष	—	३ गोली क्लोरोक्वीन पहले दिन ४ गोली प्रायमाक्वीन (१० मि. ग्रा.) ५ रोज तक
१४ वर्ष से ऊपर	—	४ गोली क्लोरोक्वीन पहले दिन ६ गोली प्रायमाक्वीन (१५ मि. ग्रा.) ५ दिन तक

प्रायमाक्वीन की गोली गर्भवती माताओं को नहीं दी जाती।

३२. हैजा
(CHOLERA)

यह एक संक्रामक रोग है जिसमें दस्त व उल्टी होती है।

प्रतिनिधि—कोलेरि विब्रियो (cholerae vibrio)।

उद्भवन काल—५ घण्टे से ६ दिन।

लक्षण :

(१) यह रोग अकस्मात् होता है, (२) रोगी को बार-बार पतले दस्त आते हैं जो शुरू में पीले होते हैं व कुछ समय बाद चावल के माँड के सरीखे दस्त आते हैं, (३) पेट में दर्द नहीं होता है, (४) उल्टियाँ होती हैं, (५) शरीर का तापमान कम हो जाता है, (६) आँखें अन्दर धंस जाती हैं, (७) माँस-पेशियों में खिचाव होता है, (८) चमड़ी खुश्क व ठण्डी हो जाती है, (६) श्वांस की गति बढ़ जाती है, (१०) पेशाब कम आती है, (११) रोगी की मृत्यु हो सकती है।

जाँच—टट्टी की जाँच ।

इलाज—(१) अगर रोगी को उल्टियाँ नहीं हो रही हों तो रिहाइड्रेशन पाउडर पानी में घोलकर बार-बार दें। (२) सल्फागोनोडिन की गोली दें। अगर उल्टियाँ हो रही हों तो पास के अस्पताल में या प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र पर भेजें ।

प्राथमिक स्वा. केन्द्र पर इलाज—(१) मरीज को ग्लूकोज सलाइन नस द्वारा दिया जावेगा, (२) एण्टीबायोटिक्स टेट्रासाइक्लिन १०० मि. ग्रा. के इन्जेक्शन हर ६ घण्टे बाद लगाना चाहिए। क्लोरोस्ट्रेप के २५० मि. ग्रा. के २ केप्सूल ६-६ घण्टे से देना चाहिए ।

रोग का फैलना :

(१) यह रोग मार्च से अक्टूबर तक अधिक होता है ।

(२) **पानी**—प्रायः मेले में या देहातों में रोग का फैलने का मुख्य कारण जलाशयों का दूषित होना है क्योंकि रोगी के कपड़े इत्यादि जलाशयों में धोने पर रोग के कीटाणु जलाशयों को दूषित कर देते हैं ।

(३) **मक्खी**—मक्खी रोगी के मल पर या उल्टी पर बैठती है तो हैजे के कीटाणु मक्खी के पैरों में व पंखों इत्यादि पर चिपक जाते हैं व जब वही मक्खी मनुष्य के भोजन पर बैठती है तो कीटाणु भोजन में रह जाते हैं व भोजन को दूषित कर देते हैं। वही दूषित भोजन जब स्वस्थ व्यक्ति खाता है तो कीटाणु शरीर में भोजन के साथ प्रवेश कर जाते हैं।

बचाव—बचाव दो प्रकार से होता है :

(१) व्यक्तिगत, (२) सार्वजनिक ।

१. **व्यक्तिगत**—(१) हमेशा व्यक्ति को अपना पेट भरा रखना चाहिए क्योंकि अमाशय में अम्ल निकलता है व हैजे के कीटाणु अम्ल में बढ़ने में असमर्थ रहते हैं।

(२) यात्रा के समय ठण्डे पदार्थ जैसे दही की लस्सी, दूध की लस्सी, सोड़ा-लेमन, आइस्क्रीम इत्यादि नहीं लेना चाहिए। बल्कि, चाय, कॉफी, उबला दूध इत्यादि लेना चाहिए। क्योंकि उबलने से रोग के कीटाणु नष्ट हो जाते हैं।

(३) अगर दस्त (Diahhorea) लग जावे तो उसका इलाज जल्दी से जल्दी करवाना चाहिए ।

(४) सड़े हुए फल इत्यादि नहीं खाना चाहिए ।

(५) पीने के पानी को उबालकर पीना चाहिए ।

(६) दूध को उबालकर पीना चाहिए ।

(७) हैजा निरोधक टीके लगवाना चाहिए ।

२. **सार्वजनिक** : (१) **विज्ञप्ति** (Notification)—हैजा शुरू होते ही अधिकारियों को सूचित करना चाहिए। सूचना देहात में चौकीदार के द्वारा या थाने के द्वारा जिला स्वास्थ्य को दी जाती है।

(२) रोगी को अलग रखना चाहिए, किसी को रोगी से मिलने नहीं देना चाहिए व गाँव वालों को बताना चाहिए कि वे वहाँ का पानी उपयोग में न लें जहाँ का पानी रोगी ने उपयोग में लिया है।

(३) रोगी के मल-मूल को अच्छी तरह निसंक्रमण करके दूर गाड़ देना चाहिए।

(४) कुए या जलाशय जिसका पानी पीने के उपयोग में आता हो बर्तन व कपड़े धोने की मनाई होना चाहिए।

(५) कुए में या जलाशय में ब्लीचिंग पावडर या पोटेशियम परमेंगनेट (लाल दवा) डालें।

(६) मक्खियों को मारने के लिए D. D. T. का छिटकाव २०० m.g/sq foot के हिसाब से करवायें।

मेले का विशेष प्रबन्ध :

(१) हैजे के टीके ७ दिन पहले से निशुल्क लगवावें। (२) पानी में ब्लीचिंग पावडर डालें। (३) ठहरने की व खाने की उचित अलग व्यवस्था करें। (४) नहाने का स्थान अलग रखें। (५) पाखाने इन स्थानों से दूर रखे जावें। (६) व्यक्तियों को हैजे के बारे में स्वास्थ्य शिक्षा पोस्टरों, सिनेमा आदि के द्वारा दें।

★

३३. मोतीझरा
(TYPHOID)

यह एक संक्रामक रोग है जो सालमोनेला टायफोजा (Solmonella typhosa) नामक जीवाणु के कारण होता है। इसे एन्टरिक फिवर (Enteric Fever) भी कहते हैं।

उद्‌भवन काल—१० से १५ दिन।

लक्षण—३ स्टेजेस से होते हैं।

१. **इनवेशन स्टेज** (Invasion Stage)—यह स्टेज १ सप्ताह तक रहती है।

(१) सिर के अगले भाग में दर्द होता है। (२) सारे बदन में दर्द होता है। (३) भूख कम लगती है। (४) पेट में हल्का-हल्का दर्द होता है। (५) कब्जियत होती है या दस्त लग जाते हैं। (६) पेट कड़क हो जाता है व फूल जाता है। (७) तापमान (बुखार) बढ़ता है फिर कम हो जाता है फिर बढ़ जाता है कम हो जाता है फिर बढ़ जाता है। शाम के समय तापमान १०४°F तक पहुँच जाता है। (८) बुखार के समय कंपकपी भी आती है। (९) खांसी आती है। (१०) नाक में से खून भी आ सकता है। (११) नाड़ी धीमी चलती है।

२. **एडवान्स स्टेज** (Advance Stags)—यह स्थिति प्रथम सप्ताह के अन्त में शुरू होती है व दूसरे सप्ताह के अन्त तक रहती है।

(१) **पेट**—(१) तिल्ली (Spleen) बढ़ जाती है। (२) पेट में दर्द होता है। (३) नाडी तेज चलने लगती है। (४) दस्त लगते हैं। (५) तापमान बढ़ जाता है। (६) ७वें से १०वें दिन छाती व पेट पर दाने दिखाई देते हैं। दाने गुलाबी रंग के होते हैं व जरा से दबाव देने से गायब हो जाते हैं। दाने २-३ दिन रहते हैं व फिर दिखाई नहीं देते हैं।

३. **डिक्लाइन स्टेज** (Decline Stage)—यह स्थिति तीसरे सप्ताह में पाई जाती है।

माइल्ड केस (Mild Case)—तापमान कम होने लगता है व रोगी ठीक हो जाता है।

सिवियर केस (Severe Case)—(१) रोगी को टट्टी काली आती है। (२) आँखे आधी खुली रहती हैं। (३) रोगी टट्टी-पेशाब बिस्तर में कर देता है। (४) रोगी की मृत्यु हो सकती है।

जटिलता (Complication)—(१) पेट फूल सकता है व खून की टट्टियाँ लग सकती हैं।

(२) मरीज सदमें (Shock) में आ सकता है। इसमें तापमान कम हो जाता है, नाड़ी तेज चलती है। रक्तचाप कम हो जाता है।

(३) **परफोरेशन** (Perforation)—इससे पेट में दर्द होता है व नाड़ी तेज चलने लगती है व दस्त लग जाते हैं व पेट फूल जाता है व पेरिटोनियम में सूजन आ जाती है।

(४) **पित्ताशय में सूजन** (Cholecystitis)—इसमें पेट में ऊपर वाले भाग में बीच में या दाहिनी ओर दर्द होता है, व पेट कड़क हो जाता है।

(५) **पेनक्रियाज में सूजन** (Acute Pancreatitis)—इसमें पेट में ऊपर की ओर जोरों से दर्द होता है जो पीठ में या कन्धे में जाता है। उल्टियाँ होती हैं, पेट कड़क हो जाता है, नीलापन आ जाता है।

(६) अपेन्डिक्स (Appendicitis) में सूजन

(७) तिल्ली फट सकती है।

(८) **स्वसन संस्थान**—निमोनिया, ब्रोकांइटिस, लेरिन्जाइटिस, प्लूरसी इत्यादि।

(९) **प्रजनन एवं मूत्र संस्थान**—१. पेशाब रुक जाता है। २. पेशाब में एलबुमिन आता है। ३. टेस्टिज में सूजन आना।

(१०) **नाड़ी संस्थान** : **कान**—ओटाइटिस मिडिया, बहरापन।

आँख—आँखें आना, भेंगा होना।

जाँच—खून की जाँच विडाल टेस्ट के द्वारा ।

इलाज—इसका विशेष इलाज क्लोरमफेनिकाल के द्वारा होता है। यह ५० मि. ग्राम प्रति किलोग्राम शरीर के वजन के अनुसार दिया जाता है। बड़े आदमी को २–२ केप्सूल हर ६ घण्टे में ४८ घण्टे तक देना चाहिए या जब तक तापमान सामान्य न हो जाये। फिर २५० मि. ग्रा. के १–१ केप्सूल हर ४ घण्टे से ५ दिन तक देना चाहिए।

अगर उल्टियाँ हों या मुँह से केप्सूल देना सम्भव नहीं हो तो क्लोरमफेनिकाल इन्जेक्शन के द्वारा ५०० मि. ग्रा. १२-१२ घण्टे से देना चाहिए।

बच्चों के लिए आजकल सायरप इत्यादि मिल जाते हैं।

बाजार में क्लोरम फेनिकाल निम्न नाम से मिलते हैं, जैसे—क्लोरोमाइसेटिन इत्यादि।

कॉटिसोन—अगर मरीज की हालत ज्यादा खराब हो तो डेक्सामिथोसोन (Dexamethasone) [डेकाड्रान] का इन्जैक्शन नस द्वारा या माँसपेशी में देना चाहिए या प्रिडनीसोलन की गोली देना चाहिए।

एम्पीसिलिन—अगर क्लोरमफेनिकाल से बुखार कम नहीं हो तो एम्पीसिलिन की ५०० मि. ग्राम की गोलियाँ दिन में चार बार देना चाहिए।

जनरल (General) **इलाज** :

१. खाना खाने के बाद मुंह की अच्छी तरह सफाई करनी चाहिए।

२. शरीर में टेलकम पावडर लगाना चाहिए।

३. खाना : **जब ज्वर कम हो**—मरीज को दूध देना चाहिए। दिन भर में करीब १ से १·५ लिटर दूध दे देना चाहिए। साथ ही फलों का रस देना चाहिए।

४. **अगर पेट फूल गया हो**—(a) शक्कर व ग्लूकोज बन्द कर देना चाहिये। (b) दूध की मात्रा कम कर देनी चाहिए। (c) गुदा द्वार से नली, गैस निकालने के लिए डालना चाहिए।

५. **अगर दस्त लग जावें तो**—१. दूध की मात्रा घटाना चाहिए व दूध में पानी की मात्रा बढ़ाना चाहिए। २. फलों का रस देना चाहिए। ३. शकर व ग्लूकोज देना चहिए। ४. बिस्मथ केओलिन का मिक्सचर देना चाहिए।

६. **अगर ज्वर अधिक हो**—ठण्डे पानी की पट्टी चढ़ाना चाहिए।

७. **अगर टट्टी में खून आता हो**—१. रोगी को पूर्ण आराम करना चाहिए। २. मुंह से कुछ भी नहीं देना चाहिए। ३. मरीज को नस के द्वारा खून देना चाहिए। ४. पेट पर बर्फ से सेक करना चाहिए। ५. पलंग का पैर वाला किनारा ऊपर उठाना चाहिए। ६. मरफिया का $\frac{1}{8}$ ग्रेन का इन्जैक्शन देना चाहिए।

८. **अगर परफोरेशन हो तो**—इससे मृत्यु की सम्भावना बहुत अधिक होती है इसमें—(a) क्लोरमफेनिकाल व इरिथ्रोमाइसिन १ ग्राम प्रत्येक दिन नस के द्वारा

देना चाहिए, (b) नींद लाने के लिए लारजेक्टिन इत्यादि देना चाहिए, (c) नाक से एक नली डालना चाहिए जो अमाशय तक जावे। उसके द्वारा बार-बार अमाशय का रस खींच कर बाहर कर देना चाहिए।

९. विटामिन सी (C) की गोलियाँ जैसे—सेलिन, रिडाक्सिन इत्यादि देना चाहिए।

१०. विटामिन बी (B) कम्पलेक्स देना चाहिए।

फैलना :

(१) रोग के कीटाणु रोगी के मल व मूत्र में मौजूद रहते हैं अतः जो व्यक्ति टाइफाइड के मरीज की सेवा करता है वह अगर बराबर ढंग से हाथ इत्यादि नहीं धोता है तो रोग के कीटाणु व्यक्ति के हाथों के द्वारा खाना खाते समय उसके शरीर में पहुँच जाते हैं व व्यक्ति टाइफाइड की बीमारी का शिकार हो जाता है।

(२) अगर रोगी के कपड़े जिसमें रोगी ने पेशाब या टट्टी कर दिया हो तो किसी जलाशय इत्यादि में धोने से जलाशय का पानी दूषित हो जाता है और वही दूषित पानी पीने से रोग के कीटाणु स्वस्थ्य मनुष्यों के शरीर में प्रवेश कर जाते हैं व बीमारी फैलाते हैं।

मक्खी—मक्खियाँ अगर रोगी के पाखाने पर बैठती हैं तो रोग के कीटाणु उसके पैरों में व पंखों में चिपक जाते हैं व वही मक्खी बाद में भोजन पर बैठती है तो कीटाणु पैरों व पंखों से छूट जाते हैं व भोजन को दूषित कर देते हैं तथा वही भोजन जब स्वस्थ मनुष्य खाता है तो रोग के कीटाणु मनुष्य के शरीर में पहुँच जाते हैं।

बचाव :

(१) रोगी को अलग रखना चाहिए।
(२) रोगी की उपयोग में लाई वस्तुएँ अलग रखना चाहिए।
(३) रोगी के कपड़े पानी में उबालना चाहिए।
(४) रोगी की टट्टी व पेशाब को निसंक्रमण करके दूर गाड़ना चाहिए।
(५) रसोईघर में मक्खियाँ न आने पावें अतः पर्दे या बारीक जालियाँ खिड़कियों पर लगवाना चाहिए।
(६) मक्खियों के लिए डी. डी. टी. छिटकाव करवाना चाहिए।
(७) जलाशयों में कपड़े धोने की मनाई करवाना चाहिए। अगर किसी को कपड़े धोना हो तो जलाशय से पानी लेकर दूर धोना चाहिए।
(८) टीका लगवाना चाहिए।

★

३४· दस्त लगना
(DIAHHOREA)

बार-बार पतले दस्त लगने को दस्त लगना (Diahhorea) कहते हैं। साधारणतया हरेक व्यक्ति एक या दो बार पाखाना जाता है व दस्त ढीला होता है परन्तु यदि बार-बार दस्त हो व पानी की तरह पतले हों तो दस्त लगना कहलाता है। दस्त आँव व रक्त वाले भी हो सकते हैं। बार-बार दस्त लगने से शरीर की पानी की मात्रा कम हो जाती है व डिहाइड्रेशन के चिन्ह दिखाई देने लगते हैं। आँखें अन्दर की ओर धँस जाती हैं। चमड़ी सल वाली हो जाती है। मुँह सूखने लगता है।

माँ का दूध पीने वाले बच्चों को प्रायः दिन में ५-६ बार दस्त होता है। यह एक सामान्य बात है इसे दस्त लगना नहीं समझना चाहिए।

दस्त (Diahhorea) **के कारण :**

(१) **मानसिक** (Psychogenic disorder)—यह घबराहट (नर्वसनेस) के कारण होता है। यदि व्यक्ति किसी कारण से भय खाता है तो उसे बार-बार दस्त होते हैं इसे नर्वस डायरिया कहते हैं।

(२) **आँत द्वारा** (Intestinal) :

(अ) **विषाणु** (Virus)—जब विषाणु, भोजन, पानी इत्यादि के द्वारा या किसी और प्रकार से आँत में पहुँच जाते हैं व अपनी संख्या बढ़ाते हैं तो आँत में सूजन आ जाती है व छाले हो जाते हैं और दस्त लग जाते हैं।

(ब) **अमीबा** (Amoeba) नामक कीटाणु के कारण आँत में संक्रमण होता है जिसे 'अमिबायसिस' कहते हैं, इसमें दस्त के साथ आँव व खून आता है।

(स) **बेक्टीरियल** (Bactirial) **(जीवाणु)**—जीवाणुओं के कारण आँत में संक्रमण होता है।

(३) **अलसरेटिव कोलाइटिस** (Ulcerative collitis)—आँत में सूजन हो जाती है व छाले पड़ जाते हैं।

(४) **कम सोखने की शक्ति** (Mal-absorption)—यदि आँत की शक्ति भोजन को पचाने की ताकत नहीं रखती है तो भोजन पच नहीं पाता है और दस्त लग जाते हैं।

(५) **पेनक्रियेटिक डिसिज** (Pancreatic disease)—यदि पेनक्रियाटिक ग्रन्थि बराबर मात्रा में रस नहीं बनाती है तो भोजन पूरी तरह पच नहीं पाता है और दस्त लग जाते हैं।

(६) **आँतों से बाहर का संक्रमण**—गले की गिल्टियों की सूजन, निमोनिया।

(७) भूख—हरे रंग के आँव वाले दस्तों का कारण भूख भी नहीं होती है।

बचाव :

(१) वातावरण को स्वच्छ रखना चाहिए। (२) भोजन को मक्खियों से बचाकर रखना चाहिए। (३) पानी को उबालकर पीना चाहिए। (४) बाजार से मिठाई इत्यादि नहीं खानी चाहिए। (५) खाना खाने के पहले अपने हाथ अच्छी तरह धोना चाहिए। (६) पाखाना साफ रखना चाहिए।

इलाज (Treatment) :

जल की कमी (Dehydration)—जल की कमी को दूर करना चाहिए अतः मरीज को ज्यादा से ज्यादा पानी पिलाना चाहिए व साथ ही इलेक्ट्रोलाइट की कमी को भी दूर करना चाहिए। इलेक्ट्रोलाइट घर पर भी बनाया जा सकता है।

३ ग्राम नमक, २५ ग्राम शक्कर, आधा नीबू का रस १ लिटर पानी में घोल लें और पानी को उबालकर ठण्डा करके बार-बार रोगी को पिलाना चाहिए।

यदि रोगी को दस्त के साथ उल्टियाँ लगी हों तो निकट के अस्पताल में भेज दें क्योंकि मरीज को ग्लूकोज सलाइन नस द्वारा देना जरूरी हो जाता है।

इसकी निम्न मात्रा देनी होगी :

(१) **परिमित जलाँश की कमी**—१०० सी. सी. प्रत्येक किलोग्राम वजन के लिए ८ घण्टे में।

(२) **गम्भीर जलाँश की कमी**—१५० सी. सी. प्रत्येक किलोग्राम वजन के लिए ८ घण्टे में।

इसकी $\frac{1}{4}$ मात्रा पहले घण्टे में देना चाहिए।

(३) विस्मथ केओलिन का मिक्चर दें। (४) सल्फागोनेडिन, फ्यूरोक्सोन, क्लोरोस्ट्रेप, एन्ट्रोक्युनाल, एन्ट्रोवायोफार्म, मेक्जाफार्म इत्यादि में से कोई भी एक प्रकार की गोली दें। (५) अगर पेट में दर्द हो तो स्पासमिन्डान या बरालगन की गोली १-१ दिन में ३ बार दें।

औषधि की खुराक मुँह से	प्रति किलोग्राम वजन के लिए	
सल्फोनामाइड	१५०	मि. ग्रा.
फ्यूरोक्सोन	५ से ७	मि. ग्रा.
नियोमाइसिन	५०	मि. ग्रा.
स्ट्रेप्टोमाइसिन	८०	मि. ग्रा.
क्लोरमफेनिकाल	५०	मि. ग्रा.

★

३५. पीलिया

(INFECTIVE HEPATITIS)

साधारणतया यह रोग सभी उम्र के व्यक्तियों में पाया जाता है। यह स्त्री पुरुष दोनों को होता है। यह रोग विषाणु (वायरस) के द्वारा होता है। इसमें पूरे शरीर की त्वचा व आँखें पीली हो जाती हैं।

लक्षण—(१) रोगी को भूख नहीं लगती है। (२) **ज्वर**—रोगी का तापमान १०१°F. से १०३°F. तक बढ़ जाता है। (३) रोगी के बदन में दर्द होता है। (४) चक्कर आते हैं। जी घबराता है। उल्टी होती है व दस्त पतले होते हैं। (५) पेट में दाहिने व ऊपर के बाजू में दर्द होता है। (६) यकृत (Liver) बढ़ जाता है।

पीलिया की स्थिति (Icteric Stage) :

(१) तीसरे चौथे दिन आँखें पीली हो जाती हैं। (२) पीलापन शनैः-शनैः बढ़ता रहता है व पूरा शरीर पीला हो जाता है। यह पीलापन छः सप्ताह में समाप्त होता है। (३) पेशाब बीलीरुबिन के कारण पीला होता है। (४) शरीर का तापमान नहीं बढ़ता है। (५) नाड़ी धीरे चलती है। (६) वजन कम हो जाता है। (७) तिल्ली (Spleen) बड़ी हो जाती है। (८) कभी-कभी बदन में खुजली चलती है।

इलाज :

(१) तीन सप्ताह तक रोगी को पूर्ण विश्राम करना चाहिये।

(२) **भोजन**—रोगी को वसा (Fat) नहीं लेना चाहिए। दूध, दही (मलाई निकालकर) छाछ, ग्लूकोज, फलों का रस, गन्ने का रस, शहद इत्यादि अधिक मात्रा में लेना चाहिये।

(३) शराब ६ माह तक नहीं लेना चाहिये।

(४) विटामिन बी काम्पलेक्स की १ गोली सुबह व १ गोली शाम को देनी चाहिए।

(५) **अगर उल्टियाँ हों तो** नस के द्वारा ग्लूकोज १०% देना चाहिये।

(६) **एण्टीबायोटिक**—टेट्रामाइक्लिन या नियोमाइसिन या इरिथ्रोमाइसिन इत्यादि के २५० मि. ग्रा. की गोलियाँ दिन में चार बार देना चाहिए।

(७) **अगर खुजली चलती हो** तो केलामिन लोशन लगाना चाहिए व एण्टीहिस्टामिनिक्स (एविल, फारिस्टाल, हिस्टाफेन) की गोली दिन में २ बार देना चाहिए।

(८) उल्टियों के लिए स्टेमेटिल (Stematil) की गोली देना चाहिए।

(९) **अगर बेचैनी हो** तो गार्डिनाल या पराल्डिहाइड की गोली देना चाहिए।

फैलना :

(१) बीमारी के जीवाणु रोगी के मलमूत्र में होते हैं। अतः अगर रोगी के कपड़े जिनमें कि रोगी ने मलमूत्र किया है कि किसी जलाशय इत्यादि में धोने से, जलाशय का पानी दूषित हो जाता है। वही पानी जब अन्य व्यक्ति उपयोग में लेता है तो रोग के कीटाणु उसके शरीर में प्रवेश कर जाते हैं व रोग फैलाते हैं।

(२) रोगी के उपयोग में लायी गयी वस्तुएँ जब अन्य व्यक्ति उपयोग में लेते हैं तो भी रोग फैलने की सम्भावना रहती है।

(३) **मक्खियाँ**—मक्खियाँ रोगी के मलमूत्र पर बैठती हैं तो रोग के कीटाणु उसके पैरों पर व पंखों पर चिपक जाते हैं व वही मक्खियाँ जब भोजन पर बैठती हैं तो कीटाणु छोड़ देती हैं व भोजन दूषित हो जाता है। जब यही दूषित भोजन स्वस्थ व्यक्ति खाता है तो कीटाणु उसके शरीर में प्रवेश कर जाते हैं।

*

३६. टिटेनस
(TETANUS)

यह एक संक्रामक रोग है। इसे धनुर्वाद भी कहते हैं व कमानी का रोग भी कहा जाता है। इसमें माँसपेशियाँ कड़ी हो जाती हैं। सर्वप्रथम मुँह की माँसपेशी कड़ी होती है। अतः मुँह नहीं खुलता है। जिसे मुँह पर ताला (Lock jow) लगना कहते हैं। इसके पश्चात् क्रमशः गर्दन के पीछे की, पेट की, पीठ की, हाथों की व पैरों की माँसपेशियाँ कड़ी हो जाती हैं।

प्रतिनिधि—क्लाट्रिडियम टिटेनी (Clastridium Tetani)।

उद्भवन काल—८ से ६ दिन।

रोग फैलने का तरीका—रोग के कीटाणु किसी घाव के द्वारा पहुँचते हैं। आपरेशन में अगर औजारों का निसंक्रमण बराबर नहीं हुआ है तो रोग के कीटाणु पहुँच जाते हैं। (२) इंजक्शन की सुई का अगर निसंक्रमण नहीं हुआ है। (३) किसी घाव पर मिट्टी, गोबर इत्यादि लगने पर रोग के कीटाणु पहुँच जाते हैं।

लक्षण—लक्षण तीन भागों में विभाजित किये जाते हैं :

(१) **बीमारी के पहले के लक्षण** (Prodromal Symptom)

(२) **इनिसियल लक्षण** (Initial Symptom)

(३) **बीमारी की स्थिति** (Symptom of established disease)

(१) **बीमारी के पहले के लक्षण** (Prodromal symptom) :

(अ) घाव के आसपास माँसपेशियाँ कड़क हो जाती हैं।

(ब) घाव के आसपास दर्द होता है।

(२) **बीमारी की शुरुआत के लक्षण** (Initial Symptom)—(१) जबड़े की व गरदन के पीछे की माँसपेशियाँ कड़क हो जाती हैं अतः मुँह नहीं खुलता है जिसे मुँह पर ताला (Lock jow) लगना कहते हैं। (२) सिर व गरदन में दर्द होता है। (३) गरदन कड़क हो जाती है।

(३) **बीमारी की स्थिति** (Symptom of established disease) :

(a) रोगी को पसीना बहुत आता है।

(b) क्रमशः पीठ, पेट, हाथ, पैर की माँसपेशियाँ कड़क हो जाती हैं।

(c) आँखें आधी खुली रहती हैं व रोगी के सिर में सल दिखाई देते हैं।

(d) माँसपेशियाँ सिकुड़ती हैं व फैलती हैं अतः रोगी को झटके आते हैं।

(e) श्वसन संस्थान की माँसपेशियाँ भी कड़क हो जाती हैं अतः रोगी को श्वांस लेने में कठिनाई होती है व रोगी दम घुटने से मर जाता है।

इलाज :

(१) रोगी को ए. टी. एस. (एण्टी टेटेनिक सिरम) २०,००० यूनिट इन्जेक्शन के द्वारा माँसपेशियाँ (इन्ट्रामसकूल) में देना चाहिए। यह इन्जैक्शन जाँच करने (सेनसिटिविटी टेस्ट) के बाद देना चाहिए क्योंकि इसकी रियेक्शन होती है।

(२) मरीज को नींद लाने वाली दवाई का इन्जैक्शन देना चाहिए जैसे लारजेक्टिल ५० मि. ग्रा. या परालडिहाइड ५ सी. सी. इत्यादि।

(३) **एण्टीबायोटिक**—क्रिस्टालाइन पेनिसिलिन ५ लाख यूनिट, स्ट्रेप्टोमाइसिन ½ ग्राम का इन्जैक्शन देना चाहिए। पेनिसिलिन इन्जैक्शन लगाने से पहले रियेक्शन के लिए जाँच करना जरूरी है या टेट्रासाइक्लिन, या टेरामाइसिन का इन्जैक्शन दिया जा सकता है।

(४) **माँसपेशियों में सिकुड़न कम करने वाली दवाई** (Muscle relaxant)—(१) मेफेनसिन १० C. C. १०% ग्लूकोज सलाइन में ६-६ घण्टे से देना चाहिए या रोबिनेक्स के इन्जैक्शन लगाना चाहिए। (२) कुरारे (Curare)—यदि माँसपेशियों में सिकुड़न कम न हो तो कुरारे देना चाहिए। (३) मरीज को अंधेरे वाले कमरे में रखना चाहिए। (४) भोजन में तरल पदार्थ देना चाहिए। (५) नस से ग्लूकोज सलाइन देना चाहिए।

बचाव :

(१) रोग के कीटाणु किसी भी घाव के द्वारा शरीर में प्रवेश करते हैं अतः कोई भी चोट लगने पर उस पर धूल इत्यादि नहीं लगने देना चाहिए व उसका इलाज करवाना चाहिए व चोट लगने पर टीटेनस का टीका लगवाना चाहिए।

(२) आपरेशन के औजार, सिरिंज की सुई इत्यादि का निसंक्रमण अच्छी तरह करना चाहिए।

(३) टीटेनस टाक्साइड के टीके लगवाना चाहिए। ये टीके एक-एक माह की दूरी से ३ बार लगाये जाते हैं। यह टीके गर्भवती माताओं को ६, ७, ८वें माह में लगवाना चाहिए जिससे होने वाले बच्चे को भी प्रतिरोधात्मक शक्ति उत्पन्न हो जाती है।

(४) बच्चों को डी. पी. टी. के टीके लगवाना चाहिए। यह भी एक-एक माह की दूरी से ३ टीके लगाये जाते हैं।

★

३७. रेबिस
(RABIES)

यह एक संक्रामक रोग है जिसे हाइड्रोफोबिया (पानी से भय) भी कहते हैं। यह रोग विषाणु (Virus) के द्वारा होता है। इसके विषाणु पागल कुत्ते, सियार, लोमड़ी के थूक में होते हैं जिनके काटने से रोग के कीटाणु थूक के द्वारा मनुष्य के शरीर में प्रवेश कर जाते हैं व रोग हो जाता है।

उद्भवनकाल—यह काटे हुए स्थान पर निर्भर करता है। दिमाग के जितना पास काटा है, उद्भवन काल उतना ही कम होता है।

चेहरे पर काटने पर	३० दिन
हाथों पर काटने पर	४० दिन
पैरों पर काटने पर	६० दिन

लक्षण—लक्षण ३ भागों में पाये जाते हैं :

(१) रोग के प्रथम लक्षण (Premonitory Stage),
(२) बीमारी के लक्षण (Stage of Exitement),
(३) लकवे की स्थिति (Stage of Paralysis).

(१) **रोग के प्रथम लक्षण** (Premonitory Stage) :

(१) काटे हुए स्थान पर दर्द होता है। (२) घबराहट होती है व रोगी जोर की आवाज सुनना पसन्द नहीं करता। (३) रोगी की आवाज फट जाती है। (४) कुछ भी निगलने में तकलीफ होती है। (५) शरीर का तापमान थोड़ा बढ़ जाता है। (६) यह स्थिति १ से २ रोज रहती है।

(२) **बीमारी के लक्षण** (Stage of exitement) :

(१) स्वांस लेने में कठिनाई होती है। (२) पानी पीने में तकलीफ होती है अतः रोगी पानी पीने से भय खाता है। (३) थूक मुंह से बाहर आता है। (४) मरीज बीच-बीच में पागलों जैसी हरकतें करता है। (५) तापमान थोड़ा बढ़ जाता है। (६) यह स्थिति २ से ३ दिन रहती है। (७) रोगी की मृत्यु दिल के कार्य न करने (Heart failure) से हो सकती है।

(३) **लकवे की स्थिति** (Stage of Paralysis) :

(१) सभी माँसपेशियाँ लकवे से ग्रसित हो जाती हैं। (२) रोगी को पूरा होश रहता है। (३) रोगी की मृत्यु हो जाती है।

इलाज :

(१) जिस स्थान पर काटा गया है पानी व साबुन से धोना चाहिए। (२) कारबोलिक एसिड से काटराइज करना चाहिए। (३) एण्टी रेबिक के टीके लगवाना चाहिए।

बचाव :

(१) पागल कुत्ते के काटने पर शीघ्र इलाज करवाना चाहिए व टीके लगवाना चाहिए। (२) पागल कुत्ते को मार डालना चाहिए।

★

३८. सिफिलिस
(SYPHILIS)

इसे गर्मी की बीमारी भी कहा जाता है। यह रोग संक्रमित स्त्री द्वारा पुरुष को संभोग के कारण हो जाता है।

वैसे यह रोग पहले भारतवर्ष में नहीं पाया जाता था परन्तु जब पुर्तगाली भारत में आये तो उनके कुछ साथियों को यह रोग था व उन्हीं ने यह रोग भारत वर्ष में फैलाया।

उद्‌भवनकाल—९ से ९० दिन।

जब संक्रमित स्त्री के साथ स्वस्थ व्यक्ति संभोग करता है तो संभोग के समय शिश्न की झिल्ली पर चोट आदि के कारण एब्रेसन (Abbrassion) हो सकते हैं व रोग के कीटाणु खून में प्रवेश कर जाते हैं।

प्रतिनिधि—ट्रीपोनेमा पेलिडम (Treponema pallidum)।

लक्षण :

इस रोग के लक्षण ३ भागों में होते हैं :

(१) प्रथम अवस्था (Primary Stage)

(२) द्वितीय अवस्था (Secondary Stage)

(३) तृतीय अवस्था (Tersary Stage)।

(१) **प्रथम अवस्था** (Primary Stage)—सर्वप्रथम शिश्न के आगे के भाग में एक छाला हो जाता है। यह दर्द रहित होता है। इसकी सतह बराबर रहती है व पेंदा साफ होता है। छाले के आसपास सूजन नहीं आती है। आसपास की लिम्फ ग्रन्थियाँ बड़ी हो जाती हैं परन्तु दर्द रहित रहती हैं।

जाँच (Investigation) :

खून की—वी. डी. आर. एल. ।

(२) **दूसरी अवस्था** (Secondary Stage)—इस अवस्था के लक्षण प्रथम अवस्था के १ से ६ माह बाद निम्न प्रकार प्रगट होते हैं :

(१) शरीर पर चमकीले ताँबे के रंग के दाने दिखाई देते हैं। दाने हाथों पर आगे की तरफ, हथेली पर और पगथली पर होते हैं। इनमें कोई दर्द व खुजाल नहीं होती है। सारे शरीर की लिम्फ की ग्रन्थियाँ बढ़ जाती हैं। परन्तु दर्द रहित रहती हैं। (२) सिर में दर्द होता है। (३) चक्कर आते हैं। (४) हाथ पैरों में दर्द होता है। (५) शरीर का तापमान कुछ बढ़ जाता है। (६) जोड़ों में दर्द होता है। (७) गले में खराश होती है। (८) आवाज फट जाती है। (९) नाड़ी तेज चलने लगती है। (१०) यकृत (Liver) व तिल्ली (Spleen) बढ़ जाती है। (११) पेशाब बार-बार आता है।

इलाज :

(१) छालों को नमक के पानी से साफ करना चाहिए। (२) साफ करने के बाद डस्टिंग पावडर लगाना चाहिए (३) पाम (PAM) (Procain penicillin in oil with 2% Alluminium monostearate) प्रोकेन पेनिसिलिन इन आइल विथ २% एल्यूमिनियम मोनोस्टियरेट का इन्जेक्शन निम्न मात्रा में लगाना चाहिए। (४) सी. सी. (१.२ मेगा यूनिट) पहले दिन २ सी. सी. ६०,००० यूनिट सप्ताह में दो बार कुल ६ इन्जेक्शन लगाना चाहिए।

अगर रोगी को पेनिसिलिन रियेक्शन करती हो तो टेट्रासाइक्लिन ५०० मि. ग्रा. दिन में चार बार देना चाहिए या १०० मि. ग्रा. के इन्जेक्शन हर १२ घण्टे से लगाना चाहिए।

फैलना :

(१) यह रोग संभोग के द्वारा फैलता है। (२) रोग होने पर स्त्री व पुरुष दोनों का इलाज करवाना चाहिए। क्योंकि अगर पुरुष ने इलाज करवा लिया और वह अच्छा हो गया व फिर उसी स्त्री के पास गया तो फिर रोग हो जायेगा। अतः दोनों का इलाज जरूरी है।

बचाव :

(१) रोग होने पर जल्दी इलाज करवाना चाहिए। (२) जब तक रोग ठीक न हो जावे किसी के साथ सम्भोग नहीं करना चाहिए। (३) रोग के फैलने के बारे में लोगों को समझाना चाहिए।

३९. गोनोरिया
(GONORRHEA)

इस रोग को देहातों में साधारणतया सुजाक की बीमारी कहते हैं। यह पुरुष को संक्रमित स्त्री से व स्त्री को संक्रमति पुरुष के साथ सम्भोग करने से हो जाती है।

प्रतिनिधि—गोनोकाकस जीवाणु।

उद्भवनकाल—३ से ७ दिन।

सम्भोग के समय जीवाणु प्रवेश कर जाते हैं व सर्वप्रथम मूत्रनली (urethra) में सूजन व छाले हो जाते हैं अतः रोगी को पेशाब करते समय बड़ी पीड़ा होती है क्योंकि पेशाब जो कि अम्लीय होता है वह मूत्र नली के छाले के सम्पर्क में आता है। फिर इससे पीप (मवाद) निकलने लगता है व मरीज को बड़ी पीड़ा होती है।

इलाज :

(१) अल्कलाइन मिक्चर देना चाहिए। (२) **पाम** (PAM)—२ सी. सी. ६०,००० यूनिट का इन्जेक्शन लगाना चाहिए।

●

४०. कृमि
(WORM INFESTATIONS)

राउन्ड वार्म (Round worm)—गोल कृमि साधारणतया यह केचुए की तरह के होते हैं। ये ८ से १२ इंच लम्बे, गुलाबी व भूरे रंग के होते हैं। इनके दोनों छोर नुकीले होते हैं। ये मनुष्य की छोटी आँत में रहते हैं व वहीं अपना भोजन प्राप्त करते हैं।

जीवन चक्र—इनके अण्डे सामान्यतः पीले रंग के होते हैं जो मल के साथ बाहर पृथ्वी पर आ जाते हैं। इस अवस्था में ये अण्डे संक्रामक नहीं होते। २१ दिनों में ये पृथ्वी में पड़े-पड़े एम्ब्रियो (Embryo) में परिवर्तित हो जाते हैं व संक्रमण के योग्य हो जाते हैं। इस अवस्था में ये भोजन के साथ या पानी के साथ मनुष्य के शरीर में प्रवेश कर जाते हैं व छोटी आँत में पहुँच जाते हैं। यहाँ ये लार्वा बन जाते हैं व लार्वा छोटी आँत की झिल्ली के अन्दर चला जाता है व यहाँ से खून में चले जाते हैं। खून के द्वारा ये यकृत (लिवर) में चले जाते हैं व लिवर से खून ही के द्वारा हृदय में चले जाते हैं व फिर ये फेफड़े में चले जाते हैं। फेफडों से श्वसन नली के द्वारा मुँह में चले जाते हैं व गले में थूक इत्यादि निगलने पर वापस अमाशय में पहुँच जाते हैं व अमाशय से छोटी आँत में चले जाते हैं। यहाँ ये करीब २ माह में

पूर्ण वयस्क हो जाते हैं। साधारणतया ये छोटी आँत में ऊपर की तरफ रहते हैं व अण्डे देते हैं जो मल के साथ बाहर निकलते हैं।

लक्षण :

१. अगर अधिक मात्रा में अण्डे शरीर में प्रवेश करते हैं व श्वसन संस्थान में पहुँचते हैं तो निमोनिया के लक्षण पाये जाते हैं।
२. कृमि मल के साथ बाहर आ जाते हैं।
३. कभी-कभी कृमि उल्टी के साथ बाहर आ जाते हैं।
४. जब छोटी आँत में कृमि अधिक होते हैं तो आँत में रुकावट पैदा कर देते हैं।
५. पेट में ऊपर की ओर दर्द होता है।
६. कभी-कभी शरीर में खुजली चलती है। यह इनके द्वारा छोड़े गये विष के खून में मिलने के कारण होता है।

इलाज :

१. पिपराजिन साइट्रेट की गोलियाँ ७५ मि. ग्रा. पर किलोग्राम शरीर के वजन के अनुसार देना चाहिए। परन्तु ४ ग्राम से अधिक मात्रा नहीं देना चाहिए।
२. इनकी एक ही मात्रा देना चाहिए व अगर चाहें तो १ सप्ताह बाद फिर दे सकते हैं या डेकारीस की १ गोली देना चाहिए।

फैलना :

यह रोग दूषित भोजन या पानी के कारण होता है।

बचाव :

१. मल निकास की उचित व्यवस्था।
२. साग-सब्जी अच्छी तरह धोकर खाना चाहिए।
३. पानी उबालकर पीना चाहिए।
४. मल निकास के बाद साबुन से हाथ धोना चाहिए।

★

४१. सुत्र कृमि
(THREAD WORM)

साधारणतया ये बड़ी आँत में पाये जाते हैं। नर २ से ५ मिली मीटर और मादा ८ से १३ मि० मी० लम्बी होती है। ये सफेद रंग के होते हैं। इनके अण्डे रंगहीन होते हैं।

जीवन चक्र—मादा व नर मनुष्य की आँत में ही मैथुन करते हैं व नर मादा के गर्भवती होने पर मर जाता है। मादा गुदाद्वार के पास चली जाती है व अन्डे दे देती है जो गुदाद्वार की चमड़ी के सलों में चले जाते हैं अतः सूजन हो जाती है व

खुजली चलने लगती है। खुजलाने के समय में अण्डे अंगुलियों व नाखूनों में चिपक जाते हैं व अँगुली के द्वारा मुँह में पहुँच कर फिर आँत में पहुँच जाते हैं या भोजन को दूषित कर देते हैं।

लक्षण :

गुदा द्वार पर खुजली चलती है जो रात में अधिकतर होती है। अतः नींद में बाधा पहुँचती है।

इलाज :

पिपराजिन की गोली ७५ मि० ग्रा० प्रति किलोग्राम शरीर के वजन के अनुसार देना चाहिए।

●

४२. अंकुश कृमि
(HOOK WORM)

साधारणतया यह रोग ग्रामीण इलाके में रहने वालों को होता है। क्योंकि कृमि के लार्वा मनुष्य की त्वचा में से शरीर में प्रवेश करते हैं व गाँवों में पाखाना भी मनुष्य खेत या जंगल में जाता है अतः खुले पैरों से चलने से रोग होने की सम्भावना अधिक रहती है।

ये कृमि छोटी आँत में रहते हैं व खून पीते हैं। ये गोल धागे की तरह होते हैं। नर की मोटाई ०·४ से ०·५ मि० मी० व लम्बाई ८ से ११ मि० मी० होती है। इनका सिर थोड़ा झुका हुआ व मुँह घण्टी के आकार का होता है। इनके ४ बड़े व २ छोटे हुक की तरह के दाँत होते हैं। इनके द्वारा कृमि आँत की दिवाल से चिपका रहता है। नर के पूँछ की तरफ छत्री की तरह का फैलाव रहता है।

मेजमान (Host)—मनुष्य।

सक्रमण (Mode of Infection)—यह बीमारी संक्रमित मनुष्य के पाखाने से होती है। क्योंकि संक्रमित व्यक्ति के पाखाने में काफी मात्रा में अण्डे बाहर निकलते हैं। ये अण्डे ४ सेल की अवस्था में रहते हैं व इनके ऊपर की झिल्ली पतली होती है व ये रंगहीन होते हैं। ये गोल होते हैं व इन्हें माइक्रोस्कोप की सहायता से देखा जा सकता है। ये हल्की गर्मी, नमी व आक्सीजन की सहायता से बड़े होते हैं और २४ घण्टे में टेडपोल (Tadpole) की अवस्था में पहुँच जाते हैं। इन्हें रेब्डि-फार्म लार्वा कहते हैं। यह ०·२५ मि० मी० लम्बा रहता है। यह लार्वा फिर बढ़ता है। इसका भोजन यह पाखाने से प्राप्त करता है। ४८ घण्टे में यह ०·५ मि० मी० का हो जाता है और अपने ऊपर की झिल्ली पहली बार हटा देता है। अब यह अपने मेजमान (होस्ट) में जाने में लिए व बीमारी फैलाने के लिए तैयार रहता है। इसे फिलरीफार्म लार्वा कहते हैं। अब यह काफी दिनों तक बगैर भोजन के जिन्दा रह

सकता है। यह चलकर ऊपर की सतह पर आ जाता है। जब व्यक्ति नंगे पैर चलता है तो लार्वा त्वचा के सम्पर्क में आता है व त्वचा के अन्दर घुस जाता है। यह जिस स्थान से त्वचा के अन्दर घुसता है वहाँ खुजली चलती है व स्थान लाल हो जाता है। त्वचा के नीचे जाने के पश्चात् लार्वा लिम्फ ग्रन्थि में पहुँच जाता है और यहाँ से खून में चला जाता है व खून के द्वारा दिल में चला जाता है। यहाँ दिल में २ दिन रहता है व तीसरे दिन खून के द्वारा फेफड़ों में चला जाता है। यहाँ यह फेफड़े की स्पंज की तरह की दिवाल को तोड़कर श्वसन नलिका में चला जाता है व वहाँ से श्वांस नली में चला जाता है। श्वांस नली से लार्वा मुँह में चला जाता है व थूक निगलते वक्त मुँह से भोजन नली द्वारा अमाशय में चला जाता है। इस वक्त यह अपने ऊपर की झिल्ली तीसरी बार उतारता है। अमाशय के रस से इसे कुछ नुकसान नहीं होता है। यहाँ से यह ७ से ११ दिन में छोटी आँत में चला जाता है। १५वें दिन यह चौथी व आखरी बार अपने शरीर की झिल्ली उतारता है। छोटी आँत में अपने हुक के समान दाँतों से चिपक जाता है व खून चूसता है। यह ३ से ४ सप्ताह में सेक्सुअली मेच्योर हो जाता है।

पहली बार पाखाने में अण्डे आने में व लार्वा के त्वचा में घुसने का समय ६ सप्ताह होता है।

लक्षण :

१. मरीज को भूख नहीं लगती है व खाना हजम नहीं होता है।

२. कमजोरी आती है व खून की कमी हो जाती है।

३. मरीज सुस्त रहता है व किसी भी काम में उसका मन नहीं लगता है।

४. शरीर में दर्द होता है।

५. पेट में हल्का-हल्का दर्द होता है।

अगर संक्रमण गम्भीर हो—

१. खून की काफी कमी हो जाती है।
२. दिल धड़कने लगता है व श्वांस जल्दी-जल्दी चलने लगती है।
३. मरीज बहुत कमजोर हो जाता है।
४. कुछ रोगी मिट्टी, गारा, चूना खाना पसन्द करते हैं।
५. आँखें व नख सफेद हो जाते हैं।
६. नाड़ी तेज चलने लगती है।
७. दिल बढ़ जाता है।
८. तिल्ली (Spleen) व यकृत (Liver) बढ़ जाते हैं।

जाँच :

टट्टी की जाँच द्वारा अंकुश कृमि के अण्डे माइक्रोस्कोप में दिखाई देंगे।

बचाव :

१. लोगों को कृमि की आदतों व उनसे होने वाले खतरों के बारे में बताना चाहिये।

२. लोगों को बताना कि वे नंगे पैर नहीं रहें हमेशा जूते पहनें।

३. खेत व जंगल में पाखाना करने वालों को समझाना व गाँव में लेट्रिन बनवाना।

४. संक्रमित केसेस खोजना व उनका इलाज करना।

इलाज :

कृमि व खून की कमी (एनिमिया) का इलाज करना चाहिए :

१. अगर खून में हिमोग्लोबिन ४०% से कम हो तो खून देना चाहिए।

२. फरसोलेट की गोली देना चाहिए।

३. प्रोटीन देना चाहिए, जैसे—प्रोटीनेक्स, प्रोटीन्यूल इत्यादि।

४. विटामिन "बी" काम्पलेक्स व विटामिन सी भी देना चाहिए, जैसे—बीकासूल, सेलिन।

५. **कृमि के लिए :**

१. हेक्जाइल रिसारसिनाल ०·१ ग्राम प्रति साल उम्र के हिसाब से देना चाहिए परन्तु ०·५ ग्राम से अधिक नहीं। यह मात्रा ३ बार २ से ३ सप्ताह के अन्तर से देना चाहिए।

२. **टेट्राक्लोरइथिलिन**—३ मिनिम प्रति साल उम्र के, परन्तु ३ सी० सी० से ज्यादा नहीं।

३. लिक्वीड पेराफिन देना चाहिए।

★

४३· फीता कृमि

(TAP WORM)

यह कृमि लम्बा चपटा होता है। यह फीते की तरह का होता है। अतः इसे फीता कृमि कहते हैं। यह १० से १५ फीट लम्बा पीले या सफेद रंग का होता है। इसके मुँह व आँत नहीं होती है। ये मनुष्य की आँत में सकर्स (Suckers) जो हुक की तरह के होते हैं से चिपके रहते हैं। इनके सिर को स्कोलेक्स (Scolex) व शरीर को स्ट्रोब्रिया (Strobia) व प्रत्येक भाग (Segment) को प्रोग्लाटिस (Proglottis) कहते हैं। ये द्विलैंगिक होते हैं और नर व मादा जनइन्द्रियाँ प्रत्येक भाग (Segment) में होती है।

मेजमान (Host)—मनुष्य व सुअर।

जीवन चक्र—फीता कृमि मनुष्य की आँत में रहते हैं। इनके टुकड़े मनुष्य के मल के द्वारा बाहर निकलते हैं व अण्डे आजाद (फ्री) हो जाते हैं। ये अण्डे कई दिनों

तक देखे जा सकते हैं। जब सुअर मल खाता है तो मल के साथ ये अण्डे सुअर के पेट में पहुँच जाते हैं। ये अण्डे अमाशय में बढ़ते हैं व ६ हुकलेट की स्थिति में आ जाते हैं व अमाशय की झिल्ली में से खून में पहुँच जाते हैं व खून के द्वारा माँस-पेशियों में पहुँच जाते हैं। यहाँ ये अपने हुक खो बैठते हैं व ये गोल, दूध जैसे रंग के सिस्टीसरकस (Cysticercus) में परिवर्तित हो जाते हैं। मनुष्य जब सुअर का कच्चा माँस या अधपका माँस खाता है तो सिस्टीसरकस (Cysticercus) मनुष्य के अमाशय में पहुँच जाते हैं यहाँ से आँत में पहुँच जाते हैं व आँत की दिवाल पर चिपक जाते हैं व खून चूसते हैं।

लक्षण :

(१) पेट में दर्द होता है। (२) अजीर्ण हो जाता है।

जाँच :

टट्टी की जाँच में फीता कृमि के टुकड़े माइक्रोस्कोप में दिखाई देंगे।

इलाज :

१. ४८ घण्टे तक रोगी को सिर्फ तरल पदार्थ दें।

२. २·५ सी. सी. (३८ मिनिम) फिलिक्समास (Filixmas) केप्सूल में सुबह ६ बजे दीजिये फिर ६-३० बजे मरीज को थोड़ा पानी दें।

३. रोगी को ६० सी. सी. (२ ozs) सेचुरेटेड सोडियम सल्फेट का घोल दीजिये।

अगर स्कोलेक्स ९ बजे तक नहीं निकले तो साबुन व पानी का एनिमा दीजिये।

भोजन स्कोलेक्स के बाहर आने के बाद दीजिये करीब ९-३० बजे।

बचाव :

(१) कच्चा व अधपका माँस नहीं खाना चाहिए। (२) बूचड़खाने में उचित प्रबन्ध व निगरानी। (३) समुचित सफाई का प्रबन्ध। (४) व्यक्तिगत स्वच्छता। (५) मनुष्यों के मल न्यास करने की जगह पशुओं को चरने से रोकना।

गिनी वार्म (Gunae worm)—ये कृमि धागे की तरह होते हैं। मादा करीब २० से ३० इन्च लम्बी होती है। इनका रंग सफेद दूध की तरह होता है। पूँछ हुक के आकार की होती है। रोग दूषित जल के पानी से होता है।

मेजमान (होस्ट)—(१) मनुष्य, (२) साइक्लोप।

(१) **जीवन चक्र : मनुष्य**—व्यक्ति जब दूषित जल पीता है जिनमें संक्रमित साइक्लोप रहते हैं तो पेट जाकर साइक्लोप अमाशय के रस द्वारा हजम हो जाते हैं व कृमि के लार्वा बाहर आ जाते हैं तथा ये लार्वा छोटी आँत की दिवाल के अन्दर चले जाते हैं व १२ माह में पूर्ण कृमि नर व मादा बन जाते हैं। नर कृमि मादा को गर्भवती करने के पश्चात मर जाता है। मादा कृमि त्वचा के नीचे खिसकती है व

विशेष रूप से पैरों की ओर क्योंकि पैर ज्यादातर पानी के सम्पर्क में आते हैं। मादा कृमि अपने मुंह से कुछ इरिटेन्ट तरल पदार्थ निकालती है अतः पैरों पर छाला हो जाता है व जलन होती है अतः व्यक्ति अपना पैर पानी में डालता है। उसी समय छाला फूट जाता है व मादा कृमि सफेद दूध की तरह का तरल पदार्थ अपने गर्भाशय में से पानी में छोड़ देती है जिसमें कि अण्डे होते हैं।

साइक्लोप्स—ये पानी में रहते हैं। ये मादा कृमि के द्वारा छोटे अण्डे खा जाते हैं। अण्डे साइक्लोप की आँत में पहुँच जाते हैं व अण्डे, लार्वा २ से ६ सप्ताह में बन जाते हैं। यह पानी अगर मनुष्य पीता है तो लार्वा मनुष्य के पेट में पहुँच जाते हैं।

लक्षण :

पैरों में छाला बना देते हैं जो कभी-कभी पक जाता है।

इलाज :

(१) रोगी का पैर पानी में रखिये व कृमि को एक माचिस की काड़ी में लपेटते जाइये। क्योंकि यह कृमि पानी की ओर रेंगता है। इस तरह पूरा कृमि निकाल दीजिये। (२) स्ट्रेप्टोमाइसिन का १ ग्राम का इन्जेक्शन कृमि के स्थान पर लगाइये।

बचाव :

(१) यह बीमारी पानी के द्वारा फैलती है। अतः पीने के पानी को संक्रमित व्यक्ति से बचाना चाहिए। (२) कुएँ या बावड़ी से पानी हेन्डपम्प द्वारा या रस्सी बाल्टी से निकालना चाहिए। बावड़ी की सिड़िया बन्द कर देनी चाहिए। (३) पानी में पोटास १० ग्राम डालना चाहिए।

★

४४. पोषक आहार

मानव शरीर एक यन्त्र के समान है। जिस प्रकार से यन्त्र को क्रियाशील बनाने के लिए ईंधन की जरूरत होती है उसी प्रकार शरीर को सुचारु रूप से चलाने के लिए भोजन की जरूरत होती है।

शरीर को चलाने में या कार्य करने में शक्ति (Energy) व्यय होती है व सजीव शरीर में वृद्धि भी निरन्तर होती रहती है व अन्य बीमारियों से बचाए रखने के लिए उत्तम भोजन आवश्यक है।

पोषण की परिभाषा—जिनके द्वारा जीवित प्राणी अपनी क्रियाशीलता बनाए रखता है व अंगों की वृद्धि व उनके पुनः निर्माण हेतु आवश्यक पदार्थ प्राप्त करता है उसे पोषण कहते हैं।

पोषण के आवश्यक तत्व :

(१) कार्बोहाइड्रेट, (२) वसा, (३) प्रोटीन, (४) खनिज लवण, (५) विटामिन, (६) जल।

(१) **कार्बोहाइड्रेट**—शरीर को गर्मी व शक्ति प्रदान करते हैं। यह आलू, केले, गन्ना, गुड़, शक्कर, शहद, गेहूँ, बाजरा इत्यादि में अधिक मात्रा में पाये जाते हैं।

(२) **वसा** (Fat)—यह भी शरीर को शक्ति प्रदान करते हैं, व शरीर को गठित व सुन्दर बनाने में मदद करते हैं। यह तेल, घी, मक्खन, मूँगफली, नारियल इत्यादि में अधिक मात्रा में पाया जाता है।

(३) **प्रोटीन**—यह भी शरीर को शक्ति प्रदान करते हैं व शरीर में रोग निवारण शक्ति पैदा करते हैं। यह माँस, मछली, अण्डा सभी प्रकार की दालें सोयाबीन, मूँगफली इत्यादि में पाये जाते हैं।

(४) **खनिज लवण**—यह शरीर के निर्माण में व वृद्धि में मदद करते हैं। ये हड्डियाँ व दाँतों को मजबूती प्रदान करते हैं। जैसे केल्सियम, पोटेशियम, फास्फोरस इत्यादि। ये पदार्थ निम्नलिखित पदार्थों में पाये जाते हैं जैसे—दूध, पनीर, मक्खन, हरे पत्ते वाली सब्जियाँ, जड़वाली सब्जियाँ, माँस, मछली, अंडा, गेहूँ, चावल इत्यादि।

(५) **विटामिन ए**—यह निरोधक शक्ति देता है। यह नेत्र व त्वचा को स्वस्थ रखने में सहायक होता है। यह निम्न पदार्थों में पाया जाता है जैसे—मक्खन, दूध, अण्डे, मछली का तेल, हरे पत्ते वाली सब्जियाँ, आम, गाजर, टमाटर इत्यादि।

विटामिन बी—यह भूख बनाये रखने में सहायक होता है व पाचन क्रिया में सहायक होता है। यह नाड़ी मंडल को सुचारु रूप से चलाने के लिए अति आवश्यक है। यह निम्न पदार्थों में पाया जाता है। गेहूँ, हाथ का कूटा चावल, मछली, अण्डे, छिलके सहित दाल, मूंगफली, अंकुरित चने, मूंग, मोठ।

विटामिन सी—यह दाँतों को स्वस्थ रखता है व घाव भरने में सहायता करता है व रोग निरोधक शक्ति प्रदान करता है। यह खट्टे व रसीले फलों से प्राप्त होता है जैसे—आँवला, निम्बू, सन्तरा, अमरूद, टमाटर इत्यादि।

विटामिन डी—यह शरीर की वृद्धि एवं दाँतों एवं हड्डियों के विकास के लिए आवश्यक है। यह निम्न पदार्थों में पाया जाता है, जैसे—पनीर, मक्खन, मछली, सूर्य की किरणें इत्यादि।

विटामिन ई—यह सन्तानोत्पादन शक्ति प्रदान करता है। यह अंकुरित गेहूँ, चने, मूंग, दूध, अण्डा, सूखे फलों में पाया जाता है।

विटामिन के (K)—यह रक्त का थक्का जमाने में मदद करता है। यह गोभी, पालक, सोयाबिन फल व अनाज इत्यादि में पाया जाता है।

(६) **जल**—जल मनुष्य को जीने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। शरीर ५५ से ७०% जल से बना होता है। जल पाचन क्रिया में मदद करता है व विसर्जन में भी मदद करता है।

जल सभी तरल वस्तुओं द्वारा प्राप्त होता है, जैसे—दूध, फलों का रस, जल इत्यादि।

भोजन—भोजन को ३ भागों में बाँटा जाता है :

(१) **गर्मी व शक्ति प्रदान करने वाले पदार्थ**—वे भोजन पदार्थ जिनमें कार्बोहाइड्रेट व वसा (Fat) अधिक मात्रा में पाया जाता है। उनसे शरीर को गर्मी व शक्ति प्राप्त होती है। जैसे—अनाज, जड़दार सब्जियाँ, दूध, अण्डा इत्यादि।

(२) **शरीर विकास में मदद करने वाले पदार्थ**—वे वस्तुएँ जिनमें प्रोटीन अधिक मात्रा में पाया जाता है शरीर के विकास, वृद्धि में मदद करते हैं, जैसे—दूध, दालें, माँस, मछली, सोयाबीन, मूँगफली इत्यादि।

(३) **सुरक्षित भोजन पदार्थ**—वे पदार्थ जिनमें विटामिन्स व खनिज लवण अधिक मात्रा में पाये जाते हैं, जैसे—दूध, माँस, अण्डा, लीवर, हरी सब्जियाँ इत्यादि।

भारतीय भोजन के अनुसार वर्गीकरण :

(१) **अनाज**—भारतीयों का मुख्य भोजन अनाज होता है जिनमें मुख्य रूप से गेहूँ, बाजरा, मक्का, चावल इत्यादि हैं। इनसे ७०-८०% केलोरी प्राप्त होती है। इनमें विटामिन ए. सी. व डी. की कमी रहती है। इनमें कुछ मात्रा खनिज लवण की रहती है व काफी मात्रा विटामिन बी की रहती है।

(२) **दालें**—इनमें प्रोटीन होता है। शाकाहारी व्यक्तियों के लिए यही प्रोटीन का स्रोत है। इनका प्रयोग छिलके सहित करना चाहिए। जिससे विटामिन बी काफी मात्रा में मिल जाता है। यदि अंकुरित की हुई दालें प्रयोग में लाई जावें तो अत्यन्त उपयोगी होती है। क्योंकि इनमें विटामिन सी. व ई. भी काफी मात्रा में होता है।

(३) **ताजी सब्जियाँ**—विटामिन ए, बी व केल्शियम का अच्छा स्रोत्र है। इनके लेने से कब्जी दूर होती है।

(४) **जड़दार सब्जियाँ**—इनमें कार्बोहाइड्रेट काफी होता है। गाजर में विटामिन ए. होता है व ये सस्ती भी मिलती हैं।

(५) **फल**—इनमें विटामिन सी. व खनिज लवण काफी मात्रा में होता है। आँवले से विटामिन सी. आम से विटामिन ए. प्राप्त होता है।

(६) **दूध**—दूध पूर्ण भोजन है अर्थात दूध में भोजन के सभी तत्व मौजूद रहते हैं। दूध गाय, भैंस, बकरी से प्राप्त होता है। माँ का दूध अति उत्तम होता है।

(७) **शक्कर गुड़**—इनमें कार्बोहाइड्रेट रहता है। यह भोजन को स्वादिष्ट व रुचिकर बनाने में मदद करता है।

(८) **तेल व घी**—इनमें मुख्य रूप से वसा रहता है। यह शरीर को गठीला व सुन्दर बनाने में मदद करता है।

(९) **मांस एवं मछली**—इनमें प्रोटीन अधिक मात्रा में रहता है।

(१०) **अण्डा**—इसमें सभी पदार्थ रहते हैं। इसका प्रोटीन उत्तम रहता है। इसमें विटामिन ए. बी. व डी. भी पाये जाते हैं।

(११) **मसाले**—ये भोजन को स्वादिष्ट बनाने के लिए उपयोग में लाये जाते हैं। मनुष्य को संतुलित आहार करना चाहिए। उसके भोजन में सभी तत्व मौजूद रहना चाहिए।

एक व्यक्ति को प्रतिदिन करीब ३००० केलोरी की आवश्यकता होती है व स्त्री को करीब २३०० केलोरी की आवश्यकता होती है। वह केलोरी उसे भोजन द्वारा प्राप्त होती है।

संतुलित आहार

अनाज	३०० ग्राम
दालें	८५ ग्राम
दूध	३०० ग्राम
हरी पत्ती की सब्जियाँ	११५ ग्राम
फल	१०० ग्राम
अन्य सब्जियाँ	१०० ग्राम
घी, तेल, मक्खन	६० ग्राम
चीनी और गुड़	६० ग्राम

केलोरी—एक किलोग्राम पानी को ०°C से १°C तक गरम करने पर जितनी गर्मी की आवश्यकता होती है उसे केलोरी कहते हैं।

कुपोषण—भोजन के तत्वों की कमी से या अधिकता से जो रोग होते हैं उन्हें कुपोषण कहते हैं।

मोटापा—यह एक ऐसी अवस्था है जिसमें वसा शरीर में अधिक मात्रा में जमा हो जाती है। यह अवस्था अधिक खाने के कारण होती है।

कारण :

(१) वंशानुगत (२) अधिक भोजन (३) भावनात्मक कारण।

लक्षण :

(१) पूरा शरीर मोटा हो जाता है। (२) पेट बड़ा हो जाता है व लटक जाता है। पाद ज्यादा आता है क्योंकि रोगी कार्बोहाइड्रेट अधिक मात्रा में लेता है अतः छोटी आँत में कार्बोहाइड्रेट का फरमेन्टेसन भी अधिक मात्रा में होता है। अतः बदबूदार गैस अधिक बनती है।

इलाज :

(१) भोजन की मात्रा कम करनी चाहिए। (२) कार्बोहाइड्रेट व वसा युक्त पदार्थ कम मात्रा में खाना चाहिए जैसे—चावल, आलू, घी, तेल इत्यादि

प्रोटीन कुपोषण—यह भोजन में प्रोटीन की कमी के कारण होता है। इसे क्वासिरकर रोग कहते हैं।

क्वासिरकर—साधारणतया यह बच्चों में पाया जाता है। अधिकतर यह बोदरी माता, कुकर खाँसी इत्यादि संक्रामक रोग होने के पश्चात होता है। क्योंकि इनके बाद बच्चों की भूख कम हो जाती है व प्रोटीन पूरी मात्रा में शरीर में नहीं जा पाता।

लक्षण :

(१) बच्चा खेलने में रुचि नहीं लेता है। (२) त्वचा ठण्डी रहती है व वजन कम हो जाता है। (३) शरीर का विकास रुक जाता है। (४) शरीर पर सूजन आ जाती है। (५) पतले दस्त लगने लगते हैं। (६) बाल कम हो जाते हैं, व भूरे हो जात हैं। (७) त्वचा में छाले हो जाते हैं। (८) गाल अन्दर धंस जाते हैं। (९) यकृत (Liver) बढ़ जाता है। (१०) खाँसी-सर्दी के आक्रमण बार-बार होते हैं। (११) टी. बी. का आक्रमण हो सकता है। क्योंकि बच्चे की प्रतिरोधात्मक शक्ति कम हो जाती है। (१२) खून की कमी हो जाती है अतः आँखें व नाखून सफेद हो जाते हैं।

इलाज :

(१) ३ से ६ ग्राम प्रोटीन प्रति किलोग्राम शरीर के वजन के अनुसार प्रतिदिन देना चाहिए। अगर बच्चा नहीं ले तो नली के द्वारा उसके अमाशय में पहुँचाइये।

(२) क्रीम निकला हुआ दूध बच्चों को पिलाना चाहिए।

(३) अगर हालत जटिल हो तो बच्चों को खून या प्लाजमा नस द्वारा देना चाहिए।

(४) विटामिन ए. बी. सी. और डी. देना चाहिए। इसके लिए बाजार में सायरप आते हैं जैसे—एबडेक, इनक्रिमिन इत्यादि। नमक बन्द नहीं करना चाहिए नहीं तो बच्चा और कमजोर होगा।

★

४५. बेरीबेरी

(BERI BERI)

यह रोग भोजन में विटामिन बी १ (थायमिन) की कमी के कारण होता है। यह रोग अधिकतर उन लोगों को होता है जो पालिश किये हुए चावल का उपयोग करते हैं। क्योंकि चावल में से विटामिन बी १ नष्ट हो जाता है।

लक्षण :

(१) रोगी थकान महसूस करता है व पैरों में भारीपन व कमजोरी महसूस करता है अतः उसे चलने में तकलीफ होती है। (२) पैरों पर व मुँह पर सूजन आ जाती है। (३) छाती में दर्द होता है व दिल की धड़कन बढ़ जाती है। (४) नाड़ी तेज चलने लगती है। (५) पैरों में सुई जैसी चुभती है व झनझनी आती है। (६) कभी-कभी घुटने के नीचे सामने की तरफ की त्वचा सुन्न हो जाती है।

इलाज :

(१) विटामिन बी १ की ५० मि. ग्रा. की १ गोली रोज देना चाहिए या इन्जैक्शन लगाना चाहिए। (२) भोजन में अनाज, हाथ का कुटा चावल, मूंगफली, अण्डा आदि ज्यादा उपयोग में लाना चाहिए।

★

४६. पेलाग्रा
(PELLAGRA)

सामान्यतः यह रोग भोजन में निकोटेनिक एसिड की कमी के कारण होता है। यह रोग मक्का खाने वाले व्यक्तियों को होता है क्योंकि मक्का में निकोटेनिक एसिड नहीं होता।

लक्षण :

(१) शरीर के खुले रहने वाले अंगों की त्वचा लाल हो जाती है, व सूजन आ जाती है व फट जाती है। (२) खुजली चलती है व जलन होती है।

पाचन संस्थान—(१) कभी-कभी दस्त लग जाते है। (२) घबराहट होती है। (३) पेट के ऊपर व बीच में जलन होती है। (४) मुँह में छाले हो जाते हैं। (५) जबान लाल व मोटी हो जाती है व जलन करती है।

नाड़ी संस्थान—(१) कमजोरी आती है। (२) आदमी चिड़चिड़ा हो जाता है। (३) काम में मन नहीं लगता है व स्मरणशक्ति कमजोर हो जाती है। आदमी की पागल जैसी हालत हो जाती है।

इलाज :

(१) निकोटेनिक एसिड की १०० मि. ग्रा. की गोली हर चार घण्टे बाद देना चाहिए।

(२) इस्ट (Yeast) की १ गोली सुबह व १ गोली शाम को देना चाहिए।

(३) राइबोफ्लेविन (Riboflavin) की १ गोली सुबह व १ गोली शाम को देना चाहिए।

★

४७. स्कर्वी
(SCURVY)

यह रोग विटामिन सी. की कमी के कारण होता है। यह विटामिन नीबू, फलों के रस, टमाटर, हरे पत्ते की सब्जियों से प्राप्त होता है। ५०-७५ मि. ग्रा. विटामिन सी. प्रत्येक दिन के भोजन में आवश्यक है। दूध में यह विटामिन नहीं पाया जाता अतः जो बच्चे सिर्फ दूध लेते हैं उनमें ज्यादातर यह रोग हो जाता है।

यह रोग ३ माह तक के बच्चे को नहीं होता। यह रोग उन बच्चों को अधिक होता है जो गाय, बकरी या भैंस का दूध उपयोग करते हैं। जो बच्चे माता का दूध पीते हैं उन्हें यह रोग नहीं होता है क्योंकि माँ के दूध में विटामिन सी होता है।

लक्षण :

(१) शारीरिक विकास व वृद्धि में रुकावट होती है। (२) रोगी खेल में रुचि नहीं लेता व चिड़चिड़ा हो जाता है तथा भूख कम हो जाती है। (३) आँखें व नाखून सफेद हो जाते हैं। (४) शरीर में दर्द होता है। (५) मसूड़ों में सूजन आ जाती है व खून निकलने लगता है। (६) जोड़ों में दर्द होता है। (७) मुँह में बदबू आती है। (८) घाव अच्छे होने से समय लगता है।

इलाज :

(१) विटामिन सी. ५०० मि. ग्रा. का इन्जैक्शन प्रथम दिन देना चाहिए।

(२) विटामिन सी. ३००-५०० मि. ग्रा. की गोली प्रतिदिन १० से १५ दिन तक देनी चाहिए।

बाजार के नाम—सेलिन, रिडाक्सन, पेलोनिन, च्यूसी इत्यादि।

बचाव (Prophylaxis) :

(१) ५०-७५ मि. ग्रा. विटामिन सी प्रतिदिन देना चाहिए।

(२) फरसोलेट (Fersolate) की १ गोली रोज देना चाहिए।

(३) भोजन में दूध, मक्खन, अण्डे, माँस, दालें अधिक मात्रा में देना चाहिए (भोजन से करीब ३५०० केलोरी प्रतिदिन मिलना चाहिए।)

★

४८. रिकेट्स

(RICKETS)

यह रोग विटामिन डी. की कमी के कारण होता है। साधारणतया यह रोग बच्चों में पाया जाता है। इसमें हड्डियाँ मुलायम हो जाती हैं व टेढ़ी हो जाती हैं। इस विटामिन की कमी से कैल्सियम व फास्फोरस, खून उचित मात्रा में नहीं सोख पाता है। अतः हड्डियों में कैल्सियम व फास्फोरस की कमी हो जाती है।

रिकेट्स निम्न कारणों से हो सकता है :

१. अगर भोजन में विटामिन डी. की कमी हो। २. अगर बच्चे को बार-बार दस्त की शिकायत हो या आँत विटामिन डी. और कैल्सियम नहीं सोख पाते हों। ३. अगर बच्चे को यकृत (liver) की बीमारी हो। ४. विटामिन डी. सूर्य की किरणों से भी प्राप्त होता है अतः अगर बादल इत्यादि हों तो यह विटामिन प्राप्त नहीं होता है। अगर परदे इत्यादि की प्रथा के कारण माता बाहर नहीं जा पाती अतः बच्चा भी बाहर नहीं आ पाता व सूर्य की रोशनी नहीं प्राप्त होती है। ५. अगर गुर्दे (किडनी)

में कोई रोग है तो कैल्सियम व फास्फोरस पेशाब के रास्ते निकल जाता है अतः खून नहीं सोख पाता है ।

लक्षण :

१. सिर में पसीना अधिक आता है । २. माँसपेशियाँ कमजोर हो जाती हैं व लटक जाती हैं । ३. बच्चा चिड़चिड़ा हो जाता है । ४. बच्चा बैठना, खड़ा होना, चलना, देर से शुरू करता है उसकी वृद्धि व विकास धीरे-धीरे होता है । ५. खाँसी सर्दी का आक्रमण बार-बार होता है । ६. उल्टी व दस्त की बीमारी बार-बार होती है । ७. दाँत देर से निकलते हैं । ८. सिर के गड्ढे देर से बन्द होते हैं व सिर के आस-पास की हड्डियाँ अन्दर को हो जाती हैं । ९. जब रोग बढ़ जाता है तो शरीर की लम्बाई नहीं बढ़ती है व रोगी ठिगना रहता है । १०. सिर बड़ा दिखाई देता है, कूबड़ निकल आती है । ११. हाथों व पैरों की हड्डियाँ बाहर की ओर मुड़ी दिखाई देती है । १२. पुट्ठे की हड्डी मुड़ी दिखाई देती है । १३. छाती के बीच में एक गड्ढा सा दिखाई देता है । १४. यकृत (लीवर) व तिल्ली (स्पलिन) बढ़ जाते हैं । १५. खून की कमी हो जाती है अतः नाखून व आँखें सफेद हो जाती हैं ।

इलाज :

१. ३ से ६ लाख यूनिट मेसिव विटामिन डी ५ दिन के अन्तर से ३ बार देना चाहिए ।

२. साथ ही ८०० से १००० यूनिट विटामिन डी रोजाना देना चाहिए ।

३. कैल्शियम की गोली १-१ दिन में दो बार देना चाहिए ।

●

४९. खुजली (स्केबिस)
(SCABIES)

यह एक सामान्य चर्म रोग है जो देहातों में अधिकतर पाया जाता है । यह रोग स्त्री परजीवी (Ascaris scabies) नामक कीटाणु के द्वारा होता है । यह पर-जीवी जहाँ भी अण्डे देती है उसी स्थान पर चमड़ी में प्रवेश करती है और एक विशेष प्रकार का दाना बना देती है ।

लक्षण :

१. रोगी के पूरे शरीर में खुजली चलती है । खुजली रात में अधिक चलती है । २. खुजली अंगुली के पीछे दो अंगुलियों के बीच की झिल्ली पर, छोटी अंगुली की तरफ का हाथ, कलाई के ऊपर, कोनी के नीचे, खांक, शिश्न का आगे का भाग निपल (Nipple) पर अधिक चलती हैं । ३. रोगी के शरीर में जहाँ खुजली चलती है वहाँ छोटे-छोटे दाने हो जाते हैं जिसे खुजलाने से स्क्रेचेस (Scraches)

पड़ जाते हैं। ४. यह छूत की बीमारी है अतः यह घर के सभी सदस्यों को हो सकती है।

इलाज :

१. **बेन्झाइल बेन्जोएट** (Benzyl Benzoate) **का २५% घोल**—रोगी को कहिये की वह साबुन व पानी से अच्छी तरह नहाये व गीले बदन पर २५% बेन्झाइल बेन्जोएट का घोल गरदन से पैरों की अंगुलियों तक ब्रश की सहायता से लगावे व बदन सूखने दे। बदन सूखने के पश्चात् पानी में उबालकर सुखाए हुए कपड़े पहन ले व दवा को शरीर पर २४ से ४८ घण्टे तक लगी रहने दे।

२. **गामा बेन्झिन हेक्साक्लोराइड** (Gamma benzene Hexachloride)—यह मल्हम के रूप में उपयोग किया जाता है। दो बार मल्हम पूरे शरीर पर लगाने से रोगी ठीक हो जाता है।

३. **सल्फर मल्हम** (Sulpher Ointment)—इसका भी उपयोग किया जाता है।

४. अगर मवाद आता हो तो सल्फाडाइजिन की गोली दें या टेट्रासाइक्लिन के २५० मि. ग्रा. केप्सूल ६-६ घण्टे से दें या १०० मि. ग्राम का इन्जैक्शन लगावें।

रोग का फैलना :

१. यह बीमारी रोगग्रस्त व्यक्ति के सम्पर्क में आने से होती है। २. रोग के कीटाणु रोगी के कपड़े बिस्तर इत्यादि पर लग जाते हैं।

रोग से बचाव :

१. रोगी व्यक्ति का इलाज जल्द से जल्द करवाइये। २. रोगी व्यक्ति से दूर रहें। ३. रोगी के कपड़े इत्यादि पानी में उबालें। ४. रोगी के बिस्तर इत्यादि धूप में रखना चाहिए।

★

५०. दाद

(RING-WORM)

यह रोग एक प्रकार की फँफूद के कारण होता है। इसमें लाल-लाल चकत्ते पड़ जाते हैं। चकत्ते छोटे से दाने के आकार से लेकर हथेली के आकार तक हो सकते हैं। एक चकता भी हो सकता है या एक से ज्यादा भी हो सकते हैं।

लक्षण :

१. खुजली चलती है। २. कभी-कभी मवाद भी पड़ जाता है। मवाद अन्य संक्रमण के कारण होता है क्योंकि खुजलाने से नाखूनों द्वारा स्क्रेचेस (Scraches) हो जाते हैं व कीटाणुओं के द्वारा मवाद हो जाता है।

इलाज :

१. सेलिसिलिक एमिड मरहम ६% का लगावें। २. ग्रीसोफलविन (Greso-

CCM H 330. 03541

fulvin) की ५०० मि. ग्रा. गोली रोजाना ३ से ४ सप्ताह तक देवें। (३) अगर मवाद हो तो सल्फाडायजन की २ गोली दिन में ३ बार देना चाहिए या टेट्रासाइक्लिन के २५० मि. ग्रा. के ४ केप्सूल दिन में चार बार देना चाहिए।

★

५१· धोबी की खुजली
(TINEA CRURIS)

यह रोग प्रायः धोबियों में पाया जाता है। अतः इसे धोबी की खुजली कहते हैं। यह रोग भी फँफूद के कारण होता है। यह रोग जांघों में अन्दर की तरफ से पोते तक, और खॉक में होता है। इसमें बारीक-बारीक गुलाबी या लाल फुन्सियाँ हो जाती हैं जो गोल घेरे में होती हैं। इसमें रोगी को बहुत खुजली चलती है।

इलाज :

१. सेलिसिलिक एसिड मल्हम ६% बेन्जोइक एसिड मल्हम।

२. ग्रिसोफल्वीन की ५०० मि. ग्राम की गोली ३ से ४ सप्ताह तक देना चाहिए।

★

५२. सिर की दाद
(RING-WORM OF SCALP)

यह रोग एक फँफूद के कारण होता है इसमें पहले एक या एक से अधिक गोल या अण्डे के आकार के चकत्ते सिर में हो जाते हैं। ये चकत्ते फैलते जाते हैं और पूरे सिर में रोग हो जाता है।

इलाज :

१. बालों को क्लिप करना चाहिए।

२. साबुन व पानी से सिर को रोजाना धोना चाहिए।

३. सिर में सुबह व शाम १० अमोयेटेड मरक्यूरी व ५% सेलिसिलिक एसिड मल्हम मलना चाहिये।

४. ग्रीसोफल्वीन की ५०० मि. ग्रा. की गोली ३ से ४ सप्ताह तक लेना चाहिये।

★

५३. भूख व खाने की इच्छा व खाने की आदत
(HUNGER AND APPETITE AND FOOD HABIT)

साधारणतया सभी जानवर व मनुष्य खाना खाते हैं व पाखाने के रूप में शरीर से बाहर निकालते हैं। वे जितना कार्य करते हैं वह शक्ति उन्हें खाने में मिल जाती

है। उनका वजन एक सा बना रहता है परन्तु कुछ का वजन बढ़ भी जाता है व कुछ का कम हो जाता है। शक्ति (Energy) की जरूरत इस विधि के लिए जिम्मेदार है। अगर मनुष्य को शक्ति (Energy) की अधिक आवश्यकता होगी तो वह अधिक भोजन करेगा।

(अ) भूख :

मनुष्य को जब भूख लगती है तो :

१. पेट के ऊपर व बीच के भाग पर वह अच्छे न लगने वाले सेन्सेसन (Unpleasent sensation) महसूस करता है।

२. वह कमजोरी महसूस करता है।

३. वह चिड़चिड़ा हो जाता है।

४. कभी-कभी सिर दर्द होता है व घबराहट होती है।

अच्छे न लगने वाले सेन्सेसन एक सरीखे नहीं आते हैं बल्कि रुक-रुक कर आते हैं। यह अमाशय व ड्यूडिनियम (छोटी आंत का पहला भाग) के सिकुड़ने के कारण होता है इसे भूख की सिकुड़न (Hunger contraction) कहते हैं। यह सिकुड़न कुछ समय के लिए होती है फिर अमाशय आराम की स्थिति में आ जाता है जिसे आम भाषा में कहा जाता है कि **भूख मर गई है।**

कुछ बीमारियों में यह सिकुड़न कम हो जाती है जैसे अमाशय का केन्सर अतः मरीज को भोजन की इच्छा नहीं होती।

(ब) खाने की इच्छा (Appetite) :

साधारणतया मनुष्य को जब भूख लगती है तो वह खाने की इच्छा प्रकट करता है परन्तु कभी-कभी मनुष्य को भूख नहीं होती है या उसने भोजन कर लिया है परन्तु उसके पसन्द की वस्तु अगर उसके सामने आये या पसन्द की वस्तु की महक उसके नाक में जाये तो पेट भरा होने के पश्चात भी वह उस वस्तु को खाने की इच्छा प्रगट करेगा व उस वस्तु को बड़े स्वाद के साथ खायेगा। अतः खाने की इच्छा (Appetite) का सम्बन्ध सूंघने की शक्ति से होता है।

साधारणतया मोटे लोगों को भूख कम करने के लिए एम्फेटामिन (Amphatamine) की गोलियाँ देते हैं। उनका असर अमाशय पर नहीं होता है परन्तु मनुष्य की सूँघने की शक्ति पर होता है और भूख कम हो जाती है। इसी प्रकार यदि बेस ऑफ स्कल (Base of Scull) का फ्रेक्चर होने पर सूंघने वाली नस कट जाती है और मरीज को खाने से रुचि कम हो जाती है।

(स) खाने की आदत (Food habit) :

खाने की आदत अलग-अलग समुदाय में अलग-अलग होती है और साधारणतया बदलती नहीं है। अगर परिस्थितिवश मनुष्य अलग समुदाय में चला जाता है तो उसे वहाँ अच्छा नहीं लगता व खाने में उसकी रुचि कम हो जाती है व वह हमेशा भूख महसूस करता है। परन्तु फिर वही वस्तु मिलने पर वह अपने आपको अच्छा महसूस करने लगता है।

५४. घबराहट, जी घबराना
(NAUSEA)

साधारणतया इसे घबराहट आना या जी घबराना कहते हैं। इसमें मन को अच्छे न लगने वाले लक्षण (Unpleasent sensation) होते हैं। इन्हें लिखना या शब्दों में उतारना सम्भव नहीं है। यह अच्छे न लगने वाले लक्षण (unpleasent sensation) पेट के बीच व ऊपर वाले भाग में महसूस होते हैं और उल्टी हो जाने के बाद समाप्त हो जाते हैं।

यह रुक-रुक कर लहरों की तरह आते हैं। इनके साथ ही मुँह में थूक ज्यादा आता है व पसीना आता है। यह अमाशय की माँसपेशियों का कार्य न करने की रुचि के कारण होता है। जब अधिक चिकनाई वाले पदार्थ खाने में लिये जाते हैं और ड्यूडिनियम (आँत का पहला भाग) में पहुँचते हैं तो इनके कारण ड्यूडिनियम (आँत का पहला हिस्सा) की माँसपेशियाँ तेजी से कार्य करने लगती हैं अतः अमाशय की माँसपेशियाँ कार्य बन्द कर देती हैं और घबराहट होती है।

●

५५. उल्टी आना
(VOMATING)

साधारणतया इसे उल्टी होना या कै होना कहा जाता है। यह पेट की माँसपेशियों की सिकुड़न के कारण होती है। इसके पहले घबराहट होती है व मुंह में काफी पानी आता है। उल्टी कई कारणों से होती है, जैसे—पेप्टिक अल्सर, अमाशय व ड्यूडिनियम का छाला पेरीटोनाइटिस, (पेरिटोनियम में सूजन) अपेन्डिसाइटिस, कोलीसिस्टाइटिस (पित्ताशय में सूजन), बड़ी आँत के रोग में साधारणतया उल्टी नहीं होती है।

पाचन संस्थान के बाहर के रोगों के कारण भी उल्टियाँ होती हैं, जैसे—माइग्रेन आंधाशीशी, मेनिनजाइटिस, यूरिमिया इत्यादि।

जब उल्टी पाचन संस्थान के रोग के कारण होती है तो मरीज को पहले घबराहट होती है तत्पश्चात उल्टी होती है। पाचन संस्थान के बाहर की बीमारी में उल्टी अचानक होती है। सुबह के समय उल्टी गर्भावस्था में होती हैं। यह मानसिक तनाव के कारण भी होती हैं। अमाशय के नीचे के भाग में अगर रुकावट हो तो उल्टी होने के बाद पेट दर्द में आराम महसूस होता है।

इलाज :

१. स्टेमेटिल या एसकेझिन या सिक्वील की गोली या इन्जैक्शन देना चाहिए।
२. उल्टी का कारण ज्ञात कीजिये व इलाज कीजिये।

●

५६. गैस
(FLATULENCE)

साधारणतया इसे अफरा आना या गैसट्रबल भी कहा जाता है। गैस आँत में दो प्रकार से पहुँचती है :

१. **निगलने से**—मनुष्य के भोजन के साथ कुछ गैस भी अमाशय में प्रवेश कर जाती है। परन्तु अमाशय के सिकुड़ने पर गैस वापिस भोजन नली से बाहर आ जाती है। परन्तु अगर तरल पदार्थ या पानी इत्यादि होता है तो गैस छोटी आँत में प्रवेश कर जाती है। लेटे हुए मनुष्य को गैस छोटी आँत में जाने की सम्भावना अधिक रहती है। बड़ी आँत में से गैस सरलता से बाहर निकल जाती है। छोटी आँत में कार्बन-डाइ-ऑक्साइड गैस करीब-करीब ३ से ४ लिटर तक बनती है। यह गैस छोटी आँत के ऊपरी हिस्से में (ड्यूडिनियम) अम्लीय अमाशय का रस (Acid gastric Juice) व क्षारीय पेनक्रियाज के रस (Alkaline Pancreatic Secretior) की क्रिया द्वारा बनती हैं व कार्बोहाइड्रेट व प्रोटीन के द्वारा भी बदबूदार गैस बनती है। ये दोनों प्रकार की गैस बड़ी आँत में पाई जाती हैं। यहाँ ये या तो सोख ली जाती हैं या पाद द्वारा बाहर निकाल दी जाती हैं।

लक्षण :

१. पेट फूल जाता है। (२) पेट में दर्द होता है।

इलाज :

चारक्रोल पावडर।

*

५७. कब्जियत
(CONSTIPATION)

जब किसी को दस्त पूरी तरह से नहीं आता है या दो, तीन दिन में दस्त आता है उसे कब्जियत कहते हैं।

कारण :

(१) अगर बड़ी आँत में कोई रुकावट (Obstraction) हो।

(२) अगर भोजन की मात्रा सामान्य से कम ली हो तो बल्क (bulk) बराबर नहीं बनेगा व बड़ी आँत को दीवारों को बराबर स्टीमुलेशन (Stimulation) नहीं मिलेगा।

(३) भूखा रहने के कारण कुछ लोगों की आदत गोलियाँ या एनिमा लेने की रहती है। अतः बड़ी आँत कार्य करना बन्द कर देती हैं या कम कर देती हैं। अतः जब तक वे दस्त लगने वाली गोलियाँ नहीं खायेगे उन्हें दस्त नहीं होगा।

(४) अगर शरीर में पानी की कमी हो तो भी कब्जियत होती है।
(५) अगर बड़ी आँत में केन्सर हो।
(६) अगर व्यक्ति को भय हो या चिन्ता हो।
(७) अगर रोजाना पाखाना जाने की आदत नहीं हो। प्रायः यह देखा गया है कि मनुष्य रोजाना सुबह पाखाना जाता है परन्तु कुछ लोग कार्य की वजह से या और किसी वजह से उनका पाखाना जाने का वक्त निश्चित नहीं होता है उन्हें भी कब्जियत रहने लगती है।
(८) हरी-साग सब्जी कम खाने के कारण भी कब्जियत रहती है।
(९) जिनके पेट की माँसपेशियाँ कमजोर होती हैं।

लक्षण :

(१) पेट में दर्द होता है। (२) कभी-कभी सिर दर्द होता है।

इलाज :

(१) स्वास्थ्य शिक्षा दीजिये।
(२) सारी दवाइयाँ बन्द कर दीजिये।
(३) लिक्विड पेराफिन (Liquid paraffin) दीजिये।
(४) हरी साग-सब्जी ज्यादा खाने की सलाह दीजिये।
(५) मेगनेशियम हाइड्रो आक्साइड की गोलियाँ दीजिये।

५८· जलना व झुलसना
(BURN & SCALD)

जलना (Burn)—गरम वस्तुएँ जैसे—जली लकड़ी, गरम लोहा, बिजली, तेजाब इत्यादि के लगने से जब शरीर पर घाव हो जाता है तो उसे जलना कहते हैं।

कारण :

(१) सूखी गरमी जैसे आग, गरम धातु के टुकड़े इत्यादि।
(२) बिजली के करंट से व बादलों से बिजली गिरने से।
(३) अम्ल व क्षार से।

झुलसना (Scald)—भाप, गरम तेल इत्यादि से जो घाव होते हैं उसे झुलसना कहते हैं। इसमें दर्द अधिक होता है। झुलसने से शरीर की कोशिकाओं का नुकसान कम होता है क्योंकि तरल पदार्थ शरीर पर बह जाते हैं व साधारणतया ऊपर की त्वचा ही झुलस पाती है व तरल पदार्थ वातावरण के कारण ठण्डे भी जल्दी हो जाते हैं परन्तु जो तरल पदार्थ ज्यादा तापमान पर गरम होते हैं जैसे—तेल इत्यादि उनसे गहरा घाव होता है व पिघली हुई धातु से घाव बहुत अधिक गहरा होता है।

अम्ल व क्षार से जलने पर सिर्फ ऊपर की सतह में ही घाव होते हैं और ये घाव अम्ल व क्षार के Concentration पर निर्भर करते हैं। अम्ल से यदि घाव हो और यदि क्षार लगा दिया जावे तो घाव कम गहरे होते हैं।

जलने (Burn) का वर्गीकरण :

इसका वर्गीकरण कितनी सतह जली है, के आधार पर किया गया है :

प्रथम डिग्री— इसमें सिर्फ त्वचा की ऊपरी सतह (Epidermis) पर ही असर होता है। इसमें त्वचा लाल हो जाती है व जलन होती है। यह आग के क्षण भर के सम्पर्क द्वारा या गरम तरल पदार्थ के द्वारा होती है।

द्वितीय डिग्री—इसमें त्वचा की ऊपरी सतह (Epithelium) पर असर होता है या तो आग के द्वारा या गरम तरल पदार्थ उबलने वाले तापमान पर या अम्ल के द्वारा होती है। इसमें छाले हो जाते हैं व त्वचा काली हो जाती है।

तीसरी डिग्री—इसमें त्वचा का कुछ भाग व त्वचा की ऊपरी सतह जल जाती है व नाड़ी के सिरे (Nerve end) भी जल जाते हैं अतः मरीज को बहुत पीड़ा होती है। घाव के अच्छा होने पर निशान रह जाते हैं। परन्तु सिकुड़न (Contracture) नहीं रहती है।

चौथी डिग्री—इसमें त्वचा जल जाती है। यह जलना (Burn) दर्द रहित होता है। क्योंकि नाड़ी के सिरे (Nerve end) पूरी तरह से जल जाते हैं। मरीज के घाव अच्छे हो जाने पर सिकुड़न (Contracture) आ जाती है।

पाँचवीं डिग्री—इसमें फेसिया (Fascia) व माँसपेशियाँ जल जाती है। मरीज के घाव अच्छा हो जाने पर काफी सिकुड़न आती है।

छठी डिग्री—इसमें हड्डी इत्यादि सभी भाग जल जाते हैं।

जब कोई मरीज जलने को आवे तो निम्नलिखित फार्मूले से जलने का प्रतिशत मालूम करना चाहिए :

(१) मुँह, खोपड़ी, गला	९%
(२) बाँया हाथ	९%
(३) दाहिना हाथ	९%
(४) दाहिने पैर का सामने का भाग	९%
(५) बायें पैर के सामने का भाग	९%
(६) दाहिने पैर के पीछे का भाग	९%
(७) बायें पैर के पीछे का भाग	९%
(८) छाती	९%
(९) छाती के पीछे का भाग	९%
(१०) पेट	९%
(११) पेट के पीछे का भाग	९%
(१२) जन इन्द्रियों का भाग	१%
	१००%

२० प्रतिशत से ज्यादा जलने की स्थिति में व्यक्ति सदमे (Shock) की हालत में चला जाता है व ५० प्रतिशत से अधिक जलने पर व्यक्ति के बचने के अवसर बहुत कम रहते हैं।

छाती, पेट व गुप्तांगों के जलने पर खतरा अधिक रहता है।

●

५९. डूबना (Drowning)

जब कोई व्यक्ति पानी के अन्दर या कोई तरल पदार्थ में पूरा या उसका सिर डूब जाता है व वह श्वांस नहीं ले पाता है तो उसे डूबना कहते हैं।

जब कोई व्यक्ति अचानक पानी में गिर जाता है तो पानी के अन्दर जाने पर वह कुछ ही क्षणों में सतह पर आ जाता है क्योंकि अपनी जीवन रक्षा के लिए वह हाथ पैर चलाना चालू कर देता है। अगर वह तैरना नहीं जानता है तो रक्षा के लिए चिल्लाता है तब उसका मुख पानी की सतह पर होता है तो पानी मुँह के द्वारा फेफड़ों में व अमाशय में चला जाता है। पानी फेफड़ों में जाने से उसे खाँसी का ठसका आता है व फेफड़ों की हवा बाहर निकल जाती है व उसका स्थान पानी ले लेता है। इस तरह उसका शरीर भारी हो जाता है और वह फिर डूब जाता है। वह फिर से सतह पर हाथ पैर हिलाने के कारण आ जाता है व अधिक पानी फेफड़ों में चला जाता है वह फिर डूब जाता है। इस प्रकार उसके फेफड़ों की पूरी हवा निकल जाती है व उसका स्थान पानी ले लेता है और वह बेहोश हो जाता है व तले में चला जाता है व उसकी मृत्यु दम घुटने से हो जाती है।

लक्षण :

डूबते वक्त व्यक्ति को अपनी भूतकाल की वे बातें याद आती हैं जिन्हें वह भूल चुका होता है।

इलाज :

(१) पेट का पानी निकालना चाहिए।

(२) कृत्रिम श्वांस देना चाहिए।

●

६०. बिजली का झटका लगना

बिजली का झटका जिन तारों में करण्ट बह रहा हो, को छूने से लगता है। यह तीन बातों पर निर्भर करता है :

(१) करण्ट का स्वभाव, (२) शरीर की क्षमता, (३) करण्ट का समय।

(१) **करण्ट का स्वभाव**—ज्यादा वोल्टेज व ए. सी. करण्ट अधिक खतरनाक होता है। साधारणतया भारत में घरों के उपयोग के लिए २२० वोल्टेज का ए. सी.

करण्ट का उपयोग होता है व मशीनों आदि के लिए ४४० ए. सी. वोल्टेज के करण्ट का उपयोग होता है। ५० वोल्टेज के नीचे के करण्ट से मृत्यु होने की सम्भावना बहुत कम होती है। करण्ट लगते समय अगर व्यक्ति का सम्पर्क पानी से होता है तो वह ज्यादा खतरनाक होता है।

(२) **शरीर की क्षमता**—त्वचा बिजली के करण्ट की कुचालक है अतः जब त्वचा बिल्कुल सूखी हुई होगी तो बिजली का झटका बहुत ही साधारण लगेगा। कड़ी त्वचा में बिजली के करण्ट का कम मात्रा में असर होता है। परन्तु नमीदार, मुलायम पसीने से युक्त त्वचा में बिजली के करण्ट का असर ज्यादा होता है।

(३) **करण्ट का समय**—अगर करण्ट ज्यादा वोल्टेज के करण्ट के कारण लगा है तो माँसपेशियों में एकदम सिकुड़न आवेगी और वह व्यक्ति को फेंक देगा। परन्तु कम वोल्टेज के करण्ट में माँसपेशी में एठन (Spasm) आता है अतः व्यक्ति उस तार को जोर से पकड़ लेता है और करण्ट ज्यादा देर तक शरीर में प्रवेश करता रहता है उससे व्यक्ति की मृत्यु हो सकती है।

लक्षण :

(१) शरीर में झनझनी आती है।

(२) माँसपेशियाँ एकदम सिकुड़ जाती हैं। व्यक्ति दूर फेंक दिया जाता है, अतः उसे सिर में या शरीर के किसी भी हिस्से में चोट आ सकती है।

(३) जहाँ से विद्युत शरीर में प्रवेश करती है व निकलती है वह स्थान जल जाता है क्योंकि त्वचा विद्युत के प्रवेश में बाधा डालती है अतः विद्युत शक्ति ताप शक्ति में परिर्वातित हो जाती है। इसी प्रकार जिस स्थान से विद्युत निकलकर जमीन में या दूसरे तार में जाती है वहाँ भी त्वचा बाधा डालती है अतः वहाँ भी विद्युत शक्ति ताप शक्ति में परिर्वातित हो जाती है।

(४) चेहरा सफेद हो जाता है।

(५) आँखों की पुतली (Pupil) बड़ी हो जाती है।

(६) त्वचा ठण्डी हो जाती है, श्वांस रुक-रुककर आने लगती है।

(७) कभी-कभी बेहोशी आ जाती है व कुछ श्वांस चलती है व मृत्यु हो जाती है।

कभी-कभी करण्ट लगने वाले व्यक्ति में अच्छा होने के पश्चात कुछ दिनों बाद निम्न लक्षण पाये जा सकते हैं :

(१) सिर दर्द होता है व व्यक्ति याददास्त खो बैठता है। (२) उसकी बोली बन्द हो सकती है। (३) वह बहरा हो सकता है। (४) माँसपेशियों में दर्द होता है। (५) लकवा हो सकता है।

इलाज :

(१) विद्युत प्रवाह को बन्द कर देना चाहिए ।

(२) आर्टिफीशियल रेशपिरेशन कृत्रिम श्वाँस देना चाहिए । अगर आर्टिफीशियल रेशपिरेशन ३ मिनट के अन्दर देना चालू कर दिया जावे तो मरीज के बचने की सम्भावना बहुत अधिक रहती है ।

(३) आक्सीजन व कार्बन-डाइ-आक्साइड गैस देना चाहिए ।

(४) हृदय के ऊपरी भाग को मलिये ।

(५) सदमें का इलाज करिये ।

बचाव :

(१) बिजली के खटके को गीले हाथों से नहीं छूना चाहिए ।

(२) बिजली की फिटिंग व पानी का स्थान अलग-अलग होना चाहिए ।

(३) फ्यूज तार मुख्य लाइन को बन्द करके ही सुधारना चाहिए ।

(४) बिजली को अर्थिंग (Earthing) बराबर करवाइये ।

(५) पानी को हीटर से गरम करते वक्त कभी भी पानी में हाथ मत डालिये जब तक कि हीटर का खटका बन्द न कर दें ।

●

६१. रक्ताल्पता (रक्त+अल्पता)
(ANAEMIA)

परिभाषा—शरीर में रक्त की कमी या अपर्याप्त रक्त की स्थिति को रक्ताल्पता (Anaemia) कहते हैं ।

यह रक्त में लाल कणों की विशेष रूप से हिमोग्लोबिन (लोहा और प्रोटीन) की कमी के कारण होता है ।

विवरण :

रक्त मनुष्य का एक महत्वपूर्ण तरल पदार्थ है इसमें प्लाज्मा (Plasma) नामक एक हल्का पीला तरल पदार्थ है व इसमें छोटे-छोटे लाल व सफेद कण तैरते हैं जिन्हें रक्त कण कहते हैं । प्रत्येक लाल कण में हिमोग्लोबिन (लोहा और प्रोटीन) है । यह श्वाँस में से आक्सीजन को ग्रहण कर उसे रक्त प्रवाह द्वारा शरीर के सभी ऊतकों (Tissue) तक पहुँचाता है जिससे उन्हें शक्ति मिलती है व ऊतकों में से कार्बन-डाइ-आक्साइड लेकर उसे श्वाँस द्वारा बाहर निकाल देता है ।

लक्षण :

१. कमजोरी व चक्कर आते हैं ।

२. होठ जीभ, आंखें व नख सफेद हो जाते हैं ।

३. कभी-कभी नाखून अन्दर की ओर धँस जाते हैं (चम्मच की तरह) ।

४. कभी-कभी पैरों में व हाथों में सूजन आ जाती है।
५. मरीज चिड़चिड़ा हो जाता है व उसे किसी भी कार्य में दिलचस्पी नहीं रहती है।
६. तिल्ली (Spleen) बढ़ जाती है।
७. कभी-कभी यकृत भी बढ़ जाता है।
८. मरीज थोड़ा कार्य करने पर ही थक जाता है व उसकी श्वांस फूलने लगती है।
९. कभी-कभी मरीज को भूख व नींद की कमी हो जाती है।

कारण :

१. भोजन में लोह तत्व व प्रोटीन की कमी।
२. पाचन प्रणाली में खराबी।
३. रक्त स्राव (Bleeding)।
४. अस्थि मज्जा रोग (Bone marrow disease)।
५. संक्रमण (Infection)।

(१) **भोजन में लोह तत्व व प्रोटीन की कमी**—हीमोग्लोबिन (लोह+प्रोटीन) रक्त की लाल कोशिकाओं को रंग देती है व श्वाँस में से आक्सीजन लेकर ऊतकों को देती हैं। ये लोहा व प्रोटीन के द्वारा बनती है अतः भोजन में अगर लोहा व प्रोटीन कम मात्रा में उपयोग में लिये जावेंगे तो शरीर में रक्त की कमी होगी। क्योंकि लाल रक्त कण १२० दिन तक जीवित रहते हैं व हर चार माह बाद नये लाल रक्त कण बनते हैं और पुराने नष्ट होने लगते हैं। अतः नये रक्त कणों के लिए लोहा व प्रोटीन आवश्यक है। लोहा तथा प्रोटीन हमें पौष्टिक भोजन के द्वारा प्राप्त होते हैं अतः हमारे भोजन में ऐसे खाद्य पदार्थ होने चाहिए जिनसे हमें लोह तथा प्रोटीन प्रचुर मात्रा में प्राप्त हो सके। केवल पुष्टिकर भोजन के द्वारा ही हम रक्ताल्पता से बच सकते हैं।

बच्चों को व गर्भवती माताओं (स्तनपान वाली महिला) को रक्ताल्पता (Anaemia) विशेषकर होता है अतः इन्हें पौष्टिक आहार की अधिक मात्रा में जरूरत होती है। बढ़ते हुए बच्चे को शारीरिक तथा मानसिक वृद्धि के लिए पौष्टिक तत्वों की अधिक आवश्यकता होती है।

प्रोटीन व लोह तत्व के स्रोत :

उत्तम प्रोटीन दूध, सोयाबीन, माँस, अण्डे, मछली से मिलता है, मध्यम प्रोटीन दालें, अनाज, फल, सूखे मेवे, मटर, सेम, आलू बुखारा, मूँगफली इत्यादि में मिलते हैं।

लोह तत्व विशेषकर हरी पत्तीदार सब्जियाँ, बेंगन, गुड़ इत्यादि मे पाया जाता है।

(२) **पाचन प्रणाली में खराबी**—कुछ स्थितियों में आँत भोजन के लोह तत्व व प्रोटीन तुरन्त नहीं पचा पाती जिससे बहुत सा लोह तत्व व प्रोटीन शरीर से बाहर निकल जाता है।

(३) **रक्त स्राव**—घाव से अत्यधिक और देर तक खून के निकलने से या बवासीर के रोग, माहवारी में अधिक खून जाने से या जच्की के समय अधिक खून बहने के कारण रक्ताल्पता हो जाती है।

(४) **संक्रमण**—मलेरिया परजीवी सबसे सामान्य परजीवी है जो खून में लाल कणों पर आक्रमण करता है। अंकुश कृमि (Hook worm), फीता कृमि (Tap worm) इत्यादि मनुष्य के शरीर में आँत में रहते हैं व खून चूसते हैं अतः रक्ताल्पता हो जाती है।

(५) **अस्थि मज्जा में रोग** (Bone marrow disease)—यदि रक्त की लाल कोशिकाएँ बनाने वाली मज्जा रोगग्रस्त हो जाये तो रक्त की कमी हो जायेगी। नशीली वर्ग की दवाई व अन्य दवाइयों से मज्जा रोगग्रस्त हो सकती है।

इलाज :

१. यदि रक्ताल्पता पोषक आहार (लोह तत्व व प्रोटीन) की कमी से हो तो उपरोक्त तत्व युक्त भोजन करके दूर की जा सकती है।
२. रक्ताल्पता का कारण ज्ञात कीजिये व उसका इलाज कीजिये।
३. गर्भवती माताओं को व उनके बच्चों को, स्तनपान वाली महिलाओं को पोषक आहार (जिसमें लोह तत्व व प्रोटीन) अधिक मात्रा में देना चाहिए।
४. आयरन की गोली दीजिये या इनफेरान के इन्जैक्शन लगाइये।
५. प्रोटीन दीजिये जैसे प्रोटिन्यूल्स, प्रोविटेक्स, प्रोटिनेक्स इत्यादि।

(हीमोग्लोबिन १३ से १४ ग्राम १०० सी. सी. खून में रहता है जब ११ ग्राम से कम हो जाता है तो रक्ताल्पता होती है।)

●

६२. मातृ एवं शिशु कल्याण कार्यक्रम

परिभाषा—माँ एवं बच्चे के लिए दी जाने वाली स्वास्थ्य सेवाओं को मातृ एवं शिशु कल्याण सेवाएँ कहा जाता है।

भारत की ८०% जनता गाँवों में रहती है। १५ वर्ष से कम आयु के किशोरों की संख्या ४२% है व ५ वर्ष से कम आयु के बच्चों की संख्या १७% है। इन आयु में विशेषकर ५ वर्ष से कम आयु के बच्चों को संक्रमण व पोषण की समस्याएँ अधिक रहती हैं व इनमें मृत्युदर अधिक होती है। यह १०० प्रति हजार है। मृत्युदर शहरों के बजाय ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक है।

गर्भस्थ शिशु व स्तनपान करने वाले शिशु पर माँ के कुपोषण का असर होता है।

बच्चों का मानसिक विकास पूर्ण रूप से ३ वर्ष की आयु तक हो जाता है तथा ८०% विकास गर्भावस्था में हो जाता है व केवल २०% ही बाहर होता है। अतः गर्भिणी महिला को पर्याप्त मात्रा में पोषक आहार ग्रहण करना चाहिए। इसी प्रकार दूध पिलाने वाली माताओं को भी पोषक आहार पर्याप्त मात्रा में ग्रहण करना चाहिए।

माँ एवं शिशु के स्वास्थ्य में निम्नलिखित सेवाएँ दी जाती हैं :

१. माँ एवं शिशु की सेवाएँ
२. परिवार नियोजन
३. पोषण आहार
४. टीके की व्यवस्था
५. पर्यावरण स्वच्छता।

(१) **माँ एवं शिशु की सेवाएँ**—बच्चे के स्वास्थ्य के लिए माता का स्वस्थ रहना उतना ही आवश्यक है जितना कि किसी आकर्षक फूल के लिए पुष्ट पौधा। माता के गर्भ में ही बच्चे के शरीर की स्थापना होती है और वहीं उसका प्रथम विकास होता है। पोषक तत्वों के पाने से बच्चा गर्भ में भी पर्याप्त विकास पाता है। इसके अभाव में नितान्त निर्बल, रोगी व विकलांग तक होता है। अतः गर्भवती माताओं को पर्याप्त मात्रा में पोषक आहार ग्रहण करना चाहिए। जैसे दूध, हरी पत्ती की सब्जियाँ, फल, अण्डे, दालें इत्यादि।

गर्भ धारण करने के प्रथम ३ माह तक हर माह माता को प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र या उप केन्द्र पर या अन्य स्वास्थ्य केन्द्र पर जाकर अपनी जाँच करवानी चाहिए। वहाँ पर डाक्टर या नर्स निम्न सेवाएँ प्रदान करेंगे :

१. गर्भवती महिला की पूर्ण जाँच व निदान।

२. गर्भवती महिला के खून की जाँच करना चाहिए। अगर खून की कमी हो तो लोह की गोली दी जाती है व पोषक आहार लेने की सलाह दी जाती है।

३. **रक्त चाप** (Blood Pressure)—गर्भवती महिला का रक्त चाप देखना चाहिए।

४. **सूजन**—पैरों में सूजन है या नहीं, देखना चाहिए।

५. **वजन**—गर्भवती महिला का वजन लेना चाहिए। पूरी गर्भावस्था में महिला का वजन ५ से १० किलोग्राम तक बढ़ता है।

६. **पेशाब की जाँच**—महिला के पेशाब की जाँच प्रोटीन व शक्कर के लिए करना चाहिए। गर्भ के प्रथम तीन माह में हर माह जाँच करवाना चाहिए।

गर्भ के द्वितीय ३ माह में हर १५वें दिन जाँच करवानी चाहिए।

गर्भ के अन्तिम ३ माह में हर सप्ताह जाँच करवानी चाहिए।

जाँच करवाने से बच्चे की स्थिति का पता लग जाता है। इसके अलावा जब भी गर्भवती को पैरों में सूजन, घबराहट, पेट में दर्द, झटके लगना, रक्तस्राव होने पर तुरन्त किसी चिकित्सक की सलाह लेना चाहिए।

गर्भ के चिह्न :

१. माहवारी का रुक जाना,
२. स्तनों में भारीपन महसूस होना,
३. घबराहट व उल्टियाँ होना,
४. खट्टी चीजों के खाने की इच्छा होना।

उपरोक्त लक्षण होने पर प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र पर हर माह बताना चाहिए। जिससे पता चल सके कि बच्चे की वृद्धि सामान्य रूप से हो रही है अथवा नहीं व माता को भी कोई खतरा तो नहीं है व किसी प्रकार की कोई बीमारी तो नही है क्योंकि माँ की बीमारी गर्भावस्था में माँ व बच्चे दोनों को तकलीफदायी साबित हो सकती है।

गर्भवती महिला को सलाह :

१. गर्भवती महिला को स्वयं की इच्छा से किसी भी प्रकार की दवाइयाँ वगैर डॉक्टर की सलाह के नहीं लेना चाहिए। क्योंकि दवाई का असर बच्चे पर भी पड़ता है।
२. गर्भवती महिला को रोगों से बचने के लिए सतर्क रहना चाहिए क्योंकि अगर वह बीमार होगी तो बच्चे पर भी उसका असर पड़ेगा।
३. गर्भवती महिला को गर्भावस्था में सामान्य रूप से कार्य करते रहना चाहिये व थोड़ा घूमने जाना अधिक लाभदायक है।
४. स्कूटर व रिक्शा आदि में यात्रा नहीं करना चाहिए क्योंकि इनमें बहुत धक्के लगते हैं व ऊँची एड़ी की चप्पल भी नहीं पहनना चाहिए क्योंकि इससे गिरने का डर रहता है व भारी वजन नहीं उठाना चाहिए।

जरूरी जानकारी :

स्त्री को यह जानकारी होना चाहिए कि उसे किस अवस्था में प्रसव के लिए अस्पताल जाना है। साधारणतया प्रसव का दर्द कमर से उठकर पेट में आता है व थोड़ी-थोड़ी देर रहता है। इसके अलावा नीचे भी कुछ पानी आना शुरू हो जाता है।

गर्भवती स्त्री को आने वाले बच्चे के लिए पहले से ही उसके कपड़े इत्यादि बना लेना चाहिए।

टिटेनस का टीका :

गर्भवती माताओं को टिटेनस के टीके से न केवल उनकी सुरक्षा होती है बल्कि नवजात शिशु की भी टिटेनस से सुरक्षा होती है। अतः उन्हें छठे, सातवें व आठवें माह में यह टीका लगवाना चाहिए।

प्रसव के समय :

सामान्य प्रसव अस्पताल में या घर पर ही करवा सकते हैं। परन्तु प्रसव नर्स के द्वारा या प्रशिक्षित दायी के द्वारा ही करवाना चाहिए। कठिन प्रसव स्वास्थ्य केन्द्र या अस्पताल में करवाना चाहिए।

प्रसव के तुरन्त बाद मिथारजिन (Methargin) का इन्जैक्शन लगाना चाहिए जिससे रक्तस्राव कम होगा। अगर रक्तस्राव बन्द न हो तो तुरन्त चिकित्सक को दिखाना चाहिए।

प्रसव के बाद माँ व बच्चे की देखभाल :

बच्चे के जन्म के ६ सप्ताह बाद तक माँ को निम्न सेवाएँ देना चाहिए :

(१) माता को पूर्ण आराम करना चाहिए परन्तु वह शौच इत्यादि के लिए जा सकती है।

(२) माता को पोषक आहार करना चाहिए क्योंकि जो आहार वे ग्रहण करती हैं दुग्ध के माध्यम से वही बच्चे के शरीर में पहुँचता है।

(३) सामान्यतः प्रसव के बाद स्तन में दुग्ध भरने के कारण महिला को दर्द होता है। यह कोई बीमारी नहीं है। दुग्ध को निकालने से आराम हो जाता है।

बच्चे की देखभाल :

सामान्यतः बच्चा बाहर आते ही रोता है। बच्चे के बाहर आते ही उसके पैर पकड़ कर उल्टा लटकाना चाहिए व पीठ थपथपाना चाहिए जिससे उसे श्वसन क्रिया में मदद मिलेगी। उसके बाद उसका मुँह साफ करना चाहिए व आँखें साफ करनी चाहिए व आँखों में सल्फासिटामाइड की बूँद डालना चाहिए व फिर बच्चे को कुनकुने पानी से नहलाना चाहिए व साफ तौलिये से पोंछकर उसे स्वच्छ कपड़े पहनाना चाहिए। यदि बच्चा कमजोर हो या समय से पूर्व हो गया हो (७वें या ८वें माह) तो उस पर विशेष ध्यान देना चाहिए। बच्चे का वजन लेना चाहिए जन्म का समय व तारीख लिखना चाहिए। नाला साफ कैंची से (२० मिनिट पानी उबाली हुई) काटना चाहिए व टिंचर आयोडीन लगाना चाहिए व उसका ड्रेसिंग करना चाहिए। नाला सामान्यतः ५, ६ दिन में गिर जाता है।

स्तनपान—बच्चे को जन्म के चार छः घण्टे पश्चात माँ का दूध पिलाना चाहिए। २ दिनों तक माता के स्तनों से कोलेस्ट्रम नामक पीला गाढ़ा पदार्थ निकलता है। यह बच्चे के लिए बहुत पोषक है। इसमें विटामिन ए अधिक मात्रा में पाया जाता है, जिससे बच्चा अनेक बीमारियों से सुरक्षित हो जाता है। बहुत सी माताएँ इस पदार्थ को बच्चे को नहीं पिलातीं और वे इस विश्वास में नष्ट कर देती हैं कि यह पदार्थ बच्चे के लिए अहितकर होता है, परन्तु ऐसा नहीं है।

प्रत्येक बार दूध पिलाने के लिए स्वच्छता के लिए हाथों को व स्तनों को साबुन व पानी से धोना चाहिए। बच्चे को स्तनपान कराते समय लगभग पाँच मिनिट के बाद एक से दूसरे स्तन का पान कराना चाहिए व लगभग १५ से २० मिनिट में बच्चा अपनी आवश्यकतानुसार दूध पी लेता है। दूध के साथ-साथ बच्चे को दिन में ३ या ४ बार पानी पिलाना चाहिए व बच्चे को स्तनपान ४–४ घण्टे से करवाना चाहिए। बच्चे को दूध पिलाने के बाद उसे कन्धे से लगाकर उसकी पीठ ३–४ बार थपथपना चाहिए जिससे पेट में गयी हवा बाहर निकल आती है।

तीन से चार माह के बाद शिशु की पूर्ण खुराक माता के दूध से पूर्ण नहीं हो सकती क्योंकि माँ का दूध कम हो जाता है और शिशु की आवश्यकता शारीरिक व मानसिक विकास के लिए बढ़ जाती है अतः उसे ऊपर का दूध तथा अर्ध ठोस आहार देना चाहिए। छः माह की उम्र से बच्चे को अन्न देना जरूरी है। मसालेदार खाना बच्चे को दो वर्ष की उम्र से पहले नहीं देना चाहिए। जन्म के ३ वर्ष तक बच्चे को अच्छी खुराक देना चाहिए नहीं तो बच्चे का मानसिक व शारीरिक विकास ठीक ढंग से नहीं हो पाता। अगर बच्चे को बोतल से दूध पिलाया जाता है तो बोतल व चुसनी को अच्छी तरह पानी में उबालना चाहिए।

टीके :

बच्चे को जन्म के पश्चात् चेचक, क्षय रोग, गला घोंटू, कुकर खाँसी, धनुर्वाद, पोलियो आदि के टीके अनिवार्य रूप से तालिका के अनुसार लगवाना चाहिए। जिससे इन बीमारियों से शिशु की रक्षा की जा सके।

★

६३. एन्जाइना पेक्टोरिस (Angina Pectoris)

इसे साधारणतया हार्टअटेक के नाम से जाना जाता है। यह बीमारी अकस्मात् होती है व इसका हमला (attack) होने पर अगर मरीज को उसी वक्त इलाज मिल जावे तो उसकी रक्षा हो जाती है। इस बीमारी में मरीज को छाती में जोरों से दर्द होता है व दर्द बांये कन्धे व बांये हाथ की ओर जाता है। अधिकतर यह बीमारी ४० वर्ष से ऊपर के मनुष्यों में पाई जाती है। यह बीमारी धनवान पुरुषों में अधिक पाई जाती है।

कारण :

(१) **आरटिरियो स्केलोरियोसिस** (Arterio sclerosis)—वृद्धावस्था में धमनियाँ (Arteries) कमजोर हो जाती हैं व इनमें इलेस्टिसिटी (Elesticity) भी कम हो जाती है।

(२) अगर कोरोनरी धमनी में खून का दौरा रुक जाता है।

(३) अगर एवारटा (Aorta) में रुकावट हो।

(४) **सिफिलिटिक एओरटाइटिस** (Syphilitis Aortitis)—अगर एवारटा (Aorta) में सिफिलिस का असर आ जाता है।

(५) रक्ताल्पता (Anaemia)।

हमारे शरीर में हृदय एक बहुत ही उपयोगी अंग है। यह पूरे शरीर को शुद्ध रक्त पहुँचाता है व इसके चारों चेम्बर रक्त से भरे रहते हैं। उक्त कार्य करने हेतु हृदय हमेशा सिकुड़ता व फैलता रहता है। इतना कार्य करने हेतु इसे स्वयं को भी शक्ति की जरूरत होती है और वह शक्ति इसे ऑक्सीजन से मिलती है। हृदय में कोरोनरी धमनियाँ होती हैं जो शुद्ध रक्त ले जाकर हृदय की माँसपेशियों को पहुँचाती है व हृदय को कार्य करने के लिए शक्ति मिलती है। अगर कोरोनरी धमनी में कोई बीमारी हो जावे या किसी और अंग की बीमारी के कारण हृदय को रक्त कोरोनरी धमनी के द्वारा पूर्ण रूप से नहीं मिल पाता है तो एन्जाइना पेक्टोरिस (Angina Pectoris) का अटेक आ जाता है।

कारण :

(१) कोरोनरी धमनी द्वारा हृदय की माँसपेशियों को कम मात्रा में ऑक्सीजन देने पर :

(अ) धमनी में आरटिरियो स्कलेरोसिस (Arterio sclerosis) होने पर धमनी की इलेस्टिसिटी (Elestisity) कम हो जाती है व धमनी का लुमन (Luman) छोटा हो जाता है। अतः हृदय की माँसपेशियों को रक्त कम मिलता है।

(ब) **इमोशन** (Emotion)—जब मनुष्य अचानक कोई दुःख या सुख की बात सुनता है तो रिफलेक्सली (Reflexly) कोरोनरी धमनी सिकुड़ जाती है व हृदय को रक्त बराबर मात्रा में नहीं मिलता।

(स) **ठण्ड** (Cold)—अधिक ठण्ड लगने पर, पेट के ऊपर के भाग में दर्द होने पर, सिगरेट पीने से धमनी कभी-कभी सिकुड़ जाती है।

(द) अधिक भोजन करने से, गुस्सा करने से व खून की कमी होने से भी अटेक हो सकता है।

(इ) कुछ बीमारियों में जैसे रक्तचाप बढ़ना (Hypertension), एओरटिक स्टनोसिस (Aortic stenosis), एओरटिक इनसफिसेन्सि (Aortic insufficiency) इत्यादि में हृदय की माँसपेशियों की आवश्यकता अधिक बढ़ जाती है, अतः अगर इन्हें अधिक मात्रा में आक्सीजन नहीं मिले तो अटेक आ जाता है।

लक्षण और चिन्ह (Sigh & Symptom) :

(१) मरीज को छाती में जोरों से दर्द होता है। यह दर्द साधारणतया छाती के बीच मे या कुछ बायीं तरफ से शुरू होता है व दर्द बाँये कन्धे व बाँये हाथ के अन्दर की तरफ जाता है व छोटी व अँगूठी पहनने वाली अँगुली में भी दर्द हो सकता है।

(२) कभी-कभी मरीज को छाती में भारीपन महसूस होता है या जलन होती है, या गैस जैसा घूमता कुछ महसूस होता है। यह कुछ भी कार्य करने पर जैसे चलने इत्यादि पर बढ़ जाता है व आराम करने पर कम हो जाता है।

(३) **दर्द का समय**—अगर अटेक (Exersion)........के कारण आता है तो आराम करने पर ३ मिनिट में ठीक हो जाता है। अगर अटेक अधिक खाना खाने के कारण या चिन्ता के कारण आता है तो करीब १५ से २० मिनिट तक रहता है।

इलाज :

(१) मरीज को पूर्ण आराम देना चाहिए।

(२) सारबिट्रेट (Sorbitrate) की गोली मरीज की जबान के नीचे रखना चाहिए।

(३) पेथिडिन (Pethidine) का इन्जैक्शन लगाना चाहिए।

☆

६४. गर्भ की जानकारी
(Diagnosis of Pregnency)

प्रत्येक स्त्री अपने जीवनकाल में गर्भ धारण करती है। साधारणतया गर्भ धारण तरुणावस्था में होता है। भारतवर्ष में तरुणावस्था १३-१४ वर्ष में प्रारम्भ हो जाती है। तरुणावस्था की शुरुआत के लक्षण है, स्तनों में उभार आना, आवाज का बदल जाना, मासिक धर्म की शुरुआत होना। यूरोपिय देशों में तरुणावस्था साधारणतया १८-१६ वर्ष की उम्र मे प्रारम्भ होती है। मासिक धर्म ४५ वर्ष की उम्र तक आता है। अतः भारतवर्ष में स्त्री १४-१५ वर्ष से ४५ वर्ष तक की उम्र में बच्चे को जन्म दे सकती है। जब स्त्री गर्भ धारण करती है तो प्रत्येक घर वालों को अर्थात् सास, श्वसुर, पति इत्यादि को अत्यधिक प्रसन्नता होती है व वे जानने को उत्सुक रहते हैं कि नवविवाहित स्त्री को वास्तव में गर्भ रहा है या नहीं, अतः युवती को इसके लिए अस्पताल में जाँच के लिए लाया जाता है।

गर्भ की जानकारी :

(१) मासिक धर्म का रुक जाना।

(२) घबराहट व उल्टियाँ होना।

(३) स्तनों में भारीपन महसूस होना व स्तनों का बड़ा हो जाना।

(१) **मासिक धर्म का रुक जाना**—गर्भ धारण का यह पहला लक्षण है। साधारणतया मासिक धर्म प्रत्येक २८ दिन में आता है। परन्तु अगर गर्भ ठहर गया हो तो यह रुक जाता है। परन्तु कभी-कभी मासिक धर्म दूसरे कारणों से भी रुक जाता है जैसे—अगर गर्भाशय में कोई बीमारी है, या Tension मानसिक या स्थान परिवर्तन से या रक्तात्पता इत्यादि में भी मासिक धर्म रुक सकता है।

(२) **उल्टियाँ होना**—दूसरे माह से घबराहट व उल्टियाँ होती हैं। किसी-किसी को उल्टियाँ बहुत अधिक होती हैं व किसी-किसी को उल्टियाँ होने के बाद आराम हो जाता है व कभी-कभी किन्हीं को सिर्फ घबराहट होती है। तीसरे माह के पश्चात् साधारणतया घबराहट व उल्टियाँ नहीं होती हैं।

(३) **स्तनों का बड़ा हो जना**—प्रथम गर्भ धारण के समय स्तनों का बड़ा होना जल्दी मालूम होता है। स्तन बड़े हो जाते हैं व भारी हो जाते हैं, व स्तनों में हल्का-हल्का दर्द होता है। स्तनों के ऊपर खून की शिराओं में उभार आ जाता है। जब चूचक को दबाया जाता है तो चिकना, गाड़ा द्रव निकलता है। १२वें सप्ताह में गर्भाशय पेट से महसूस किया जा सकता है। चूचक के आसपास एरुला जो कि गुलाबी रंग का होता है वह काला हो जाता है।

(४) **पेशाब का बार-बार होना**—२$\frac{1}{2}$ से ३$\frac{1}{2}$ माह में पेशाब बार-बार होती है क्योंकि इस समय गर्भाशय पेड़ू में ही रहता है व मूत्राशय पर दबाव डालता है व मूत्राशय की दीवालों में कुछ सूजन भी आ जाती है। तीसरे माह के बाद जब गर्भाशय पेट की तरफ बढ़ जाता है तब पेशाब सामान्यतः होने लगता है।

(५) **योनि में परिवर्तन**—सामान्यतः योनि की अन्दर की सतह का रंग गुलाबी होता है. वह नीला हो जाता है। यह गर्भाशय के बड़े होने से शिराओं पर दबाव पड़ने पर खून का दौरा रुकने के कारण होता है। योनि की ऊपर की सतह चपटी हो जाती है। योनि से म्यूकस (Mucus) अधिक रिसता है।

उपरोक्त सभी लक्षण व चिन्ह ४ माह से पहले देखे जाते हैं।

चार माह पश्चात :

(१) पेट का बड़ा हो जाना।

(२) सर्विक्स (cervix) में बदलाव आना।

(३) गर्भाशय में रुक-रुक कर सिकुड़न व फैलाव होना (Intermittent Uterine Contraction)।

(४) बच्चे को महसूस करना।

(१) **पेट का बड़ा हो जाना**—तीसरे माह के पश्चात् पेट धीरे-धीरे बड़ा होता जाता है। क्योंकि ३ माह तक गर्भाशय पेड़ू में ही रहती है परन्तु चौथे माह में पेट की तरफ बढ़ जाती है व चौथे माह के अन्त में पेट की दीवाल के सम्पर्क में आ जाती है। ५वें माह के अन्त में गर्भाशय की ऊपरी सतह नाभि व सिम्पायसिस प्यूबिस के बीच में महसूस होती है। छटे माह के अन्त में यह नाभि तक बढ़ जाता है। ७वें माह के अन्त में यह नाभि व इन्सिफार्म कार्टिलेज (Ensiform Cartilage) तक बढ़ जाता है। ८वें माह के अन्त तक यह इन्सिफार्म कार्टिलेज (Ensifarm Cartilage) तक बढ़ जाता है। इसके बाद गर्भाशय ऊपर की ओर नहीं बढ़ता है परन्तु अपने वजन के कारण पेड़ू की तरफ जाता है।

(२) **सर्विक्स** (cervix) **में बदलाव आना**—यह जाँच महिला की योनि में अँगुली डालकर की जाती है। सर्विक्स जो कि गर्भाशय का मुँह है, योनि में रहती है व कड़क होती है परन्तु गर्भ धारण के पश्चात् यह नरम हो जाती है व अंगुली के सिरे को नरम महसूस होती है।

(३) **गर्भाशय में रुक-रुक कर सिकुड़न व फैलाव होना** (Intermittent Uterine Contraction)—४थे माह पश्चात गर्भाशय की माँसपेशियों में सिकुड़न (Contraction) आती है व फैलती (Relaxation) है। यह सिकुड़न करीब १ से ५ मिनिट तक रहती है व फैलाव करीब १५ से २० मिनिट तक रहता है।

(४) **बच्चे को महसूस करना**—४थे माह पश्चात् पेट की जाँच करने पर बच्चे को महसूस किया जा सकता है।

उपरोक्त लक्षणों से गर्भ का पता लगाया जाता है।

★

६५. सामान्य गर्भ में कुछ तकलीफें

(Minor discomfert of Normal Pregnency)

(१) पीठ दर्द (Backache)
(२) बेहोशी (Faintness)
(३) Urinary Symptom
(४) छाती में जलन (Heart burn)
(५) कब्जियत (Constipation)
(६) बवासीर (Hemorrhoids)
(७) सिर दर्द (Headache)
(८) पैर में सूजन (Ankle Swelling)
(९) Varicase Vein
(१०) पैरों में दर्द (Leg Cramps)
(११) पेट में दर्द (Abdominal pain)
(१२) उल्टियाँ होना (Vomating in pregnency)

(१) **पीठ दर्द** (Backache)—सामान्यतः प्रत्येक स्त्री को गर्भावस्था में पीठ में दर्द होता है। यह दर्द ज्यादातर पीठ में नीचे की तरफ होता है। दर्द आखिरी ३ माह में अधिकतर होता है।

कारण :

(१) गर्भाशय के पीछे की तरफ दबाव के कारण पीठ में दर्द होता है।

(२) स्टीराइड सेक्स हारमोन्स (Steroid Sex Hormons) के कारण पेड़ू के जोड़ों में फैलाव (Relax) आ जाता है अतः पीठ में दर्द होता है।

(३) रिलेक्सान (Relaxon) भी पीठ दर्द के लिए जिम्मेदार है ।

रोकथाम और इलाज :

(१) महिला को सीधा रहना चाहिए । पेट जितना सीधा (flat) रहेगा तो दर्द कम महसूस होगा । कूल्हे आगे की तरफ झुके रहना चाहिए ।

(२) गर्भवती स्त्री को रोजाना व्यायाम करना चाहिए । जिससे माँसपेशियों में शक्ति बनी रहे ।

(३) हमेशा कड़क बिस्तर पर सोना चाहिए । फोम की गादी का इस्तेमाल नहीं करना चाहिए । क्योंकि फोम की गादी पर सोने से शरीर की स्थिति फ्लेक्सन (Flexon) की तरह हो जाती है जबकि कड़क बिस्तर पर शरीर सीधा रहता है ।

(४) कमर की हल्की सिकाई व मालिस करना चाहिए ।

(५) अगर दर्द अधिक हो तो एनालजिन, नावेलजिन क्रोसिन, डिस्प्रिन, रेलसिडिन, विकोरिल में कोई भी एक प्रकार की गोली दिन में ३ बार देना चाहिए ।

(२) **बेहोशी** (Faintness)—यह साधारणतया गर्भावस्था के शुरू से पाई जाती है ।

कारण :

यह रक्तचाप (Blood pressure) के कम होने के कारण हो जाती है क्योंकि अगर गर्भवती महिला ज्यादा देर तक खड़ी रहे या बैठी रहे तो रक्त पैरों की शिराओं (Veins) में व स्पलेनिक शिरा (Splenic vein) में व पेड़ू की शिराओं में भर जाता है । अतः सेरिब्रल हाइपोक्सिया (Cerebral Hypoxia) हो जाता है व बेहोशी आ जाती है । कभी-कभी खाने के पहिले खून में ग्लूकोज की कमी के कारण भी बेहोशी आ सकती है ।

रोकथाम व इलाज :

इसकी रोकथाम की जा सकती है । गर्भवती महिला को कुछ कार्य करना चाहिए व जोर-जोर में श्वाँस लेना चाहिए ।

महिला को भोजन दिन में ५, ६ बार थोड़ा-थोड़ा लेना चाहिए । उत्तेजक (Stimulant) पदार्थ जैसे—चाय, कॉफी इत्यादि देना चाहिए ।

(३) **Urinary Symptom**—कुछ गर्भवती महिलाओं को पेशाब बार-बार आता है, कुछ को पेशाब आने पर वे रोक नहीं पाती हैं व उसी वक्त पेशाब करने जाना पड़ता है व कुछ को कपड़ों में ही पेशाब हो जाता है । उपरोक्त लक्षण गर्भावस्था के आखिरी माह में पाये जाते हैं ।

कारण :

मूत्राशय (Urinary bladder) की क्षमता कम हो जाती है क्योंकि गर्भाशय बड़ा हो जाता है व मूत्राशय की दीवारों पर दबाव डालता है । अगर पेशाब में खून आता हो तो मूत्र संस्थान में संक्रमण (Urinary tract instection) का इलाज करवाना चाहिए ।

रोकथाम और इलाज :

अगर उपरोक्त लक्षण हो तो चाय, कॉफी, मिर्च, मसाले, शराब इत्यादि नहीं लेना चाहिए ।

(४) **छाती में जलन** (Heart burn)—सामान्यतः छाती में जलन १५% महिलाओं में पाई जाती है। यह लक्षण गर्भावस्था के आखिरी दिनों में पाया जाता है ।

कारण :

गर्भाशय के बड़े हो जाने के कारण आमाशय (Stomach) और छोटी आँत ड्यूडेनम (Deodenum) के ऊपर की ओर खसकने के कारण तेजाब भोजन नली में चला जाता है और छाती में जलन होती है। परन्तु जब ३० व ४०वें सप्ताह में गर्भाशय पेड़ू की ओर जाता है तो छाती की जलन समाप्त हो जाती है ।

इलाज और रोकथाम :

एण्टासिड (Antacid) जैसे कोलेन्ट्रिल, एल्यूड्राक्स की गोली दिन में चार बार चूसने के लिए देना ।

(५) **कब्जियत** (Constipation)—गर्भावस्था में साधारणतया कब्जियत हो जाती है ।

कारण :

(१) गर्भाशय के बढ़ने के कारण आँत पर दबाव पड़ता है व आँत की स्थिति बदल जाती है ।

(२) गर्भावस्था में स्टीराइड सेक्स हारमोन्स (Steroid Sex Harmons) बढ़ जाते हैं जो कि आँत की माँसपेशियों की मोटिलिटी (Motility) को कम करते हैं ।

कभी-कभी कब्जियत के कारण गर्भवती स्त्री को बवासीर (Piles) की तकलीफ भी हो जाती है ।

रोकथाम :

गर्भवती स्त्री को रोजाना पाखाने के लिए निश्चित समय पर अवश्य जाना चाहिए ।

इलाज :

ईसबगोल या लिक्विट पेराफिन देना चाहिए ।

(६) **बवासीर** (Hemorrhoids)—कब्जियत के कारण पाखाना करते समय जोर लगाने से बवासीर की तकलीफ होने की पूरी सम्भावना रहती है ।

(७) **सिर दर्द** (Headache)—सिरदर्द कई कारणों से होता है। अतः यह पता लगाना जरूरी है कि गर्भवती महिला को सिरदर्द गर्भ के कारण है अथवा दूसरे कारण से है ।

(१) अगर गर्भवती महिला को सिरदर्द है तो आँखों की जाँच करवाना चाहिए ।

(२) कमजोरी के कारण भी सिर दर्द हो सकता है अतः खून की जाँच हीमोग्लोबिन के लिए करना चाहिए ।

(३) सिर दर्द दिमागी परेशानी, चिन्ता या डर इत्यादि के कारण भी होता है अतः महिला को समझाना चाहिए कि वह चिन्ता से मुक्त रहे व आने वाले मेहमान की प्रतिक्षा करे ।

(४) कई महिलाओं को सिर दर्द (Migrain) आंधासीसी के कारण भी होता है ।

(५) गर्भावस्था में हारमोन्स की उत्तेजना (Stimulation) के कारण नसों में खून भर जाता है व सिर दर्द होता है ।

(६) अगर गर्भावस्था के आखरी माह में सिर दर्द होता है तो यह टाक्सिमिया (Toximia) के कारण हो सकता है ।

इलाज :

एनालजिन, डिस्प्रिन इत्यादि की गोली देना चाहिए ।

(८) **पैरों में सूजन आना** (Ankle Swelling)—साधारणतया सभी गर्भवती महिलाओं को पैरों में सूजन आ जाती है । यह सूजन अगर वे खड़ी रहे या बैठी रहे तो अधिक आती है । तंग कपड़े पहनने से भी सूजन आ सकती है । वैसे सूजन आना टाक्सिमिया (toximia) का चिह्न है परन्तु ७०% महिलाओं को सूजन सामान्यतः आती है । यह सूजन सोडियम और पानी के इकट्ठा होने के कारण आती है । जो कि प्लेसेन्टा और ओवरी (Ovary) के हारमोन्स के कारण होता है ।

इलाज और रोकथाम :

(१) महिला को अपने पैर ऊपर अर्थात् तकिये इत्यादि पर रखना चाहिए या पलंग के पैर वाले सिरे को ऊपर उठा देना चाहिए ।

(२) तंग कपड़े नहीं पहनना चाहिए ।

(३) नमक भोजन में कम लेना चाहिए ।

(९) **पैरों में एठन आना** (Leg Cramps)—एठन पैरों में, जाँघों में या कूल्हे पर सोकर उठने पर एकाएक महसूस होती है । यह गर्भ के ३ माह में महसूस होती है । इसमें पैरों की माँसपेशियाँ एकाएक छोटी हो जाती है । इसका कारण ज्ञात नहीं है परन्तु यह माना जाता है कि उक्त लक्षण खून में कैल्शियम की कमी व फास्फोरस की अधिकता के कारण होता है । फास्फोरस की अधिकता वाले पदार्थ खाने से यह बढ़ जाता है जैसे दूध, घी, माँस इत्यादि । खून में जब फास्फोरस अधिक हो जाता है तो यह कैल्शियम का सोखना कम करता है अतः कैल्शियम की कमी हो जाती है ।

इलाज :

(१) मरीज को नंगे पैर ठंडी फर्श पर खड़ा कीजिये।

(२) दर्द की जगह थोड़ी मालिस कीजिये।

(३) पंजे को थोड़ा व्यायाम अपने हाथों से करवाइये।

(४) सेक करिये।

रोकथाम :

(१) भोजन में फास्फोरस की मात्रा कम करिये। अतः दूध आधा किलो से अधिक नहीं देना चाहिए व माँस भी अधिक नहीं देना चाहिए।

(२) एल्यूमिनियम हाइड्रोक्साइड जेल (Aluminium Hydroxide Gel) दीजिये जो खून से फास्फोरस को कम कम करने में मदद देगी।

(३) कैल्शियम (Calcium) की गोलियाँ दीजिये।

(१०) **पेट दर्द** (Abdominal pain)—साधारणतया प्रत्येक गर्भवती महिला पेट दर्द की शिकायत करती है। पेट दर्द निम्न कारणों से होता है :

(१) **दबाव**—पेड़ू में भारीपन महसूस होता है। क्योंकि गर्भाशय का वजन बढ़ जाता है। परन्तु लेटने पर यह दर्द कम हो जाता है।

(२) **राउन्ड लिगामेन्ट पर दबाव** (Round Ligament tension)—पेट के बाईं तरफ राउन्ड लिगामेन्ट की तरफ दर्द राउन्ट लिगामेन्ट पर दबाव पड़ने के कारण होता है।

इलाज :

सेक करने से दर्द कम हो जाता है।

गैस व पेट फूलना—जो महिलायें अपने भोजन में मिर्च मसाले चिकनाई इत्यादि अधिक लेती हैं या एक ही बार में अधिक खाती हैं उन्हें पेट दर्द गैस के कारण होता है।

इलाज :

(१) भोजन बार-बार व कम करना चाहिए।

(२) भोजन में मिर्च मसाले व चिकनाई का उपयोग नहीं करना चाहिए।

(३) पेट की अन्य बीमारियों का पता लगाना चाहिए व उसका इलाज करना चाहिए।

(११) **उल्टियाँ होना** (Vomating in Pregnency)—साधारणतया सभी गर्भवती महिलाओं को व विशेषकर प्रथम गर्भवती स्त्रियों को गर्भावस्था में उल्टियाँ व घबराहट होती है। इसे मार्निंग सिकनेस (Morning sickness) कहते है। साधारणतया ये उल्टियाँ सुबह उठने के बाद व शाम के समय होती हैं। उपरोक्त लक्षण १–१½ माह से ३–४ माह की गर्भावस्था तक होते हैं। किसी-किसी महिला को यह उल्टियाँ बहुत अधिक होती हैं उसे हाइपरएमिसस ग्रेविडम (Hyperemises

gravidum) कहते हैं। अगर इसकी रोकथाम न की जावे तो गर्भवती की मृत्यु भी हो सकती है।

कारण—मालूम नहीं (not known)

इलाज :

(१) महिला को उल्टियों के बारे में समझाना चाहिए।

(२) भोजन में चिकनाई का उपयोग कम करना चाहिए।

(३) एवोमिन (Avomine) इमीडोक्सिन (Emidoxin) की गोली सुबह शाम देना चाहिए।

(४) अगर उल्टियाँ अधिक हों तो मरीज को अस्पताल में भरती कर देना चाहिए।

अस्पताल में इलाज :

(१) मरीज को किसी से भी मिलने नहीं देना चाहिए।

(२) ४८ घण्टे तक मुँह से कुछ भी नहीं देना चाहिए।

(३) नस के द्वारा फ्लूड, विटामिन इत्यादि देना चाहिए।

(४) अगर ४८ घण्टे बाद भी मुँह से देने पर मरीज उल्टियाँ करे तो नाक के द्वारा ट्यूब डालना चाहिए व धीरे-धीरे दूध इत्यादि ट्यूब से देना चाहिए।

(५) फिर मरीज को दिन में ६ बार थोड़ा-थोड़ा भोजन देना चाहिए।

●

६६. मासिक धर्म के समय दर्द होना
(Primary dismenorrhea)

साधारणतया महिलाओं को जब माहवारी की शुरूआत होती है तो बहुत सी महिलाओं को पेड़ू में दर्द होता है। यह दर्द किसी महिला की रक्तस्त्राव के पहले होता है व किन्ही को रक्त स्त्राव के समय होता है इसे डिसमेनोरिया (Dysmenorrhea) कहते हैं।

लक्षण :

(१) स्तनों में उभार आ जाता है।

(२) पेट के नीचे व बीच में एठन आकर दर्द होता है। यह दर्द रुक-रुक कर होता है।

(३) सिर दर्द होता है।

(४) घबराहट होती है।

(५) दस्त भी लग सकते हैं।

(६) बार-बार पेशाब आता है।

इलाज :

एनलजेसिक (Analgesic), नावेलजिन, एनालजिन इत्यादि की गोली दिन में ३ बार देना चाहिए।

●

६७. सफेद पानी (Leukorrhea)

भारतवर्ष में ९८% महिलाओं को सफेद पानी (Leukorrhea) की शिकायत होती है। यह शिकायत ज्यादातर गाँवों की महिलाओं में अधिक होती है। यह तकलीफ किसी भी उम्र की महिला को हो सकती है। साधारणतया यह प्रजनन संस्थान के संक्रमण (Infection) के कारण होता है। दूसरे कारण हैं सूजन आना, मानसिक या गर्भाशय में फोड़ा (Tumour) होना व इस्ट्रोजन (Estrogen) हारमोन्स का कम होना। सर्विक्स में छाले होने पर भी सफेद पानी (Leukorrhea) की तकलीफ हो जाती है। इसका रंग सफेद होता है क्योंकि इसमें इनफ्लामेटरी सेल (Inflamatory cell) वेजाइनल म्यूकस (Vaginal Mucus) व एक्सफोलिएटेड सेल (Exfoliated Cell) होते हैं ?

साधारणतया इसमें कोई गन्ध (Smell) नहीं होती है। परन्तु कभी-कभी इसमें बदबू आने लगती है। बदबू संक्रमण (Infection) होने पर आती है।

लक्षण :

(१) सफेद लसलसा तरल पदार्थ योनि से निकलता है।

(२) दर्द नहीं होता है।

(३) कभी-कभी खुजली चलती है।

(४) कभी-कभी सम्भोग के समय दर्द होता है।

(५) अगर बदबू आती है तो साधारणतया सर्विक्स पर छाले दिखाई देते हैं।

जाँच (Investigation) **:**

(१) **योनि के स्मीयर का कल्चर** (Vaginal Smear Culture)।

(२) खून की जाँच वी० डी० आर० एल० (V. D. R. L.)।

रोकथाम :

(१) अगर संक्रमण बार-बार होता हो तो सम्भोग के समय पति को कण्डोम का उपयोग करना चाहिए।

(२) केप्सूल टेरामाइसिन या टेट्रासाइक्लिन २५० मि. ग्रा. के दिन में ४ बार ५ दिन तक देना चाहिए।

(३) अगर संक्रमण ट्रायकोमोनस वेजिनाइटिस (Tricomonas Vaginitis) से हो तो फ्लेजिल (Flagyl) की गोली दिन में ३ बार १० दिन तक देना चाहिए। साथ ही पति का इलाज भी फ्लेजिल (Flagyl) से करना चाहिए।

(४) ओरल कान्ट्रासेप्टिव (Oral Contraceptive) बन्द कर देना चाहिए।

(५) मायकोस्टेटिन (Mycostatin) की १ गोली रोज १५ दिन तक योनि में रखना चाहिए या जेन्सन वायोलेट (नीली दवा) योनि में १% लगाना चाहिए।

●

६८. सर्विसायटिस (Cervicitis)

साधारणतया यह बीमारी अधिकतर महिलाओं में पाई जाती है। यह बीमारी संक्रमण (Infection) के कारण होती है। यह गोनोरिया और मिले-जुले (Mix) संक्रमण के कारण होती है। ६०% महिलाओं को इसी के कारण सफेद पानी (Leukorrhea) की शिकायत रहती है और इसी के कारण कई महिलाएँ गर्भवती होने से वंचित रह जाती हैं। योनि में सूजन आने पर या डाक्टर द्वारा औजार के उपयोग से या चोट लगने से भी cervicitis हो जाती है व ३/४ दिन महिलाओं को अगर इसका इलाज न कराया जावे तो केन्सर हो जाता है।

लक्षण :

(१) महिला को सम्भोग के समय दर्द होता है।

(२) महिला को बार-बार एबारसन (Abortion) होता है।

(३) महिला को सफेद पानी (Leukorrhea) की शिकायत रहती है।

(४) बच्चा होने पर गर्भाशय में संक्रमण पहुँच जाता है।

(५) सर्विक्स पर छाले (Erosion) हो जाते हैं।

(६) साधारणतया सर्विक्स का द्रव या म्यूकस (Mucus) पतला, साफ व सेल रहित (A cellular) होता है परन्तु सर्विसाइटिस होने पर यह गाड़ा हो जाता है व कभी-कभी इसमें रक्त भी आता है। म्यूकस (Mucus) की अम्लियता (Acidity) व गाड़ेपन के कारण शुक्राणु (Sperm) नष्ट हो जाते हैं।

(७) पीठ में नीचे की तरफ दर्द होता है।

(८) पेट के नीचे व बीच के भाग में दर्द होता है।

(९) पेशाब बार-बार आता है व पेशाब आने पर महिला को उसी समय पेशाब के लिए जाना होता है।

(१०) महावारी के बीच में रक्त स्राव होता है।

इलाज :

एण्टीबायोटिक्स (Antibiotics)—टेट्रासाइक्लिन के केप्सूल २५० मि. ग्रा. के दिन में ४ बार देना चाहिए।

(२) ५% सिल्वर नाइट्रेट से छालों को काटराइज (Cauterize) कर देना चाहिए।

६६. इनफर्टिलिटी (Infertility)

भारतवर्ष में परिवार कल्याण कार्यक्रम राष्ट्रीय कार्यक्रम के रूप में भारत सरकार ने लागू किया है। परिवार कल्याण का अर्थ है जिस परिवार में २ या ३ बच्चे हों उन्हें परिवार कल्याण के अन्तर्गत बच्चे होना बन्द कराने के साधनों की सलाह दी जाती है और जिस परिवार में बच्चे नहीं हैं उनके यहाँ पर बच्चे होना चाहिए। अतः महिला व पुरुष दोनों की डाक्टर के द्वारा जाँच करके सलाह दी जाती है। अतः जिस परिवार में बच्चे नही हों उन्हें भी परिवार कल्याण केन्द्र पर जाकर अपनी जाँच करवाना चाहिए।

जाँच :

(१) अगर गर्भ शादी के १ साल बाद तक नहीं रहता है व वह महिला व पुरुष गर्भ निरोधक का उपयोग नहीं करते हैं।

(२) अगर महिला को गर्भ ठहरता है परन्तु प्रत्येक बार एबारसन (Abortion) हो जाता है।

(३) अगर महिला के १ बच्चा अच्छा हुआ व बाद में बार-बार एबारसन हो जाता हो या वह गर्भवती नहीं होती है तो इसे इनफरटिलिटी (Infertility) कहते हैं।

कारण : महिला में—

(१) अगर महिला कमजोर है उसे प्रोटीन, विटामिन्स इत्यादि की कमी है, या खून की कमी है तो गर्भ नहीं ठहरेगा।

(२) अगर हारमोन्स का उत्सर्जन (Secreate) बराबर नहीं होता है।

(३) अगर जन्म से ही प्रजनन संस्थान पूरी तरह बड़े (Develop) नहीं हुए हों।

(४) अगर प्रजनन संस्थान में कोई संक्रमण हो।

(५) अगर प्रजनन संस्थान जैसे गर्भाशय, फेलोपियन ट्यूब (Fallopian tube), ओवेरी (Ovary) इत्यादि में कोई गठान हो अगर शुक्राणु मोटाइल (Motile) नहीं हो।

४०% इनफर्टिलिटी (Infertility) पुरुषों के कारण होती है।

इलाज :

(१) कुपोषण हो तो बेलेन्स डाइट व आयरन की गोली, विटामिन्स व प्रोटीन देना चाहिए।

(२) अगर संक्रमण हो तो एन्टिबायोटिक देना चाहिए।

(३) अगर शुक्राणु कम हों तो इसका कोई इलाज नहीं है।

(४) अगर १ वर्ष तक इलाज करने पर कोई फायदा नहीं हो तो Adoption गोद लेने की सलाह देना चाहिए।

★

७०. संभोग के समय दर्द (Dyspareunia)

डिसपेरुनिया का अर्थ है संभोग के समय दर्द होना। यह दर्द बीमारी के कारण भी हो सकता है अथवा मानसिक भी होता है। अर्थात् अगर महिला के मस्तिष्क में अगर संभोग के प्रति यह बात सन्देह हो जाती है कि संभोग से बहुत दर्द होता है क्योंकि प्रथम संभोग के समय हायमन झिल्ली फटती है अतः महिला को बहुत पीड़ा होती है व कुछ खून भी योनि से निकलता है। परन्तु बाद के संभोग के समय कुछ नहीं होता। परन्तु अगर प्रथम संभोग का डर महिला के मस्तिष्क में हो जाता है तो उसे संभोग के समय दर्द होता है। महिला को संभोग के समय दर्द पेड़ू में भी हो सकता है या योनि में भी हो सकता है। कुछ महिलाओं को दर्द पेड़ू व योनि दोनों जगहों में होता है।

कारण :

(१) योनि में दर्द अगर हायमन झिल्ली मोटी होती है तो होता है।

(२) अगर योनि सिकुड़ गयी हो।

(३) अगर योनि में कोई चोट लग गई हो।

(४) अगर योनि में, पेशाबनली (Urethra), या गुदा (Anus) में सूजन हो।

(५) अगर सर्विक्स में सूजन हो।

(६) अगर गर्भाशय की स्थिति उल्टी (Retroverted) हो।

(७) अगर गर्भाशय योनि में आ जाता हो।

(८) अगर गर्भाशय का केन्सर हो।

(९) अगर फेलोपियन ट्यूब (Fallopian tube) या ओवेरी (Ovary) में कोई बीमारी हो या सूजन हो।

(१०) अगर योनि पूरी तरह से परिपक्व नहीं हुई हो।

इलाज :

(१) महिला व पुरुष दोनों को समझाना चाहिए।

(२) हल्का सेडेशन (Sedation) दे सकते हैं जैसे—काम्पोज (Calmpose) की १-१ गोली सोते वक्त।

(३) झायलोकेन जैली (Xylocain jelly) संभोग के १०-१५ मिनिट पूर्व योनि में लगाना चाहिए।

(४) अगर योनि में द्रव कम रिसता हो व सूखी रहती हो तो आइल लगाना चाहिए।

★

७१. प्रसव (Dilivery)

प्रसव—जिस प्रक्रिया के द्वारा बच्चा जन्म लेता है उसे प्रसव कहते हैं।

सामान्य प्रसव—प्रसव के समय बच्चे का सिर नीचे (Vertex) की तरफ होता है व प्रसव अपने आप बगैर किसी औजार (Instrument) की सहायता से हो जाता है उसे सामान्य प्रसव कहते हैं।

असामान्य प्रसव (Abnormal labour)—वह प्रसव जिसमें माता अथवा बच्चे की जिन्दगी का खतरा रहता है और प्रजेन्टिग पार्ट (Presenting part) सिर के अलावा दूसरा होता है।

प्रसव में कुछ सामान्य तकलीफ :

(१) प्रथम प्रसव में समय अधिक लगता है व महिला को अधिक तकलीफ होती है।

(२) **उम्र**—१८ वर्ष से २३ वर्ष की अवस्था में प्रथम प्रसव होने पर महिला को सामान्य तकलीफ होती है। ३० वर्ष की अवस्था से पश्चात प्रथम प्रसव होने पर प्रसव में अधिक समय लगता है व फारसेप (Forcep) का उपयोग करने की आवश्यकता हो सकती है।

(३) १६ वर्ष से १८ वर्ष की अवस्था में सामान्य तकलीफ होती है मगर १६ वर्ष से कम की युवती को गुप्तांगों पर घाव आदि होने की सम्भावना अधिक होती है।

(४) ५, ६ प्रसव के बाद बच्चा होने पर महिला की जिन्दगी का खतरा अधिक रहता है।

प्रसव का समय ज्ञात करना—सामान्यतः गर्भ का समय २८० दिन का होता है। अतः महिला से पूछिये कि उसे अन्तिम बार माहवारी कब आई थी व माहवारी आने के प्रथम दिन से ९ माह पश्चात् में १ सप्ताह पहले व १ सप्ताह बाद की तारीख के बीच का समय प्रसव का समय होता है।

प्रसव के चिह्न (Onset of Labour) :

(१) रुक-रुक कर पेट में दर्द होना।

(२) योनि से हल्का रक्तस्राव होना (Show)।

(३) गर्भाशय के मुँह (Internal Os) का खुलना।

(४) पानी को थैली का बनना।

(१) **रुक-रुक कर पेट में दर्द होना** (Labour Pain)—गर्भ के समय गर्भाशय की माँसपेशियाँ हमेशा सिकुड़ती व फैलती रहती हैं। परन्तु महिला को इसका पता नहीं चलता है क्योंकि इससे महिला को किसी प्रकार का दर्द महसूस नहीं होता है। परन्तु प्रसव के समय यह सिकुड़न (Contraction) अपनी आदत बदल देती है व सिकुड़न (Contraction) के कारण महिला को पेट में दर्द होता है। पहले हल्का दर्द होता है और यह करीब १/२ मिनिट रहता है और करीब १५ से २० मिनिट के अन्तर से होता रहता है। शनैः-शनैः (अ) दर्द जोरों से होता है, (ब) दर्द अधिक समय तक रहता है, (स) दर्द जल्दी-जल्दी होता है। अगर दर्द के समय पेट का जाँच की जाती है तो गर्भाशय कड़क महसूस होता है।

(२) **योनि से हल्का रक्तस्राव** (Show)—यह रक्त मिश्रित गाढ़ा पदार्थ होता है। प्रसव के समय सर्वीयकल म्यूकोजा (Cervical Mucosa) बहुत अधिक मात्रा में म्यूकस (Mucus) रस बनाती है व गर्भाशय के निचले भाग के फैलने से म्यूकस की झिल्ली अलग हो जाती है अतः हल्का रक्तस्राव होता है। अतः प्रसव के समय यह रक्त व म्यूकस का स्राव होता है।

(३) **गर्भाशय के मुँह का खुलना** (Dilation of Internal Os)—प्रसव के पूर्व सर्विक्स (cervix) लम्बी व कड़क होती है। प्रसव के समय सर्विक्स नरम व छोटी हो जाती है व इसके मुँह अन्दर व बाहर दोनों तरफ से खुल जाते हैं व बच्चे Foetus के बाहर निकलने का रास्ता बनाते हैं।

(४) **पानी की थैली का बनना** (Formation of bag of water)—जब सर्विक्स खुल जाती हैं व गर्भाशय के निचले हिस्से में झिल्ली अलग हो जाती है तो लिकर एमनाय (Liquor Amnii) नीचे आ जाता है अतः इसे पानी का थैला कहते हैं। जब गर्भाशय में सिकुड़न होती है तो यह पानी का थैला अंगुलियों पर कड़क महसूस होता है। कुछ ही समय में गर्भाशय में सिकुड़न के कारण यह थैला फट जाता है व लिकर एमनाय (Liquir Amnii) बाहर निकल जाता है।

प्रसव की स्थिति (Stages of Labour) :

प्रसव की स्थिति ३ भाग में होती है :

प्रथम स्थिति (1st Stage)—इस स्थिति में महिला को पेट में दर्द होता है। दर्द की शुरूआत हल्के दर्द से होती है। दर्द शुरू मे १/२ मिनिट के लिए करीब १५, २० मिनिट के अन्तर से होता है। शनैः-शनैः दर्द का समय बढ़ता जाता है व अन्तर कम होता जाता है। इस स्थिति में सर्विक्स और गर्भाशय का निचला भाग फैलता (Dilate) जाता है। सर्विक्स की लम्बाई कम होती जाती है और आखिरी में सर्विक्स की म्बाई समाप्त हो जाती है व आखिरी में सर्विक्स का अन्दर का

मुँह (Internal Os) फैलना शुरू होता है। जब यह दो अंगुलियों के बराबर फैल जाता है इसे १/४ भाग फैलना कहा जाता है। जब ४ अंगुलियों के बराबर फैल जाता है इसे १/२ भाग फैलना कहा जाता है। जब ६ अँगुलियों के बराबर फैल जाता है इसे ३/४ भाग फैलना कहा जाता है व जब यह आठ अँगुलियों या ४ इन्च या १० से. मी. के बराबर फैल जाता है, इसे पूरा फैलना कहा जाता है।

अँगुली के द्वारा इस समय पानी का थैला महसूस किया जा सकता है। धीरे-धीरे गर्भाशय में सिकुड़न के कारण पानी का थैला फट जाता है व कुछ लिकर एमनाय (Liquir Amnii) बाहर आ जाता है।

प्रथम स्थिति में प्रथम प्रसव वाली महिला को १६ घण्टे का समय लग सकता है। जबकि अधिक प्रसव वाली महिला को सामान्यतः ८ घण्टे का समय लगता है।

द्वितीय स्थिति—यह स्थिति सर्विक्स की पूर्ण फैलने की स्थिति से चालू होती है व बेबी के जन्म लेने पर समाप्त होती है। इस स्थिति में बच्चा गर्भाशय में से योनि में जाता है अतः योनि शनैः-शनैः ऊपर से नीचे की ओर फैलती है।

बच्चे को बाहर धकेलने में गर्भाशय की माँसपेशियाँ जैसे—डायफ्राम, पेट की माँसपेशियाँ, पीठ की माँसपेशियाँ और कभी-कभी शरीर की सभी माँसपेशियाँ मदद करती हैं। साधारणतया गर्भाशय में सिकुड़न होने पर या दर्द आने पर महिला सभी माँसपेशियों की सहायता से जोर लगाती है। उस समय स्वाँस रुक जाता है अतः चेहरा नीला (Conjested) हो जाता है, नाड़ी तेज चलने लगती है व पसीना आता है।

जब बच्चे का सिर भग (Vulva) के स्थान पर हो जाता है उस समय गुदाद्वार फैल जाता है व बच्चे का सिर बाहर आ जाता है। इसके पश्चात् करीब २ मिनिट दर्द नहीं आता है व इसके पश्चात् कन्धे व फिर पूरा शरीर व आखिरी में पैर बाहर आ जाते हैं व इसके बाद थोड़ा रक्त मिश्रित द्रव बाहर निकलता है।

उपरोक्त स्थिति में प्रथम प्रसव में २ घण्टे का समय लग सकता है व अधिक प्रसव में १० से १५ मिनिट का समय लगता है।

तृतीय स्थिति (Third Stage)—उक्त स्थिति में प्लेसेन्टा (Placenta), नाला (Umbilical Cord), और मेम्बरेन (Membrane) बाहर आते हैं।

बच्चे के बाहर आ जाने पर गर्भाशय छोटा हो जाता है। गर्भाशय का ऊपरी सिरा नाभि के यहाँ महसूस किया जा सकता है व गर्भाशय कड़क व नरम महसूस होता है, क्योंकि गर्भाशय में सिकुड़न व फैलाव होता है परन्तु महिला को दर्द मालूम नहीं होता है। प्लेसेन्टा (Placenta) गर्भाशय से अलग हो जाता है क्योंकि गर्भाशय की साइज (Size) काफी कम हो जाती है और करीब-करीब १० मिनिट में प्लेसेन्टा गर्भाशय से सर्विक्स व योनि के द्वारा बाहर निकल जाता है व इसके साथ ही जमा हुआ खून भी आता है। अगर द्वितीय स्थिति के आखिर में या तृतीय स्थिति की शुरू-

आत में अरगोमेट्रिन (Ergometrine) का इन्जैक्शन लगा दिया जावे तो रक्तस्राव कम होता है। इस स्थिति में गर्भाशय छोटा व कड़क हो जाता है।

स्वास्थ्य सहायक को क्या करना चाहिए :

सर्वप्रथम स्वास्थ्य सहायक को प्रसव के समय महिला की जाँच करनी चाहिए व देखना चाहिये कि दर्द प्रसव के कारण है अथवा और किसी कारण से है। प्रसव के दर्द रुक-रुक कर आते हैं। दर्द पेट के निचले भाग में और कमर में होता है। पहले दर्द कुछ समय में जाते हैं व अधिक समय में जाते हैं। अगर निदान (Diagnosis) हो जावे कि दर्द प्रसव के कारण है तो :

(१) गुप्तांगों के आस-पास के बालों की सफाई (Shave) कर देना चाहिए व गुप्तांगों को साबुन व पानी से अच्छी तरह धो देना चाहिए।

(२) अपने हाथों को कोहनी तक साबुन से अच्छी तरह धोना चाहिए।

(३) प्रसव के समय साफ धुला हुआ टॉबल उपयोग में लाना चाहिए।

(४) प्रसव के समय पानी उबालकर उपयोग में लाना चाहिए।

(५) अधिक महिलाओं को कमरे में नहीं रहने देना चाहिए।

(६) महिला को पेशाब करने को कहना चाहिए।

(७) अगर दर्द २, २ मिनिट के अन्तर से आ रहे हों तो महिला को अकेला नहीं छोड़ना चाहिए।

(८) अगर महिला को दर्द धीरे-धीरे आ रहे हों तो महिला को अस्पताल भिजवा देना चाहिए।

(९) बच्चे के जन्म के पश्चात् नाले को दो स्थानों से बाँध देना चाहिए व बीच से काट देना चाहिए।

(१०) बच्चे के जन्म के बाद उसकी आँखें साफ करना चाहिए व सल्फासिटा-माइड की २, २ बूंद आँखों में डालना चाहिए।

(११) बच्चे के जन्म के बाद उसके दोनों पैर पकड़कर उसे उल्टा लटकाना चाहिए व पीठ थपथपाना चाहिए।

(१२) बच्चे के जन्म के समय अगर नाला गले इत्यादि में फंस जावे तो उसे निकाल देना चाहिए।

(१३) बच्चे का वजन लेना चाहिए व समय व तारीख लिखनी चाहिए।

(१४) नाले का ड्रेसिंग करना चाहिए।

स्वास्थ्य शिक्षा :

(१) महिला को प्रतिदिन गरम पानी से स्नान करना चाहिए या स्पंजिंग करना चाहिए व टेलकम पावडर लगाना चाहिए।

(२) गुप्तांगों पर अगर चोट आई हो तो उसकी ड्रेसिंग प्रतिदिन करवाना चाहिए।

(३) बच्चे को दूध पिलाने के पूर्व चूचक को धोना चाहिए।

(४) बच्चे को प्रतिदिन ५, ६ बार दूध पिलाना चाहिए। बच्चे को दोनों स्तनों से बारी-बारी से दूध पिलाना चाहिए। सामान्यतः बच्चा १५ से २० मिनिट में दूध पी लेता है। पहले २, ३ दिन कालेस्ट्रम आता है। कुछ माताएँ इन्हें बच्चे को नहीं पिलातीं परन्तु यह बच्चे के स्वास्थ्य के लिए अच्छा है। इसमें प्रतिरोधात्मक शक्ति होती है अतः इसे बेकार नहीं जाने देना चाहिए। इसे बच्चे को अवश्य पिलाना चाहिए।

(५) बच्चे को दूध पिलाने के पश्चात कन्धे पर लगाकर २, ३ बार-बार थपकी देना चाहिए जिससे उसके पेट की हवा बाहर निकल जाती है।

(६) बच्चे को दिन में करीब ३, ४ बार उबला हुआ पानी देना चाहिए।

(७) बच्चे की सफाई का ध्यान रखना चाहिए। बच्चे को पावडर इत्यादि लगाना चाहिए।

(८) बच्चे को व माता को ढीले कपड़े पहनना चाहिए व बच्चे को ठण्ड इत्यादि से बचाना चाहिए। परन्तु जिस कमरे में बच्चे को व माता को रखा जावे वहाँ धूप व हवा आने के लिए स्थान अवश्य हो।

(९) बच्चे को सर्वप्रथम जन्म लेने के ९. १० घण्टे पश्चात दूध पिलाना चाहिए।

(१०) महिला को थोड़ा घूमना फिरना चाहिए परन्तु अधिक नहीं।

(११) महिला को सन्तुलित भोजन करना चाहिए। भोजन में दूध, अण्डा, शाक-सब्जी, दालें, मछली, फल इत्यादि लेना चाहिए।

(१२) महिला की जाँच स्वास्थ्य सहायक को प्रतिदिन करनी चाहिए। गर्भाशय की ऊँचाई देखना चाहिए। महिला की योनि से जो स्राव होता है उसकी मात्रा देखनी चाहिए। स्तनों की जाँच भी करना चाहिए।

(१३) अगर स्राव अधिक मात्रा में हो व उसमें बदबू आती हो तो सल्फा-डायजन, ओरीसूल, फ्यूनासिन की गोली या टेट्रासाइक्लिन या टेरामाइसिन या सुबा-माईसिन के २५० मि. ग्रा. के केप्सूल दिन में चार बार ५ दिन तक देना चाहिए।

(१४) अगर पेट के नीचे की तरफ दर्द हो तो एस्प्रिन या डिस्प्रिन या नावे-ल्जिन की एक-एक गोली दिन में ३ बार देनी चाहिए।

(१५) महिला को समझाना चाहिए कि दूसरा बच्चा करीब ३ वर्ष पश्चात हो जिससे महिला में फिर से शक्ति आ सके।

७२. साँप का काटना

दुनिया में करीब २६०० तरह के साँप पाये जाते हैं जिनमें से ज्यादातर विष रहित होते हैं। साधारणतया साँप मनुष्यों पर आक्रमण नहीं करते हैं। वे अपनी रक्षा के लिए या छेड़ने पर या गलती से पैर इत्यादि रख देने पर ही मनुष्यों को काटते हैं। हिन्दुस्तान में २०,००० से ३०,००० मनुष्य प्रतिवर्ष साँप के काटने से मारे जाते हैं।

जहरीले साँप के प्रकार :

कोबरा—साधारणतया यह भारत में पाया जाता है। यह बहुत जहरीला होता है। यह काला या नीला काला होता है। इसके गले पर सफेद निशान होते हैं। यह जब क्रोधित होता है तो फन फैला लेता है व सिर खड़ा कर लेता है और अपने शरीर को गोल अंगुठी की तरह लपेट लेता है। ये घरों के आस पास पाये जाते हैं व चूहे और मेंढ़क इनका प्रिय भोजन है। इनका जहर (nerve) नाड़ी पर जहरीला प्रभाव डालता है अतः लकवा हो जाता है। लकवा स्वाँस लेने वाली मांसपेशियों का भी हो जाता है अतः श्वसन क्रिया नहीं हो पाती और मृत्यु दम घुटने से हो जाती है।

लक्षण :

(१) काटने की जगह पर गहरी पीड़ा होती है।
(२) काटने की जगह पर सूजन नहीं आती है।
(३) व्यक्ति की हरेक वस्तु २ दिखाई (Diplopia) देती है।
(४) व्यक्ति बहरा हो जाता है।
(५) सिर में पीड़ा होती है व चक्कर आते हैं।
(६) व्यक्ति सदमे (shock) की स्थिति में पहुँच जाता है।
(७) श्वसन क्रिया में तकलीफ होती है व श्वांस रुकने से मृत्यु हो जाती है।

जांच करना :

जिस स्थान पर साँप ने काटा है उस स्थान पर हुक के आकार के (जहर के) दाँतों के दो निशान दिखाई देते हैं।

वाइपर साँप :

इसके सिर का ऊपर का भाग तीर की तरह का होता है। यह भाग शरीर के भाग से चौड़ा होता है व पतली गर्दन से जुड़ा रहता है। सिर पर छोटी-छोटी परत होती है। इसका जहर मनुष्य के खून पर अपना असर दिखाता है।

लक्षण :

(१) काटे हुए स्थान पर पीड़ा होती है। सूजन आ जाती है व लाल हो जाता है।
(२) उल्टियाँ होती हैं व घबराहट होती है।
(३) सिर दर्द होता है।

(४) उल्टी के साथ खून आता है व फेफड़ों से भी खून आता है। पेशाब में भी खून आता है।

(५) मरीज सदमे (shock) की हालत में आ जाता है।

(६) खून बन्द न होने के कारण मनुष्य की मृत्यु हो जाती है।

काटे हुए व्यक्ति के जख्म की जाँच :

साँप के जहर में दाँत अलग होते हैं जिन्हें फेंग कहते हैं। ये १ या २ होते हैं व ऊपर के जबड़े में रहते हैं। ये बाकी सभी दाँतों से बड़े होते हैं।

अतः जख्म में फेंग का निशान देखिये। यह दूसरे छोटे दाँतों के निशान के साथ भी हो सकता है या अकेला भी हो सकता है। अगर फेंग का निशान हो तो जहर शरीर में प्रवेश कर गया है।

अगर (U) का निशान हो व छोटे-छोटे दाँतों का है तो साँप जहरीला नहीं था।

इलाज :

(१) साँप को मार डालना चाहिए जिससे बाद में देखकर पता लगाया जा सके कि साँप जहरीला है या नहीं व अगर जहरीला है तो कौनसी जाति का है।

(२) अगर साँप जहरीला है या मालूम नहीं हो तो मरीज को लेटा दीजिये या बैठा लीजिये और ५ से १० से. मी. ऊपर (काटे हुई जगह के) एक टुनिकेट बाँध दीजिये व काटे हुए स्थान पर से खून निकालिये। अगर मुँह में छाले इत्यादि नहीं हों तो मुँह के द्वारा भी खून खींचा जा सकता है। क्योंकि साँप का जहर सिर्फ खून के द्वारा ही नुकसान पहुँचता है। या एक (+) क्रास के निशान का चीरा लगावें व १० से २० c. c. खून निकाल दीजिये। टुनिकेट जो बाँधा है को हर एक २० मिनट के बाद २० सेकण्ड के लिए ढीला करिये व २ घण्टे से अधिक टुनिकेट न रहने दे। मरीज को जल्दी से जल्दी अस्पताल पहुँचावें परन्तु उसे चलने न दें।

अस्पताल में इलाज :

(१) एन्टि स्नेक वेनम दिया जावेगा।

(२) डेकाड्रान का ४ मि. ग्रा. का इन्जेक्शन देना चाहिए।

(३) एण्टिबायोटिक टेट्रासाइक्लिन का १०० मि. ग्रा. का इन्जेक्शन देना चाहिए।

(४) टिटेनस टाक्साइड का इन्जेक्शन देना चाहिए।

(५) नस से ग्लूकोज देना चाहिए।

(६) खून चढ़ाना चाहिए।

बचाव :

(१) खेतों व जंगल में चलते समय जूते पहनना चाहिए व लम्बे पेन्ट पहनना चाहिए।

(२) जहाँ साँप छिप सकता है वहाँ व बिलों इत्यादि में हाथ नहीं डालना चाहिए।

(३) सेन्डिल व चप्पल पहन कर नहीं घूमना चाहिए।

(४) रात्रि में बगैर टार्च के नहीं जाना चाहिए क्योंकि जहरीले साँप रात में ज्यादा घूमते हैं।

(५) साँप को तब तक न छेड़िये या पकड़िये जब तक की आपको विश्वास हो जाये कि ये जहरीले नहीं हैं।

★

७३. बिच्छू का डंक मारना

साधारणतया बिच्छू ग्रामीण इलाकों में पाये जाते हैं व ये गन्दे स्थान पर रहते हैं। ये मनुष्य से डरते हैं। ये अपनी रक्षा के लिए डंक मार देते हैं। ज्यादातर गलती से पैर इत्यादि रख देने पर ये डंक मार देते हैं।

लक्षण :

(१) डंक मारे हुए स्थान पर पीड़ा होती है।

(२) कभी-कभी घबराहट भी होती है।

इलाज :

(१) जहाँ बिच्छू ने डंक मारा है उस स्थान का निरीक्षण कीजिये अगर डंक का भाग घाव में हो तो उसे स्केलपल की सहायता से निकाल दीजिये।

(२) डंक वाले स्थान पर नोवोकेन ३ सी. सी. इन्जेक्ट करिये।

(३) एविल की गोली दीजिये या इन्जेक्शन लगाइये।

(४) ए. पी. सी. की गोली दीजिये।

(५) टिटेनस टाक्साइड का इन्जेक्शन लगाइये।

(६) सल्फाडाइजन की गोलियाँ या टेट्रासाइक्लिन के केप्सूल दीजिये।

बचाव :

(१) हमेशा जूते पहन कर चलना चाहिए।

(२) रात्रि में टार्च लेकर निकलना चाहिए।

(३) बिच्छू को छेड़ना नहीं चाहिए।

●

७४. कीड़ों का काटना

कीड़े इत्यादि ये गन्दी जगहों में पाये जाते हैं। ग्रामीण इलाकों में ये ज्यादातर पाये जाते हैं। इनके काटने से मनुष्य को अधिक हानि नहीं होती।

लक्षण :

(१) काटे हुए स्थान पर दर्द होता है व कभी-कभी खुजली चलती है।

(२) कभी-कभी सारे शरीर में खुजली चलने लगती है ।

(३) कटी हुई जगह पर सूजन आ जाती है व लाल हो जाती है ।

इलाज :

एविल की गोली दीजिये ।

★

७५. बुखार लेना

शरीर का सामान्य तापमान ९८.४०°F (फेरेनहाइट) या ३७°C (सेन्टीग्रेड) होता है। जब शरीर का तापमान इससे अधिक बढ़ जाता है उसे बुखार आना या ज्वर आना कहते हैं।

विधि :

थर्मामीटर लीजिये व देखिये की पारा कितने अंक (पाइन्ट) तक है । इसे हाथों के द्वारा झटक कर करीब ९४-९५°F तक उतार दीजिये व थर्मामीटर को (१) मरीज के मुँह में जबान के नीचे या (२) खॉक में या (३) जाँघ के बीच में रखें । इसका चमकदार सिरा जिसमें पारा भरा रहता है या त्वचा से टच होना चाहिये । इसे २ मिनिट तक इसी दशा में रखा रहने दीजिये व फिर निकाल लीजिये व देखिये पारा कितने अंकों तक पहुँच गया है । यदि मरीज का तापमान ९८.४°F से अधिक है तो मरीज को बुखार है ।

★

७६. दाँत दर्द (Toothaine)

दाँत का दर्द—साधारणतया दाँत के सड़ने (Tooth Carries) या मसूड़ों में पीप पड़ने के कारण हो जाता है ।

कारण :

(१) दाँत में चोट लगाने के कारण ।

(२) **दाँत के सड़ने के कारण**—जो व्यक्ति प्रतिदिन दाँतों की दोनों समय सफाई नहीं करते हैं । अतः भोजन के कण दाँतों में चिपक जाते हैं व उनमें गढ्डे पड़ना शुरू हो जाता है व दांत सड़ (Tooth Carries) जाते हैं अतः दर्द होता है ।

रोकथाम :

प्रतिदिन सुबह व शाम को दाँतों की ब्रुश व पेस्ट से सफाई करनी चाहिए ।

इलाज :

ए. पी. सी. की गोली देना चाहिए । अगर दर्द अच्छा न हो तो किसी दाँत के डाक्टर को तुरन्त बताना चाहिए ।

★

७७. आँख

आँख बहुत नाजुक और बहुमूल्य अंग है। इसकी देखभाल अच्छी तरह करना चाहिए। यह किसी भी वस्तु के देखने के लिए उपयोग में आती है।

बनावट :

यह हड्डियों के कोचर में स्थिति को गयी है, जिसे आरबिट (Orbit) कहते हैं जो इसे किसी भी प्रकार की चोट से सुरक्षित रखती है।

आँखों को सुरक्षा प्रदान करने वाले अंग :

(१) आरबिट (Orbit) (२) भोंह या बरोनिया (eye brow) (३) आंसू लाने वाली ग्रंथियाँ (Lacrimal apparatus) (४) पलकें (Eye lid) (५) स्वच्छ-मंडल। (Conjectiva)।

(१) **आरबिट** (Orbit)—मुँह पर नाक के ऊपर दोनों तरफ आँख हड्डी के कोचर में स्थित रहती है जो आँख की किसी भी प्रकार की चोट से रक्षा करती है।

(२) **भोंह या बरोनिया** (Eye brow)—आँख की पलकों पर छोटे-छोटे बाल होते हैं जो धूल के कण, मच्छर, कीटाणु इत्यादि से आँखों की रक्षा करते हैं।

(३) **आँसू लाने वाली ग्रन्थियाँ** (Lacrimal apparatus)—अगर आँखों में किरकिरी इत्यादि गिर जाती है तो आँसू लाने वाली ग्रन्थियाँ चारों ओर से आँसू फैलाकर इसे बाहर निकालने में मदद करती हैं। आँसू कुछ हद तक संक्रामक रोग के कीटाणुओं को भी बाहर निकालते हैं।

(४) **पलकें** (Eye lid)—पलकों के बार-बार झपकने से भी आँखों में धूल के कण, मच्छर, कीटाणु इत्यादि प्रवेश नहीं कर पाते हैं व तेज हवा व तेज प्रकाश भी आँखों पर बुरा प्रभाव नहीं डाल पाते।

आँखों की बनावट—यह २३.५ मि. मी. लम्बी व करीब २४ मि. मी. चौड़ी होती है व इतनी ही मोटी होती है। इसका $\frac{5}{6}$ भाग अपारदर्शी होता है व $\frac{1}{6}$ भाग पारदर्शी होता है उसकी ऊपरी सतह ऊभरी हुई होती है।

इसमें तीन परत होती हैं—

(i) **श्वेत पटल** (Sclera)—आँखों में सामने से दिखाई देने वाले सफेद भाग को श्वेत पटल (Sclera) कहते हैं। यह आँखों के बाहरी भाग का $\frac{5}{6}$ भाग होता है। यह अपारदर्शी व कड़क होता है। यह स्वच्छ मंडल (Conjectiva) के द्वारा ढका रहता है।

(५) **स्वच्छ मंडल** (Conjectiva)—यह आँखों में ऊपर की ओर उभरा हुआ गोलाकार व पारदर्शी भाग है इसके पीछे की तरफ तारामण्डल (Iris) होता है।

(ii) **माध्यमिक रक्त परत : तारामण्डल** (Iris)—यह कई रंगों का होता है परन्तु साधारणतया यह काले रंग का होता है यह ब्राउन व नीले रंग का भी पाया जाता है। यह पतली गोल, डिस्क (Disk) के आकार का होता है। यह सिकुड़ व फैल सकता है। कार्निया (Cornea) व लेन्स (lens) इसके बीच में स्थित हैं। इसके

चारों तरफ एक्वश हुमर (Aqous Humer) नामक तरल पदार्थ है। यह प्रकाश की किरणों को अपने सिकुड़ने व फैलने की शक्ति से नियन्त्रित करता है।

(iii) **आन्तरिक परत : रेटिना दृष्टि पटल** (Ratina)—यह आँखों की अन्तिम परत हैं। आँखें खुली रहने पर इस पर किसी भी बस्तु की तस्वीर उसी प्रकार बनती है जैसे कैमरे में।

★

७८. आँखों के रोग

आँख बहुत ही नाजुक व बहुमूल्य अंग हैं। किसी भी प्रकार की बाहरी वस्तु पड़ने से ये नष्ट हो सकती हैं। भोजन में विटामिन ए की कमी से भी नष्ट हो सकती है। किसी भी प्रकार के संक्रमण से आँखों की ज्योती में अन्तर आ जाता है व अधिक बढ़ने पर आँखों की ज्योती नष्ट हो जाती है। अधिक आयु, से (बूढ़े होने पर) आँख की लेन्स की पारदर्शता कम हो जाती है। जिससे रोशनी की किरणें अन्दर नहीं जा पातीं और अन्धापन आ जाता है किन्तु आपरेशन से इस लेन्स को निकाल दिया जाता है। किसी व्यक्ति को दूर का दिखाई नहीं देता व किसी को पास का ऐसे व्यक्तियों को चश्मे की आवश्यकता होती है। सामान्य आँखें सभी रंग में अन्तर देख लेती हैं पर कुछ लोगों की आँखें जन्म से ही रंग पहचानने की शक्ति नहीं रखतीं। ऐसे लोग कुछ विशेष व्यवसाय जैसे ड्रायवर, पायलट के कार्य नहीं कर सकते।

★

७९. आँख में फुन्सी होना (Stye)

जब जेसस ग्रन्थि (Zeiss gland) में सूजन आ जाती है व पीप हो जाता है उसे आँखों में फुन्सी होना (stye) कहते हैं। शुरू में ग्रन्थि फूल जाती है व कड़क हो जाती है व इसमें बहुत पीड़ा होती है। कभी-कभी पूरी पलक में सूजन आ जाती है न बरोनी की जड़ से पीप आने लगती है।

इलाज :

(१) अगर सिर्फ फुन्सी हो तो गर्म पानी से आँखों को दिन में ५, ६ बार धोना चाहिए।

(२) सल्फासिटामाइड की बूँदें या टेरामाइसिन आँखों का मल्हम लगाना चाहिए।

(३) अगर फुन्सी पक गयी हो व मवाद का सिरा दिखाई दे तो वहाँ स्थित बरोनी को उखाड़ देना चाहिए व किसी छोटे चाकू (Scalpal) से चीरा लगाकर पीप निकाल देना चाहिए। (जो कि कुछ क्षण तक मरीज को पीड़ादायक होगा।)

(४) टेट्रासाइक्लिन का मल्हम आँखों में लगाना चाहिए।

(५) ए. पी. सी. की गोली देना चाहिए।

(६) विटामिन बी. काम्पलेक्स व विटामिन सी. की गोली देना चाहिए।

८०. आँखें आना (Conjectivitis)

यह एक संक्रामक रोग है जो एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को होता है।

कारण :

यह रोग कीटाणुओं के द्वारा होता है।

लक्षण :

(१) आंखें लाल हो जाती हैं। (२) आँखों में से चिकना-चिकना तरल पदार्थ बहता है। (३) आँखों में दर्द होता है। (४) सुबह के समय आँखें चिपक जाती हैं क्योंकि सोते समय आंखें बन्द होने के कारण तरल पदार्थ बाहर निकल नहीं पाता है। (५) अगर इलाज न कराया जाय तो बीमारी बढ़ जाती है और तरल पदार्थ गाढ़ा बहने लगता है व इसमें पीप भी आने लगती है। (६) प्रकाश की ओर देखने में मरीज को तकलीफ होती है।

जटिलता (Complication) :

(१) कारनियल अल्सर (Cornial Ulcer) (२) अंधत्व।

इलाज :

(१) आँखों को कुनकुने पानी से बोरिक एसिड डालकर दिन में ३, ४ बार धोना चाहिए।

(२) सल्फासिटामाइड की बूंदें डालना चाहिए।

(३) रात में सोने के पहले टेट्रासाइक्लिन का मल्हम आँखों में लगाना चाहिए।

(४) आँखों पर पट्टी नहीं बाँधना चाहिए।

(५) सल्फाडायजन या सल्फाडायमिडिन की गोली दिन में तीन बार देनी चाहिए।

(६) ए. पी. सी. की गोली देना चाहिए।

★

८१. रोहे (Trachoma)

यह एक संक्रामक रोग है। इसे पंजाब में कुकरे गुजरात में खील व कई प्रान्तों में रोहे के नाम से जाना जाता है। इस रोग के कारण लगभग ४५ लाख लोग अपनी नेत्र ज्योती खो बैठे हैं।

प्रतिनिधि—क्लेमाइडिया ट्रकोमेटिस वायरस (Chlamidia Trachomatis virus)

उद्भवन काल—५ से १२ दिन।

संक्रमण का स्रोत (Reservoir) संक्रामित व्यक्ति विशेषकर १ से ५ वर्ष के बच्चे।

मेजमान (Host)—मनुष्य।

लक्षण :

(१) आँखों की ऊपर की पलक की अन्दर की सतह लाल हो जाती है।

(२) इसमें दाने दिखाई देते हैं जो साबूदाने के समान होते हैं। ये दाने घिरे-घिरे बड़े होते हैं व ५ मि. मी. तक बड़े हो जाते हैं। ये दाने गिर जाते हैं व Cecatrazation या स्कार (scar) रह जाता है। अतः ऊपरी पलक में सिकुड़न आ जाती है व भारी हो जाती है।

(३) आँखों से पानी बहता है।

(४) मरीज को चमकदार प्रकाश अच्छा नहीं लगता।

(५) कार्निया के ऊपर की तरफ खून की धमनियाँ व शिरायें फूल जाती (Pannus) है। कार्निया का ऊपर का भाग बादल (Cloudy) जैसा हो जाता है और यह धुँधलापन बढ़ता जाता है और पूरा कार्निया अपारदर्शी हो जाता है व व्यक्ति अन्धा हो जाता है।

इलाज :

बीमारी का पता लगते ही इलाज चालू कर देना चाहिए।

(१) सल्फासिटामाइड की बूँदें आँख में डालना चाहिए।

(२) टेट्रासाइक्लिन के केप्सूल देना चाहिए।

(३) मरीज को धूप का चश्मा लगाने की सलाह दीजिये। अगर रोग बढ़ गया हो तो, स्वास्थ्य केन्द्र पर भेज देना चाहिए।

बीमारी का फैलना :

१. संक्रमित व्यक्ति के सम्पर्क में आने से।
२. संक्रमित व्यक्ति के उपयोग की हुई वस्तुओं द्वारा।
३. मक्खियों द्वारा।

रोकथाम :

१. रोगी को अलग रखना चाहिए।
२. रोगी के उपयोग में लाई गई वस्तुओं का निसंक्रमण करना चाहिए।
३. मक्खियों से बचाव करना चाहिए।

८२. आँखों में मल्हम लगाने की विधि

दवा लगाने के लिए पहले अपने हाथों को धोकर साफ करलें। मल्हम की खुली ट्यूब को अपने दायें हाथ में पकड़े। बांये हाथ के अँगूठे से रोगी की नीचे की पलक को नीचे की ओर खींचें और अगुली से ऊपर की पलक को ऊपर उठा दें। रोगी को ऊपर की ओर देखने को कहें। दायें हाथ में पकड़ी हुई ट्यूब को हल्का दबायें, जो मल्हम निकले उसकी लगभग आधा इन्च लम्बी धार नीचे पलक के

भीतर लगा दें फिर पलकों को बन्द कर हल्के हाथ से मल दे। मल्हम पूरी आँख में फैल जायेगा। फिर रुई या किसी साफ कपड़े से आँख के बाहर लगा फालतू मल्हम पोंछ दें। इस बात का ध्यान रखें कि मल्हम लगाते समय ट्यूब का कोई हिस्सा आँख को न छूए। मल्हम लगाने के बाद ट्यूब का ढक्कन लगाकर उसे ठण्डी व किसी साफ जगह पर रख दें।

★

८३. कम दिखाई देना

ये तीन प्रकार के हो सकते हैं :

१. धब्बों का दिखाई देना

२. धुंधला दिखाई देना

३. अंधा।

केटरेक्ट—अधिक आयु में अन्धापन केटरेक्ट के होने से हो जाता हैं। आँखों की पुतलियाँ सफेद दिखाई देने लगती हैं। रोगी को धुँधला दिखाई देता है। ऐसी दशा में रोगी को डाक्टर के पास भेजिये जिसमें आपरेशन हो सके और आँखों की रोशनी फिर वापस आ सकती है।

धुंधला या कम दिखाई देने पर चश्मे के प्रयोग से ठीक दिखाई दे सकता है।

★

८४. रतोंधी

यह रोग विटामिन ए की कमी से हो जाता है। सामान्यतः आँखों में नमी रहती है व आँखों के झपकने पर यह नमी पूरी आँखों में फैल जाती है। यह आँखों को स्वच्छ रखती है व संक्रमण से बचाती है।

लक्षण :

१. आँखें सूखी दीखती हैं व आँखों में चमक दिखाई नहीं देती।

२. तेज रोशनी सहन नहीं होती है।

३. आँखों में छोटे, सफेद धब्बे से पड़ जाते हैं।

४. मरीज को अँधेरे में दिखाई नहीं देता।

इलाज :

१. रोगी को पपीता, आम, गाजर, धनियाँ, पालक अधिक खाने की सलाह दीजिए।

२. एरोविट (Vit A) की १ गोली सुबह व १ गोली शाम ७ दिन तक दीजिये।

३. मेसिव ए का इन्जैक्शन लगाइये।

४. ५००० से ६००० यूनिट प्रतिदिन विटामिन ए देना चाहिए।

५. शार्क लिवर आइल या काड लिवर आइल देना चाहिए।

बचाव :

१ से ५ वर्ष के बच्चों को २ लाख यूनिट विटामिन ए दिया जाता है।

★

८५. आँखों में चोट लगना

आँखों में चोट निम्न कारणों से लग सकती है :

(१) लोहे, पत्थर, सीमेन्ट आदि के टुकड़े या कणों से।

(२) किसी प्रकार के पेड़ पौधे के कांटे से जख्म होना।

(३) आँख में रासायनिक पदार्थ जैसे कीटनाशक दवा, एसिड आदि पड़ जाने से जख्म हो सकता है।

लक्षण :

(A) **आँख में बाहरी वस्तु का होना—**

(१) रोगी आकर बतायेगा कि आँख में कुछ गिरा है।

(२) बाह्य वस्तु आँख में दिखाई दे सकती है।

(३) आँखों का लाल होना।

(४) अत्यधिक पानी आना।

(५) दर्द और जलन होना।

(B) **जख्म होना—**

(अ) मरीज आकर बतायेगा कि कांटा लगा है या अन्य वस्तु गिरि है।

(ब) आँखों में जख्म दिखाई देगा।

(स) अत्यधिक पानी आयेगा।

(द) दर्द होगा।

इलाज :

कुनकुने पानी से आँख धोइए।

साफ पेड से आँख ढकिये।

टेरामाइसिन की मल्हम आँखों में लगाइये।

मरीज को स्वास्थ्य केन्द्र पर भेज दीजिये।

★

८६. कान के रोग

कान एक महत्वपूर्ण अंग है। यह सुनने के काम आता है। कान में दर्द, पीप आना, बहरापन इत्यादि रोग हो सकते हैं। कान, नाक, के पिछले भाग से जुड़ा हुआ है इस कारण गले और नाक का किसी प्रकार का संक्रमण कान में दर्द पैदा कर सकता है। यह तकलीफ ज्यादातर बच्चों में पाई जाती है और यह अधिकतर गला खराब होने पर होता है। बहुत से लोग कान में काड़ी, पिन आदि वस्तुएँ डालते हैं, इससे तकलीफ हो सकती है और कान का परदा फट सकता है। कान दिमाग के बहुत करीब है और कान की हड्डी का संक्रमण दिमाग तक पहुँच सकता है।

रोग के लक्षण—कान के रोग के निम्नलिखित लक्षण हैं।

८७. कान में दर्द

कारण :

(१) कान में दर्द किसी प्रकार के संक्रमण से हो सकता है।

(२) गले के संक्रमण से हो सकता है।

(३) कान की झिल्ली में सूजन आ जाती है व लाल हो जाती है।

(४) कान में मेल (wax) जमा होने से हो सकता है।

(५) कान में बाहरी वस्तु जाने से हो सकता है।

आप क्या करें :

(१) पता करिये दर्द कबसे है।

(२) दर्द अकस्मात हुआ या धीरे-धीरे हुआ।

(३) कान के अन्दर कोई बाहरी वस्तु गयी थी या नहीं।

(४) बुखार है या नहीं।

(५) कान में से पीप निकलती है क्या ?

(६) देखने की कोशिश कीजिये कि कान के अन्दर लाल दिखाई देता है, पीप आता है या बाहरी वस्तु है क्या ?

(७) गले में किसी प्रकार की खराश है क्या ?

(८) चक्कर आते हैं क्या ?

इलाज :

(अ) यदि रोगी को सिर्फ कान में दर्द हो—

(१) सल्फासिटामाइड की बून्द डालिये।

(२) ए. पी. सी. की गोली दीजिये।

(ब) अगर कान में बाहरी वस्तु हो तो—

(१) कान धोने की सीरींज द्वारा कुनकुने पानी में पोटेशियम परमेगनेट डालकर कान धोइये, बाहरी वस्तु निकल जायेगी।

(२) सल्फासिटामाइड की बूँदें डालिए।

(३) ए. पी. सी. की गोली दीजिये।

कान में पीप निकलती हो तो :

(१) कान को रुई व काड़ी से साफ करिये।

(२) सल्फासिटामाइड या क्लोरोमाइसिन की ड्राप डालिये।

(३) सल्फाडाइजन की गोलियाँ दीजिये।

उपरोक्त इलाज ४-५ दिन तक करिये।

गले में खराश हो तो :

(१) नमक के पानी से कुल्ले की सलाह दीजिये।

(२) सल्फाडायजन की गोली दीजिये।

(३) ए. पी. सी. की गोली दीजिये।

चक्कर आते हों तो :

डिलिगान की गोलियाँ दीजिये।

●

८८. घाव तथा रक्त स्राव

घाव—त्वचा के कटने या कुचल जाने से घाव हो जाता है। इसमें से रक्त बहता है क्योंकि रक्त की नलियाँ कट जाती हैं तथा इनके द्वारा कीटाणु और अन्य हानिकारक पदार्थ शरीर में पहुँचने लगते हैं।

घाव चार प्रकार के होते हैं :

(१) **कटे घाव** (Incised wound)—ये घाव तेज धारदार वस्तु जैसे—चाकू, छुरी, ब्लेड इत्यादि के द्वारा होते हैं। इनमें रक्त वाहक नलियों के कट जाने से रक्त बहता है।

(२) **चिथरे घाव** (Lacerated wound)—इन घावों के किनारे टेड़े-मेड़े होते हैं। ये घाव काँच के टुकड़, पशुओं के पंजे इत्यादि से होते हैं। इनमें खून कम बहता है क्योंकि इनमें रक्त वाहक नलियाँ कटती नहीं हैं।

(३) **कुचले घाव** (Contused wound)—ये घाव किसी कड़क व बोंठ हथियार से चोट लगने पर हो जाते हैं, जैसे—लाठी, पत्थर इत्यादि इन घावों में अंग का भाग कुचल जाता है।

(४) **छिदे घाव** (Punctured wound)—ये घाव ऊपर से छोटे होते हैं परन्तु गहरे होते हैं। ये घाव सुई, चाकू, छुरी जैसे नुकीले हथियारों से आते हैं।

रक्त स्राव (Haemorrhage) :

(१) रक्त स्राव धमनी से या शिरा से या दोनों से हो सकता है। क्योंकि धमनियाँ व शिरायें पास-पास रहती हैं।

(२) **धमनी**—इससे निकला रक्त चमकीला लाल होता है। रक्त हृदय की धड़कन के साथ-साथ झटके से बाहर निकलता है।

(३) **शिरा**—इससे निकला रक्त गहरा लाल होता है और लगातार निकलता रहता है।

(४) धमनी व शिरा का मिला हुआ रक्त घाव के तल से उमड़ता हुआ निकलता है।

घाव को हमेशा संक्रमण से बचाना चाहिए। संक्रमण कीटाणुओं के कारण होता है। ये कीटाणु मिट्टी, पानी, त्वचा और मनुष्य तथा पशुओं की आँतों में रहते हैं।

कीटाणुओं को बढ़ने के लिए उचित भोजन और अनुकूल ताप की आवश्यकता होती है। घाव के स्थान पर उन्हें अनुकूल परिस्थितियाँ मिलती हैं। अतः जब वे घाव में प्रवेश पाते हैं तो तुरन्त ही बढ़ने लगते हैं तथा स्थानीय लाली व सूजन हो जाती है व बाद में पीप हो जाता है। अतः इनसे बचाने के लिए घाव का ड्रेसिंग करना चाहिए।

ड्रेसिंग—घाव की कीटाणुओं से रक्षा करने की विधि को ड्रेसिंग कहते हैं।

शरीर की कोशिकाओं में अपने आप अच्छा होने की ताकत होती है। अतः ड्रेसिंग के द्वारा घाव की कीटाणुओं से रक्षा की जाती है।

अतः संक्रमण को रोकने के लिए स्वच्छता अत्यन्त आवश्यक है इसलिए घाव को छूने से पहले अपने हाथ अच्छी तरह साबुन व पानी से धोने चाहिए व फिर उबले हुए पानी में रुई डालकर उससे घाव की सफाई करना चाहिए व फिर कोई भी एण्टिसेप्टिक मलहम लगाकर उस पर साफ पेड रखकर, साफ पट्टी बाँधना चाहिए।

●

८९. रक्त स्राव पर नियन्त्रण

सीधे दबाव से :

(१) घाव के जिस भाग के रक्त निकल रहा हो उस पर गद्दी लगाकर अंगूठे अथवा अंगुलियों से सीधा दबाव डालिये। यदि रक्त प्रवाह का स्थान दिखाई न दे तो फिर सारे घाव के क्षेत्र को पकड़कर कसकर दबाइये। इससे प्रवाह बन्द हो जायेगा।

(२) एक पर्याप्त साइज की पट्टी तथा गद्दी घाव पर रखिए और कसकर दबा दें और पट्टा को स्थिर कर दें। गहरे घावों में और अधिक गद्दी की आवश्यकता पड़ सकती है जिसे पहली गद्दी के ऊपर रखिये और गद्दी को कसकर स्थिर कर दें। अगर रक्त स्राव न रुके तो कुटिल दबाव डालिये।

(क) **दबाव स्थान** (Pressure Point)—दबाव स्थान वह है जहाँ एक धमनी को उसके नीचे हड्डी के ऊपर दबाया जा सकता है।

(ख) **केरोटिड दबाव स्थान**—केरोटिड धमनियाँ अवारटा की शाखाएँ हैं और वायु नली के दोनों ओर ऊपर जाकर दिमाग को, सिर के क्षेत्र को रक्त प्रदान करती हैं व दबाव डालने के लिए अंगूठे को स्वर कोष (Larinx) तथा स्टरनो-मेस्टाइड माँस-पेशी के बीच में स्थित गड्ढे में रखे। अब धमनी को नीचे की ओर दबाइये। कुछ प्रकरणों में दूसरे अंगूठे से घाव के ऊपर भी दबाव डाला जाये ताकि गर्दन की बड़ी शिरा (Juglar vein) जो कि कैरोटिड धमनी के साथ चलती है और जो एक साथ भी कट जाती है। उसके रक्त बहाव को भी रोका जा सके।

(ग) **हँसली के नीचे दबाव स्थान** (Sub clavian pressure point)—सब क्लेवियन धमनियाँ अवारटा की शाखाएँ हैं और वह हँसली की हड्डी के अन्दर की ओर के सिरों के पीछे से निकल कर पहली पसली के समाने से होती हुई बगलों को जाती है। इस पर दबाव डालने के लिए हँसली की हड्डी के ऊपर के गड्ढे में एक अंगूठे को दूसरे पर रखकर दबाएँ और धमनी को पहली पसली पर दबा दें।

(घ) **ब्रेकियल दबाव स्थान**—ब्रेकियल धमनियाँ बायसेप माँसपेशी के भीतरी किनारों के साथ-साथ स्थित है। कोट के बाजू की भीतरी सिवन ही उसकी ठीक-ठीक स्थिति बताती है। दबाव के लिए रोगी के बाजू से नीचे अपनी अंगुलियाँ ले जाइये और धमनी को ह्यूमरस हड्डी के साथ दबाइये।

(ङ) **फिमोरल दबाव स्थान** (Femoral pressure)—यह जाँघ के मोड़ के ठीक मध्य बिन्दु में प्रतीत होती है। यह दोनों निचले अंगों को रक्त प्रदान करती है। इस पर दबाव डालने के लिए घायल के घुटने को मोड़कर दोनों हाथो से उसके जाँघ को पकड़ लीजिये और सीधा नीचे से जाँघ के मध्य से दोनों अंगूठे से दबाइये। अंगूठा एक के ऊपर दूसरा पड़ा हो तथा कूल्हे के किनारे से लगा हो।

★

६०. मरहम पट्टी तथा पट्टियाँ

पट्टी के उपयोग के कारण :

(१) रक्त प्रवाह को रोकने के लिए।

(२) घाव की अधिक चोट से रक्षा करने के लिए।

(३) संक्रमण को रोकने के लिए।

(४) मरहम पट्टी को स्थिर करने के लिए।

(५) टूटी हड्डियों को हिलने-डुलने से रोकने के लिए।

(६) सूजन कम करने के लिए।

त्रिकोनी पट्टी :

लट्ठे के एक मीटर या ३८ इंच चोकोर टुकड़े के पहले और तीसरे सिरे को दो भागों में काटने से दो त्रिकोनी पट्टी बनती है। सबसे लम्बे सिरे को आधार (Base) व दो किनारों को कौर (sides) कहते हैं। ऊपर वाले कोने को पाइन्ट (point) व अन्य दो को अन्तिम कोना कहते हैं।

त्रिकोनी पट्टी का उपयोग :

(१) **पूरी खुली पट्टी के रूप में**—जैसे—छाती पर।

(२) **चौड़ी पट्टी के रूप में**—इसमें पट्टी को आधार की तरफ करना चाहिए।

(३) **सकरी पट्टी**—चौड़ी पट्टी की तह आधार की ओर लगाना।

(४) **बाजू लटकाने की झोली।**

उपयोग :

(१) अग्रबाहु तथा हाथ को सहारा देती है।

(२) पसली की हड्डी के टूटने पर ऊपरी भुजा की चोट में व अग्रबाहु की हड्डी टूटने पर।

बनाने की विधि :

(१) रोगी की तरफ मुँह करके खड़े होइये।

(२) त्रिकोनी पट्टी के एक छोर को घायल के उस कन्धे पर रखिये जिधर चोट न हो और पट्टी का सिरा गरदन के पीछे से निकाल कर चोट वाले कन्धे पर रखिये।

(३) अब पट्टी के सिरे (point) को कोनी के बाहर तक ले जाइये।

(४) अब दूसरे लटकने छोर को ले जाकर सिरे (point) से रीफ गांठ द्वारा हंसिली की हड्डी के ऊपर गहरे स्थान पर बांधिये।

कालर-कफ झोली :

उपयोग—यह झोली हंसली की हड्डी की टूट में लगाई जाती है।

विधि—(१) घायल व्यक्ति के अग्रबाहु को सीने पर इस प्रकार रखिये कि अंगुलियाँ कंधे की ओर हो जाये व हथेली छाती की हड्डी पर हो। (२) अग्रबाहु पर खुली पट्टी ऐसे रखिये कि एक छोर हो. (३) हाथ के ऊपर हो तथा सिरा (Point) कोहनी के बाहर निकला रहे। बाह को संभालकर पट्टी के आधार को हाथ और अग्रबाहु के नीचे से निकाल कर और निचले छोर को मुड़ी हुई कोहनी के नीचे से निकालते हुए पीठ पर से होते हुए स्वस्थ कन्धे के ऊपर निकाल कर हंसली के हड्डी के ऊपर के गड्ढे में ऊपर के पहिले सिरे से बाँधिये। उसके बाद कोहनी के ऊपर के खुले सिरे को सामने लाकर अग्रबाहु और पट्टी के बीच में लाइये और झोली को बाजू के ऊपर लाकर पिन लगा दीजिये।

गोल पट्टियाँ :

पट्टी बाँधने के साधारण नियम :

१. घायल की ओर मुँह करके खड़े होइये।

२. जब बांये अंग की पट्टी करनी हो तो पट्टी के सिरे को दायें हाथ से पकड़िये तथा दाहिने अंग में पट्टी करनी हो तो सिरे को बायें हाथ में पकड़िये।

३. स्वतन्त्र सिरे के बाहरी भाग को घाव के स्थान पर रखकर बाँधिये।

४. पट्टी को नीचे से ऊपर की ओर लपेटिये तथा अन्दर से बाहर की ओर अंग के सामने बाँधिये।

५. पट्टी की प्रति तह इस प्रकार लपेटिये कि पहले चक्कर का $\frac{2}{3}$ भाग ढक जाये।

६. पट्टी न अधिक कसकर व न अधिक ढीली बाँधी जाय।

७. जब पूर्ण पट्टी हो जाये तो सेफ्टी पिन से स्थिर कर दीजिये।

पट्टी बाँधने की विधि :

१. **साधारण पेचदार**—यह एक सी मोटाई वाले भाग में बाँधी जाती है जैसे कलाई, अग्रबाहु, अंगुली इत्यादि। पट्टी इन भागों पर बाँधते समय प्रत्येक चक्कर में $\frac{2}{3}$ भाग ढक लेती है व पेच के समान दिखाई देती है।

२. **उलटे पेच की पट्टी**—इस विधि में प्रति चक्कर में पट्टी अपने ही ऊपर नीचे की ओर उलटा देते हैं। यह पट्टी उन अंगों पर की जाती है जिनकी मोटाई बदलती रहती है।

३. **अंग्रेजी के आठ (8) अंक के आकार की पट्टी**—यह पट्टी जोड़ पर या जोड़ के निकट वाले भाग पर की जाती है। इस विधि में पट्टी को अंग के आस-पास ले जाया जाता है। एक बार ऊपर तथा एक बार नीचे की ओर, और फंदे अंग्रेजी के ८ (8) के आकार के बन जाते हैं।

४. **स्पाइका** (Spica)—यह भी एक एक प्रकार से (8) के अंश के आकार की पट्टी है।

●

९१. फोड़े-फुन्सी

कारण :

फोड़े फुन्सियां जो बच्चे साफ नहीं रहते है या कुपोषित होते हैं, उन्हें पाई जाती हैं। यह अधिकतर कीटाणुओं जैसे स्ट्रेप्टोकोकाय, स्टेफायलोकोकाय इत्यादि के संक्रमण से होती है। यह छूत के कारण होती है।

लक्षण व चिन्ह :

१. सूजन, २. लाली, ३. दर्द, ४. बुखार, ५. सिर दर्द, ६. पीप होना, ७. खुजली होना।

इलाज :

१. अंग को आराम दें।

२. स्थान को उबले हुए पानी से डिटाल की २ बूँद डालकर साफ रूई से साफ करें।

३. मलहम जैसे सोफ्रामाइसिन या फ्यूरासिन या बरनाल या सल्फा मरहम लगाये व साफ पट्टी बांध दें।

४. मरहम की जगह जेनसन बायोलेट (नीली दवा १%) या मरक्यूरोक्रोम (लाल दवा २%) या पीली दवा एक्रिफ्लेबिन १ : १००० भी उपयोग में लायी जा सकती है।

५. सल्फाडाइजन की १-१ गोली दिन में ३ बार या वजन के अनुसार बच्चों को दें।

६. यदि दर्द हो तो ए. पी. सी. की गोली १-१ दिन में ३ बार दें या बच्चों को वजन के अनुसार दें।

७. यदि २, ३ दिन में आराम न हो तो टेरामाइसिन या सुबामाइसिन या पेनिसिलिन की गोलियाँ, केप्सूल या इन्जेक्शन दें।

●

९२. लू लगना

सामान्यतः यह गर्मी के मौसम में धूप में बाहर निकलने के कारण लग जाती है।

लक्षण :

१. तेज बुखार, २. सिर दर्द, ३. अधिक प्यास, ४. बैचेनी, ५. घबराहट, ६. उल्टी हो सकती है, ७. आँखों में जलन होती है व लाल हो जाती है।

इलाज :

१. रोगी को छाँव में या ठण्डी जगह लेटाना चाहिए।

२. उसके कपड़े ढीले करना चाहिए।

३. उसके बदन पर जैसे सिर का आगे का भाग, तलवे, हथेली इत्यादि पर बर्फ अथवा ठण्डा पानी मलना चाहिए या पट्टी रखना चाहिए।

४. थोड़ी देर बाद ग्लूकोज ठण्डे पानी में देना चाहिए या नीबू का रस भी दे सकते हैं।

★

९३. पेट में दर्द
(Pain in abdomen)

पेट एक जादू का पिटारा है इसमें कई अंग होते हैं। अतः दर्द का कारण ज्ञात करना बहुत ही मुश्किल होता है। पेट के अन्दर के मुख्य अंग यकृत, तिल्ली, गुर्दे,

अमाशय, छोटी आँत, बडी आँत पेनक्रियाज, पित्ताशय, मूत्राशय व स्त्रियों में गर्भाशय व अंडाशय व पुरुषों में प्रोस्टेट इत्यादि होते हैं। उपरोक्त अंगों में जब कोई तकलीफ हो जाती है या रुकावट आ जाती है या संक्रमण हो जाता है तो पेट में दर्द होता है।

जाँच :

सर्वप्रथम रोगी से हिस्ट्री (जानकारी) लेना चाहिए जैसा की पहले अध्याय में बताया गया है। फिर रोगी की जाँच करनी चाहिए :

१. मरीज को टेबल पर पीठ के बल सीधा लेटाना चाहिए।

२. मरीज के पेट व पेड़ू पर से कपड़े हटा देना चाहिए।

३. सर्वप्रथम मरीज के पेट को देखिये (अ) कोई फोड़ा या उभार है अथवा नहीं (ब) नसें उभरी हुई हैं अथवा नहीं (स) क्या पेट में ऊपर व बीच के भाग में धड़कन (Pulsation) है (द) क्या पेट फूला हुआ है।

४. फिर रोगी से कहिये की वह दर्द का स्थान एक अँगुली के द्वारा बताये।

पाल्पेशन (Palpation)—हाथों से जाँच करने की विधि :

१. पहले दोनों हाथों को आपस में रगड़िये जिससे वे कुछ गर्म हो जायें।

२. फिर मरीज को पेट में जिस भाग में दर्द होता है उसके सामने वाले भाग पर अपने दाहिने हाथ की चारों अंगुलियाँ व छोटी अंगुली के ऊपर की हथेली धीरे से रखिये व मरीज के चेहरे की ओर देखिये (अगर आपके दबाने से दर्द होगा तो रोगी के चेहरे पर भाव आयेंगे) फिर उसके ऊपर का हिस्सा इसी विधि से दबाइये व देखिये। सबसे बाद में दर्द वाला हिस्सा दबाइये व देखिये। बाद में इसी विधि से थोड़ा जोर से दबाकर जांच करिये।

यकृत (Liver) **की जांच :**

यकृत दाहिनी तरफ पसलियों के पीछे स्थित है :

१. मरीज के दाहिने तरफ खड़े होइये। अपना मुँह मरीज के मुँह की तरफ होना चाहिए।

२. पेट के दाहिने व ऊपर की तरफ पसलियों के नीचे अपने दाहिने हाथ की छोटी अंगुली की तरफ की हथेली रखिये व दबाव नीचे व ऊपर की तरफ दीजिये।

३. मरीज को कहिये कि वह मुँह खोलकर जोर से श्वांस ले। अगर यकृत बड़ा हुआ होगा तो हथेली को महसूस होगा। देखिये यकृत कड़क है या नरम है व मरीज से पूछिये श्वांस लेने में उसे जहाँ पेट दबा रखा है दर्द होता है या नहीं। अगर दर्द होता है तो यकृत में सूजन है।

पित्ताशय की जाँच करने की विधि (Galbladder) :

अपने दाहिने हाथ का अँगूठा पेट में ऊपर व दाहिनी तरफ पसलियों के नीचे पसलियों की लाइन में रखिये व हाथ की चारों अँगुलियाँ मरीज की पसलियों पर

खड़ी रखिये । अंगूठे को थोड़ा नीचे व ऊपर की तरफ दबाव दीजिये। मरीज को कहिये की वह जोर से श्वास ले । अगर मरीज के पित्ताशय में सूजन होगी तो वह श्वांस पूरी तरह नहीं ले पायेगा क्योंकि पित्ताशय जैसे ही अँगूठे से टकरायेगा मरीज को दर्द होगा और मरीज श्वांस वापस छोड़ देगा इसे मरफीज साइन (Murphy's Sign) कहते हैं ।

तिल्ली (Spleen) :

यह बाँये तरफ पसलियों के पीछे स्थित है। इसको जाँच हेतु मरीज को दाहिनी करवट लेटाइये व अपने दाहिने हाथ की हथेली मरीज के पेट के बाँये व ऊपर के भाग में पसलियों के नीचे रखिये व दबाव ऊपर व अन्दर की तरफ दीजिये व मरीज से कहिये कि वह श्वाँस ले । अगर तिल्ली बड़ी होगी तो हथेली में महसूस होगी । यह नाभि की ओर बढ़ती है ।

गुर्दे (Kidney) :

ये दो होते हैं एक दाहिनी तरफ व दूसरा बाँयी तरफ । दाहिनी तरफ के गुर्दे की जाँच हेतु मरीज के दाहिनी ओर खड़े होना चाहिए । अपना बाँया हाथ पीठ की तरफ पसलियों के नीचे रखना चाहिए व दाहिना हाथ पेट पर दाहिने व ऊपर की तरफ रखना चाहिए । बाँये हाथ से दबाव ऊपर की ओर व अन्दर की तरफ देना चाहिए व दाहिने हाथ से दबाव नीचे की ओर व ऊपर की तरफ देना चाहिए । फिर मरीज से कहिये वह श्वाँस ले । दाहिना गुर्दा अगर बड़ा हुआ होगा तो महसूस होगा । बाँये गुर्दे की जाँच हेतु मरीज के बाँयी ओर खड़े होना चाहिए व अपना दाहिना हाथ मरीज के पीठ की तरफ पसलियों के नीचे रखना चाहिए व दबाव ऊपर की ओर व अन्दर की ओर देना चाहिए व बाँया हाथ मरीज के पेट के बाँयी ओर व ऊपर की ओर पसलियों के नीचे रखना चाहिए व दबाव नीचे व ऊपर होना चाहिए व मरीज को कहिये कि वह श्वाँस ले अगर बाँया गुर्दा बडा होगा तो महसूस होगा ।

★

६४. अमाशय का छाला
(Peptic Ulcer)

साधारणतया: यह छाला भोजन नली (Oesophagus) के नीचे की तरफ, अमाशय में या ड्यूडिनियम (Deodenum) में पाये जाते हैं। यह अमाशय की श्लेष्मा झिल्ली (Mucous Mambrance) पर तेजाब की प्रतिक्रिया के कारण होता है। साधारणतया अमाशय में तेजाब रिसता रहता है व अमाशय की झिल्ली से म्यूकस नामक द्रव रिसता है । जो अमाशय की झिल्ली को घाव होने से बचाता है । परन्तु जब तेजाब ज्यादा मात्रा में बनता है तो अमाशय की झिल्ली में घाव हो जाता है जिसे छाला कहते हैं ।

कारण :

(१) जब रक्त का दौरा अमाशय की झिल्ली में कम हो जाता है।

(२) अगर व्यक्ति कमजोर हो।

(३) यह रोग वशांनुगत भी हो सकता है।

(४) यह रोग ओ (O) ग्रुप के खून वालों को अधिक होता है।

(५) यह रोग मानसिक तनाव वाले व्यक्तियों में अधिक पाया जाता है।

लक्षण :

(१) भूख कम लगती है व खाना खाने की इच्छा नहीं होती है।

(२) पेट के ऊपर व बीच में दर्द होता है, दर्द हल्का या तेज दोनों तरह का हो सकता है।

(३) दर्द खाना खाने के बाद या दूध पीने से कम हो जाता है तथा रात को २, ३ बजे के बीच दर्द होता है क्योंकि उस समय पेट खाली हो जाता है।

परीक्षण :

रोगी को सीधा लेटाइये व रोगी के दर्द का स्थान पूछिये व जाँच करिये।

इलाज :

(१) रोगी को पूर्ण विश्राम की सलाह दीजिये।

(२) मिर्च, मसाले व तली चीजें व गर्म चीजें बन्द कर दीजिये। दूध ज्यादा पीने की सलाह दीजिये। दूध ठण्डा या गुनगुना होना चाहिए।

(३) एन्टएसिड की गोलियाँ जैसे एल्यूड्राक्स, कोलेण्ट्रिल इत्यादि दिन में ४ बार दीजिये व मरीज को कहिये ये गोलियाँ मुँह में रखकर चूसे।

(४) बेलाडोना या एट्रोपिन या एण्ट्रेनिल डुपलेक्स की एक गोली सुबह व एक गोली शाम को दीजिये।

(५) अगर मरीज को चिन्ता रहती हो तो ट्रंकलाइजर की गोली जैसे पेक्सम रात को सोते वक्त दीजिये।

जटिलता (Complication) :

रक्त स्राव (Haemorrhage)—छाले में से रक्तस्राव हो सकता है जो पाखाने की जाँच से पता चलता है।

अमाशय व छोटी आँत के जोड़ पर रुकावट (Pyloric obstraction)—छाले के कारण अमाशय के निचले भाग पर सिकुड़न हो जाती है अतः अमाशय की वस्तु आँत में नहीं जा पाती। अल्सर-केन्सर (Ulcer-Cancer) कभी-कभी छाला केन्सर में परिवर्तित हो जाता है।

छेद होना (Perforation)—छाला फूट जाता है व अमाशय की वस्तुएँ पेट में पहुँच जाती हैं।

६५. अपेन्डिसाइटिस (Appendicitis) [अपेन्डिक्स में सूजन]

यह बीमारी सामान्यतः सभी उम्र के व्यक्तियों में पाई जाती है। इस बीमारी में अपेन्डिक्स जो कि छोटी आँत व बड़ी आँत के जुड़ने के स्थान पर एक ६ इंच लम्बी नली जैसा होता है, में सूजन आ जाती है।

कारण :

१. फिकोलिथ (Fecolith) २. बाहरी वस्तु जैसे कृमि इत्यादि इनसे रुकावट होने पर संक्रमण हो जाता है व सूजन आ जाती है व अपेन्डिक्स की दीवाल में नेक्रोसिस हो जाता है व परफोरेसन (कटना) हो जाता है।

लक्षण :

१. पेट के ऊपर और बीच में या नाभि के आसपास जोरों से दर्द होता है व उल्टी होती है।

२. १२ घन्टे में दर्द पेट के दाहिने व नीचे की तरफ होने लगता है। दर्द चलने पर व खांसने पर अधिक होता है।

३. घबराहट होती है व हल्का-हल्का ज्वर हो जाता है।

४. कब्जियत हो जाती है।

परीक्षण :

मरीज को सीधा पीठ के बल लेटाइये। मरीज से पूछिये उसे दर्द किस स्थान पर होता है एक अंगुली से बताइये। जिस स्थान पर वह बताता है उसके सामने वाले भाग से दाहिने हाथ की छोटी अंगुली की तरफ की हथेली से जाँच प्रारम्भ करिये। दर्द के स्थान पर सबसे बाद में जाँच करिये।

राउजिंग साइन (Rousing's sign)—मरीज के पेट के बांये व नीचे के भाग को हथेली से दबाइये व रोगी से पूछिये उसे पेट में किस स्थान पर दर्द होता है। रोगी दर्द का स्थान पेट के दाहिने व नीचे के भाग में बतायेगा।

मेकबर्निज साइन (Mc Burney's sign)—एक रेखा नाभि से इलायकक्रिस्ट (चूतड़ की हड्डी का ऊपर की ओर उठा भाग) तक खींचिये व इसे ३ भागों में विभाजित कर दीजिये। बाहर की तरफ के पहले भाग के ऊपर अपने अंगूठे के पास वाली अंगुली रखिये व थोड़ा दबाइये व मरीज के चेहरे की तरफ देखिये। यहाँ रोगी को बहुत दर्द होगा सो दबाते ही वह चिल्ला पड़ेगा।

इलाज :

१. रोगी को पूर्ण आराम देना चाहिए।

२. रोगी को मुँह से कुछ नहीं देना चाहिए।

३. रोगी को (डिस्ट्रीक्ट हास्पीटल) जिला अस्पताल जाने की सलाह देना चाहिए। जिला अस्पताल में डॉक्टर साहब मरीज को जाँच करेंगे व उसी समय निम्न व (Inv estigation) करेंगे।

खून की जाँच—इसमें खून में सफेद कण बढ़ जाते हैं।

इलाज :

१. Intravenous fluid शिरा के द्वारा ग्लूकोज सलाइन देंगे।

२. स्ट्रेप्टोपेनिसिलिन या टेरामाइसिन या टेट्रासाइक्लिन का १०० मि. ग्रा. का इन्जेक्शन देंगे।

३. बरालगन (Baralgan) या एवोफोर्टान (Avofortan) ३ सी. सी. का इन्जेक्शन देंगे।

४. नाक से पेट में ट्यूब डालेंगे व पेट का फ्लूड (fluid) हर आधे घण्टे में बाहर निकालेंगे।

५. रोगी की नाड़ी, बुखार प्रत्येक आधे घण्टे में देखेंगे अगर नाड़ी तेज होगी या दर्द कम नहीं होगा तो उसी समय उसे आपरेशन थियेटर में ले जाकर अपेन्डिसेक्टामी करेंगे।

जटिलता (Complication) :

१. **परफोरेशन** (Perforation)—कभी-कभी अपेन्डिक्स फूट जाता है अतः मरीज का ८ घण्टे में आपरेशन हो जाना चाहिए।

२. **अपेन्डिकुलर एबसेस** (Appendicular absess)—इसमें पेट के दाहिने व नीचे की तरफ एक मास (Mass) जैसा बन जाता है जो ६-७ दिन इलाज लेने पर ठीक हो जाता है।

★

९६. अमाशय में सूजन (Gastritis)

यह बीमारी आम लोगों में पाई जाती है।

(अ) एक्यूट गेस्ट्राइटिस (Acute Gastritis) :

यह अमाशय की श्लेष्मा झिल्ली पर किसी वस्तु के बार-बार सम्पर्क मे आने पर या शरीर में किसी संक्रमण के कारण अमाशय की दीवारों पर अकस्मात सूजन आ जाती है अतः अमाशय की दीवार लाल हो जाती है।

कारण :

(१) अगर भोजन नियमित रूप से नहीं लिया जाता है व भोजन को चबा-चबा कर नहीं किया जाता है।

(२) शराब का अधिक व बार-बार उपयोग करने से। शराब अमाशय की श्लेष्मा झिल्ली के बार-बार सम्पर्क में आती है व············(irritate) करती है व अमाशय में सूजन आ जाती है।

(३) **जीवाणु**—अगर भोजन के साथ जीवाणु प्रवेश कर जाते हैं।

(४) दवाइयाँ—कुछ दवाइयाँ श्लेष्मा झिल्ली को..........(irritate) करती हैं व सूजन आ जाती है। जैसे एण्टीबायोटिक (क्लोरमफेनिकाल टेरामाइसिन, सुबामाइसिन, टेट्रासाइक्लिन, डाक्सीसाइक्लिन इत्यादि), सेलिसलेट (ए. पी. सी. एस्प्रो, डिस्प्रिन, नोवेलजिन, एनालजीन इत्यादि) फिनाइल बुराझोन (बुटारिन, बुटाझालिडिन, इरगाफाइरिन इत्यादि) कार्टिजोन (डेकाड्रान इत्यादि)।

(५) कुछ संक्रामक रोगों के समय भी अमाशय की झिल्ली में सूजन आ जाती है।

(६) अगर अमाशय में छाला हो तो भी अमाशय की झिल्ली में सूजन आ जाती है।

Pathology :

यह सूजन पूरे अमाशय में भी आ सकती है अथवा अमाशय की दीवाल के कुछ भाग में भी आ सकती है।

लक्षण :

(१) कभी-कभी कोई लक्षण दिखाई नहीं देते हैं और बीमारी की जानकारी गेस्ट्रोस्कोपिक एक्जामिनेशन (Gastroscopic examination) के पश्चात् होती है।

(२) किसी-किसी को पेट के ऊपर व बीच में भारीपन महसूस होता है या दर्द होता है।

(३) भूख नहीं लगती है।

(४) घबराहट व उल्टियाँ होती हैं।

(५) पेट फूल जाता है।

(६) किसी-किसी को उल्टी में खून आता है।

जाँच (Investigation) **:**

गेस्ट्रोस्कोपी (Gastroscopy)—गेस्ट्रोस्कोप से देखने पर अमाशय की दीवाल पर की श्लेष्मा झिल्ली लाल दिखाई देगी व उसमें उभार आ जाता है व श्लेष्मा रस से भरे दाने-दाने दिखाई देते हैं।

इलाज :

(१) मरीज को आराम करना चाहिए।

(२) मरीज को भोजन नियमित रूप से खूब चबा-चबा कर करना चाहिए। भोजन में मिर्च-मसालों का उपयोग नहीं करना चाहिए।

(३) तम्बाकू किसी भी रूप में, व अल्कोहल का उपयोग नहीं करना चाहिए।

(४) एण्टएसिड (Antacid) की गोलियाँ जैसे कोनेन्ट्रिल, एल्यूड्राक्स (Alludrox) डाइजिन (Digene) इत्यादि दिन में ४ बार मुँह में रखकर चूसना चाहिए।

(५) अगर कोई संक्रमण हो तो एण्टिबायोटिक (Antibiotic) जैसे—(टेरामाइसिन या टेट्रासाइक्लिन या सुब्रामाइसिन या एलसाइक्लिन) के २५० मि. ग्रा.

के केप्सूल दिन में चार बार या लेडरमाइसिन (Ledermycin) के ३०० मि. ग्रा. के केप्सूल दिन में २ बार देना चाहिए या टेरामाइसिन या टेट्रासाइक्लिन के १०० मि. ग्रा. के इन्जैक्शन दिन में २ बार लगाना चाहिए।

(६) विटामिन बी काम्पलेक्स की गोली जैसे—(यूनि बी. काम्पलेक्स, बीकासूल, सरबेक्स टी) इत्यादि दिन में १ बार खाना खाने के बाद देना चाहिए।

(७) विटामिन सी जैसे—(सेलिन ५००, रिडाक्सान ५००) की १ गोली रोज देना चाहिए।

(ब) क्रोनिक गेस्ट्राइटिस (Chronic Gastritis) :

कारण :

(१) ················(Acute gastritis) के पश्चात्।

(२) **दवाइयाँ**—बार-बार ऐसी दवाइयों का उपयोग करना जिनसे अमाशय की श्लेष्मा झिल्ली पर················(Irritation) हो। जैसे—एस्प्रिन, कार्टिजोन इत्यादि।

(३) अधिक तम्बाकू व मिर्च का उपयोग करने से।

(४) परनिसियस रक्ताल्पता (Pernicious Anaemia)।

(५) अमाशय का छाला, अमाशय का केन्सर होने पर।

(६) खून की कमी (Anaemia) में।

(७) किरण (Irradiation) के द्वारा इलाज लेने पर।

लक्षण :

(१) पेट के ऊपर व बीच के भाग में जलन होती है व पेट में दर्द होता है। यह दर्द दूध लेने पर कुछ खाने पर कम हो जाता है।

(२) घबराहट होती है व उल्टियाँ होती हैं व कभी-कभी उल्टी में खून भी आता है।

(३) किसी-किसी को पेट में जोरों से दर्द होता है, यह दर्द एक सरीखा होता है व दर्द शराब इत्यादि लेने पर अधिक हो जाता है।

(४) भूख कम लगती है व किसी-किसी को पतले दस्त लग जाते हैं व दस्त में जमा हुआ खून आता है।

(५) किसी-किसी को कुछ भी हजम नहीं होता है व कुछ भी खाने पर उल्टी या दस्त के द्वारा निकल जाता है।

जाँच (Investigation) :

(१) गेस्ट्रोस्कोपी, (२) गेस्ट्रो बायोप्सी।

इलाज (Treatment) :

(१) अगर पेट में दर्द हो तो—मरीज को पूर्ण आराम करना चाहिए व पेट को गरम पानी से सेंकना चाहिए।

(२) शराब, तम्बाकू इत्यादि बन्द कर देना चाहिए व भोजन खूब चबा-चबा कर करना चाहिए।

(३) ए. पी. सी., कार्टिजोन (Cortisone) इत्यादि दवाइयाँ नहीं लेना चाहिए।

(४) खून की कमी का इलाज करना चाहिए। अतः मरीज को भोजन में दूध अधिक लेने की सलाह देना चाहिए व फरसोलेट की १ गोली सुबह व शाम को देना चाहिए या केप्सूल आट्रिन (Autrin) दिन भर में १ देना चाहिए।

(५) मरीज को भोजन बार-बार करने की सलाह देना चाहिए।

(६) एण्टिस्पास्मोडिक (Antispasmodic) जैसे [स्पास्मिण्डान (Spasminden) बरालगन, एवाफोरटान (Avofortan), यूनिस्पाजमिन) की १, १ गोली दिन में ३ बार लेना चाहिए।

(७) विटामिन बी. कम्पलेक्स जैसे—[बीकासूल, सरबेक्स टी (Surbex T)] के केप्सूल दिन में एक देना चाहिए या बी. काम्पलेक्स. या न्यूरोबियान (Neurobion) ३ सी. सी. या बेपलेक्स फोर्ट (Beplex forte) २ सी. सी. का इन्जैक्शन लगाना चाहिए।

(८) अगर उल्टी में खून आता हो तो केपलिन (Keplin) का या स्ट्रीप्टोबियान (Stryptobion) का इन्जैक्शन लगाना चाहिए या गोलियाँ देना चाहिए। अगर फिर भी खून बन्द न हो तो आपरेशन की सलाह देना चाहिए।

रोकथाम :

(१) भोजन नियमित समय पर करना चाहिए। भोजन खूब चबा-चबा कर खाना चाहिए।

(२) भोजन में तेज मिर्च-मसालों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

(३) फल व दूध इत्यादि नियमित रूप से लेना चाहिए।

(४) तम्बाकू व शराब नहीं लेना चाहिए।

९७. पित्त की थैली में सूजन
(Acute Cholecystitis)

कारण :

(१) पित्त की थैली (Gall bladder) की गरदन (पित्त के निकलने का स्थान) पर रुकावट होने पर। यह रुकावट पथरी (Stone) के कारण होती है।

(२) अगर बाइल साल्ट (Bile salt) का कन्सन्ट्रेशन (Concentration) बढ़ जावे तो।

(३) **जीवाणु**—इ कोलाय (E. coli), स्ट्रेप्टोकोकाय (Streptococci), स्टेफायलोकोकाय (Staphylococci) व कभी-कभी टायफाइड बेसिलस (Typhoid bacilli)।

लक्षण :

(१) दर्द—पेट में ऊपर व दाहिनी तरफ दर्द होता है। दर्द जोरों से होता है व लगातार (Constant) होता रहता है, दर्द पीठ में दाहिनी स्केपुला (Scapula) अस्थि के नीचे या दाहिने कन्धे (radiate) में जाता है। दर्द श्वाँस लेने पर अधिक महसूस होता है। साधारणतया दर्द भोजन करने के ३ से ५ घण्टे पश्चात् या सुबह के समय होता है।

(२) मरीज को घबराहट होती है व उल्टियाँ होती हैं।

(३) मरीज को कंपकपी आती है।

(४) शरीर का तापमान करीब १००% F. हो जाता है।

(५) नाड़ी तेज चलने लगती है।

(६) २५% मरीजों को पीलिया दिखाई देता है।

(७) पेट फूल जाता है।

दर्द का कारण :

(१) पित्त की थैली के सिकुडने के कारण।

(२) पेरिटोनियम (Peritoneum) पर इरिटेशन (Irritation) के कारण।

(३) पथरी के सरकने (Movement) के कारण।

(४) बाइल डक्ट (Bile duct) में संक्रमण के कारण।

जाँच (Investigation) :

(१) **खून** (Blood) **की**—इसमें रक्त के सफेद कण बढ़ जाते हैं। १०,०००/ cu mm.

(२) **एक्स-रे** (X-ray)—पेट का प्लेन एक्स-रे (Plane X-ray) पथरी दिखाई देगी।

इलाज (Treatment) :

(१) मरीज को पूर्ण आराम करना चाहिए।

(२) **भोजन**—प्रथम २४ घण्टे मरीज को मुँह से कुछ नहीं देना चाहिए। जब घबराहट व उल्टियाँ बन्द हो जावें तभी मुँह से देना चाहिए।

(३) **दर्द के लिए**—एन्टिस्पास्मोडिक (Antispasmodic) का इन्जेक्शन बरालगन (Baralgan) २ सी. सी. या ५ सी. सी. या एवाफोरटान (Avofortan) ३ सी. सी. या एट्रोपिन (Atropine) का इन्जेक्शन लगाना चाहिए।

(४) **एण्टिबायोटिक**—पेनिसिलिन ५००,००० यूनिट का इन्जेक्शन जांच करने के पश्चात् प्रत्येक ४-४ घण्टे से लगाना चाहिए परन्तु अगर पेनिसिलिन सेन्सिटिव हो तो टेरामाइसिन या टेट्रासाइक्लिन का २५० मि. ग्रा. के इन्जेक्शन हर ८ घण्टे में लगाना चाहिए।

(५) पेट की गरम पानी की थैली से सिकाई करना चाहिए।

(६) तापमान श्वसन क्रिया व नाड़ी हर २ घण्टे में देखना चाहिए।

(७) अगर उल्टियाँ हों तो नाक से रायल्स ट्यूब डालकर पेट से सिक्रिशन (Secreation) निकालना चाहिए।

(८) ५% ग्लूकोज सलाइन नस से द्वारा देना चाहिए।

★

९८. अमाशय का केन्सर
(Carcinoma of Stomach)

केन्सर एक भयानक रोग है। परन्तु अगर इस बीमारी का पता जल्दी लग जाता है तो मानव इसकी भयानकता को समाप्त कर देता है। परन्तु अगर बीमारी बढ़ जाती है तो फिर मनुष्य का जीवन संकट में पड़ जाता है।

कारण :

(१) यह बीमारी स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों में अधिक पाई जाती है।

(२) यह बीमारी वंशानुगत (Hereditary) भी होती है।

(३) यह बीमारी साधारणतया ५० से ७० वर्ष के पुरुषों को होती है।

(४) यह बीमारी खून में "ए" ग्रुप वालों को अधिक पाई जाती है।

(५) जिन पुरुषों को अमाशय में नमक का तेजाब (Hydrochloric acid) कम मात्रा में रिसता है अतः एक्लोरहाइड्रिया (Achlorhydria) होता है उन्हें यह बीमारी होने की सम्भावना अत्यधिक होती है।

(६) यह बीमारी अमाशय में सूजन (Gastritis), परनिशियस रक्ताल्पता (Pernicious Anaemia), व अमाशय का छाला (Peptic ulcer) वाले रोगी को भी होने की सम्भावना रहती है।

प्रकार :

(१) **पोलिपाइड** (Polypoid)—यह एक गठान की तरह होती है।

(२) **अल्सरेटिंग** (Ulcerating)—इसमें छाला होता है जिसका सिरा उभरा हुआ होता है व सतह रफ (Rough) होती है।

(३) **इनफिल्ट्रेटिंग** (Infiltrating)—इसमें केन्सर का असर पूरे अमाशय की दीवार में फैल जाता है व पूरा अमाशय मोटा, कड़ा व सफेद एक चमड़े के थैले के समान दिखाई देता है व अमाशय की क्षमता कम हो जाती है।

फैलना :

(अ) यह बीमारी बहुत जल्दी फैलती है। यह स्वयं अमाशय के बाद भोजन नली के नीचे के भाग में फैल सकती है। इसी प्रकार पेट के जो अंग इसके सम्पर्क में आते हैं जैसे ग्रेटर और लेसर ओमेन्टम (Greater and lesser Omentum), क्लोम (Pancrease), परायटल पेरिटोनियम (Parital Peritoneum) इत्यादि।

(ब) **लिम्फ के द्वारा**—यह बीमारी लिम्फ के द्वारा भी तेजी से फैलती है। सर्वप्रथम थारोसिक डक्ट (Thoracic duct) के द्वारा बाँये तरफ के क्लेविकल (Clavicle) अस्थि के ऊपर के लिम्फ ग्लेन्ड पर असर होता है। वे बड़े व कड़े हो जाते हैं। फिर बाँयीं बगल (Axilla) के लिम्फ ग्लेन्ड पर असर होता है। फिर इसका असर यकृत (Liver) पर व फेफड़े (Lungs) पर होता है।

लक्षण :

(१) मरीज को भूख कम लगती है व उसे कुछ भी खाने की इच्छा नहीं होती है।

(२) मरीज का वजन कम हो जाता है।

(३) पेट के ऊपर व बीच के भाग में हल्का-हल्का दर्द होता है या भारीपन महसूस होता है।

(४) अधिक खाना खा लेने का पश्चात् मरीज को पेट में जलन होती है व मरीज गैस की शिकायत करता है।

(५) मरीज को घबराहट होती है व कभी-कभी उल्टियाँ होती हैं।

(६) कुछ समय पश्चात् मरीज को उल्टी में खून आता है व दस्त के साथ भी जमा हुआ खून आता है।

(७) मरीज को रक्ताल्पता (Anaemia) हो जाती है।

(८) मरीज को कब्जियत हो जाती है व कभी-कभी पतले दस्त हो जाते हैं।

(९) कुछ समय पश्चात पेट के ऊपर व बीच के भाग में गठान (Mass) जैसा महसूस होता है।

(१०) कभी-कभी मरीज को पेट में जोरों से दर्द होता है। यह केन्सर के छाले के फूटने के कारण होता है।

(११) मरीज के शरीर का तापमान नहीं बढ़ता है।

जाँच :

(१) **मल** (Stool) **की**—जमे हुए खून के लिए।

(२) एक्स-रे (X-ray)।

(३) **फ्रेक्सनल टेस्ट मिल** (Fractional Test Meal) : **एक्लोरहाइड्रिया** (Achlorhydria) **के लिए**—इसमें नमक का तेजाब (Hydrochloric acid) कम हो जाता है।

(४) गेस्ट्रोस्कोपी (Gastroscopy)

(५) गेस्ट्रिक साइटोलाजी (Gastric cytology)

इलाज :

इसका इलाज आपरेशन के द्वारा किया जाता है। परन्तु आपरेशन उसी स्थिति में किया जाता है। जब यह बीमारी आस-पास के अंगों में व लिम्प ग्लेन्ड में फैली न हो। इसमें गेस्ट्रेक्टामी (Gastrectomy) की जाती है।

★

६६. मुँह में छाले

मुँह में छाले कई कारण से हो सकते है। मुँह की श्लेष्मा झिल्ली लाल हो जाती है व श्लेष्मा झिल्ली में दाने से उभर आते हैं जिनमें एक गाढ़ा सा रस भरा रहता है व इनमें पीड़ा होती है। पीड़ा तेज चीजें जैसे—मिर्च इत्यादि खाने से अधिक हो जाती है।

कटारल स्टोमेटाइटिस (Cattaral stomatitis) :

यह सभी उम्र के व्यक्तियों में पायी जाती है। यह साधारणतया उन व्यक्तियों को होते हैं (१) जिन्हें कुपोषण होता है। (२) यह संक्रामक रोग के कारण हो सकते हैं। (३) जो व्यक्ति मुँह की सफाई नहीं करते हैं। (४) जो व्यक्ति मिर्च, तम्बाकू, शराब का अत्याधिक उपयोग करते हैं।

लक्षण :

१. श्लेष्मा झिल्ली लाल हो जाती है।

२. मरीज को दर्द होता है। यह दर्द मिर्च इत्यादि खाने पर या खाना खाने पर अधिक होता है।

इलाज :

१. अगर मरीज को कुपोषण हो तो उसे बेलेन्स डाइट खाने की सलाह दीजिये।

२. उसे बी काम्पलेक्स की गोलियाँ या इन्जैक्शन दीजिये।

३. उसे विटामिन सी की गोलियाँ दीजिये।

४. अगर संक्रामक रोग हो तो रोग का इलाज करिये।

५. मरीज को मुँह की सफाई रखने की सलाह दीजिये।

६. तम्बाखू, मिर्च व शराब बन्द करने की सलाह दीजिये।

डिस्पेप्टिक अल्सर (Dyspeptic ulcer) :

पाचन संस्थान में खराबी के कारण भी मुँह में छाले हो जाते हैं। सामान्यत: ये कमजोर बच्चों में अधिकतर पाये जाते हैं। ये होंठ, गाल के अन्दर की तरफ व जबान पर पाये जाते हैं।

लक्षण :

मुँह में दाने उभर आते हैं। ये एक भी हो सकता है या एक से अधिक भी हो सकते हैं। दाने कुछ ही समय में फट जाते हैं व सफेद पीला दवा हुआ छाला रह जाता है जो काफी पीड़ादायक होता है। खाना चबाने में मरीज को काफी तकलीफ होती है। यह धीरे-धीरे अच्छा हो जाता है।

इलाज :

१. पेट की बीमारी का इलाज करना चाहिए।

२. बी. कम्पलेक्स की गोली देना चाहिए।

परजीवी के कारण मुँह में छाले :

यह फफूंद (Fungus) के कारण होते हैं। यह मुँह में, जबान पर या गले में हो सकते हैं।

१. सफेद स्पाट दिखाई देंगे। (२) दर्द होता है।

इलाज :

१. सोडा बाइकार्ब से कुल्ले करना चाहिए।

२. १% जी. वी. पेन्ट (जेन्सन वायोलेट) मुँह में लगाना चाहिए।

३. निस्टेटिन (Nystetin) को ग्लिसरिन में मिलाकर लगाना चाहिए।

४. निस्टेटिन ५ लाख यूनिट की गोलियाँ दिन में ३ बार देना चाहिए। बाजार में माइकोस्टेटिन के नाम से गोली मिलती है।

●

कृत्रिम श्वांस की विधि
(ARTIFICIAL RESPIRATION)

१००. होल्गर नेल्सन विधि (Holger Nielsen Method)

घायल की स्थिति :

१. घायल व्यक्ति को पेट के बल (उल्टा) किसी चपटे स्थान पर लेटा दें व उसकी टाँगे पास-पास कर दें।

२. घायल के दोनों हाथ एक के ऊपर दूसरा रखकर सिर के नीचे रख दें। सिर को एक तरफ घुमा देना चाहिए।

हाथों की स्थिति

कार्यकर्त्ता की स्थिति :

१. एक पैर के घुटने को रोगी के सिर की चोटी से ६" से १२" की दूरी पर रखें।

२. दूसरे पैर की एड़ी घायल की कोनी के सीध में रखें।

३. हाथों को घायल की पीठ पर इस प्रकार रखें (a) हथेली कन्धे के फल के निचले भाग पर रहे (b) अंगूठे को रीढ़ के साथ (c) और अंगुलियों को घायल के पैरों की ओर करके रखें।

गति :

१. बाजू को सीधा रखकर स्वयं सामने को झुकते जायें जब तक की बाजू रोगी के ऊपर या कार्यकर्ता के शरीर के साथ लम्बरूप की दशा में न हो जाए।

गति नं. १ (A)

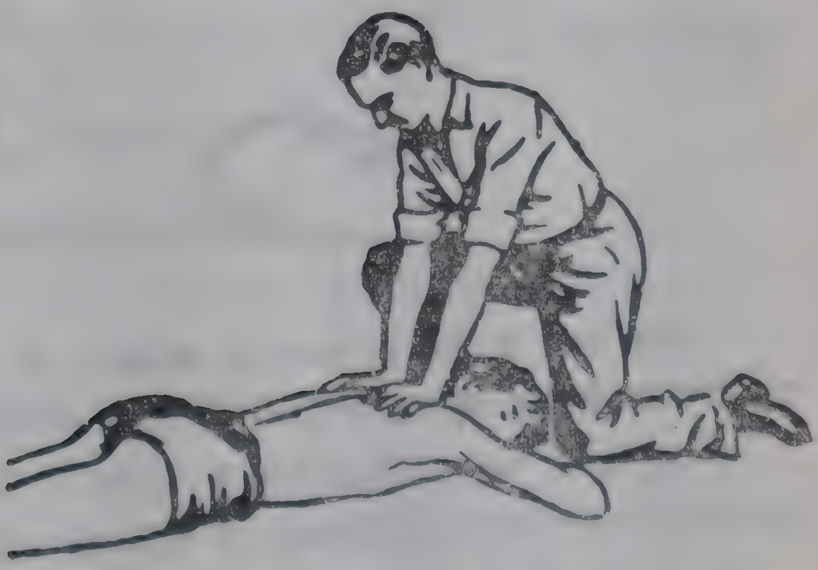

गति नं. १ (B)

कोई विशेष जोर लगाने की आवश्यकता नहीं। यह गति एक, दो गिनते दो सेकंड लेती है। इस दबाव से हवा फेफड़ों से बाहर निकल जाती है।

२. कार्यकर्त्ता अब तीन गिनते हुए एक सेकंड में वापस जाता है और अपने हाथों को घायल के कन्धों के पास से लाकर ऊपर खिसकाता है जब तक कि वह कुहनी के पास ऊपरी भुजा को पकड़ नहीं लेता। वह भुजाओं को उठाकर चार पाँच गिनते हुए दो सेकेन्ड के लिए खींचता है। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह छाती को भूमि से न उठा ले। इस गति से श्वांस अन्दर जाती है। कार्यकर्त्ता के बाजू सारे काल में सीधे रहना चाहिए।

←गति नं. २ (A)

गति नं. २ (B)→

एक सेकंड के लिए छः गिनते हुए कार्यकर्त्ता को घायल की भुजाओं को भूमि तक नीचे कर देता है और अपने हाथों को पहली स्थिति में रख देता है।

यह सारा क्रम ६ सेकंड लेता है अर्थात १ मिनिट में १० बार तथा जब तक श्वाँस क्रिया फिर से स्थापित नहीं हो जाती तब तक ऐसा करते जाना चाहिए।

जब घायल में श्वांस-क्रिया के चिन्ह दिखाई देने लगें तो कार्यकर्त्ता को चाहिए कि वह गति (२) को ही करे और भुजाओं को उठाये तथा नीचे रखे और बारी-

बारी १, २ (२ सेकंड) श्वांस लेने के लिये तथा ३, ४ (२ सेकंड) श्वांस छोड़ने के लिए करे।

गिनना तथा समय का क्रम निम्नलिखित है :

एक-दो (२ सेकंड) पीछे को दबाव डालते हुए।

तीन (१ सेकंड) हाथों को भुजाओं तक खिसकाते हुए।

चार, पाँच (१ सेकण्ड) भुजाओं को उठाते हुए।

छः (१ सेकण्ड) हाथों को पीठ पर खिसकाते हुए।

बालक :

५ वर्ष से अधिक आयु के बालकों के उपचार में कन्धों के फलों पर दबाव कम होना चाहिए। अतः अंगुलियों के सिरों से ही दबाव डालना चाहिए। इसका क्रम एक मिनिट में १२ होना चाहिए।

५ वर्ष से कम आयु के बालक के लिए बाजुओं को उनके शरीर के साथ सटा कर लिटा दें और सिर के नीचे कोई सहारा देने का प्रबन्ध करें अंगुलियाँ नीचे डालकर कन्धों को पकड़ लें और अंगूठे ऊपर रखे कन्धे के फलों पर अंगूठे से २ सेकण्ड के लिए दबायें व कन्धों को २ सेकण्ड के लिए उठा दें। यह क्रम १ मिनिट में १५ बार होना चाहिए।

●

१०१. शेफराज विधि

घायल की स्थिति :

१. घायल को पेट के बल (उल्टा) लेटा दीजिये।

२. घायल के एक हाथ को दूसरे पर रखकर उसके सिर के नीचे रख दें। सिर एक ओर को मुड़ा होना चाहिए।

कार्यकर्त्ता की स्थिति :

१. घायल के सिर के सामने हो जाइए।

२. दोनों घुटनों को घायल के एक ओर उसके कूल्हे के जोड़ के बिल्कुल नीचे टेक दें।

३. अपनी एड़ियों पर पीछे बैठ जायें ताकि स्वतन्त्रता से झूम सकें।

४. अपने हाथों को घायल की कमर पर रख दें। प्रति हाथ रीड़ की हड्डी के आसपास हो तथा कलाइयाँ आपस में छू रही हों और अंगूठे जितने फैल सकें, फैलायें। अंगुलिया कमर के आसपास मिली हुई हों और प्राकृतिक गड्ढों में कूल्हे के किनारे से थोड़ा ऊपर हटकर मुड़ी हुई हो और अंगुलियों के सिरे भूमि की ओर हों।

५. अपनी कोहनियों को बिल्कुल सीधा रखें।

गति १ :

बिना अपनी कोहनियों को मोड़े हुए धीरे से अपने घुटनों को खलते हुए आगे को होइये और अपनी जाँघों को सीधा कर दीजिये तथा कन्धों को बिल्कुल हाथों की सीध में उनके ऊपर ही ले आइये और इस प्रकार अपने शरीर का बोझ घायल की पीठ पर डाल दें। इससे पेट के भीतरी अंग भूमि के साथ दब जाते हैं तथा माँस शिरा (Diaphargm) के ऊपर धकेल देते हैं। इससे फेफड़ों से वायु बाहर धकेल दी जाती है।

गति १. में कार्यकर्ता को केवल अपने शरीर का ही बोझ डालकर दबाना चाहिए न कि पुट्ठों का बल लगाकर। बोझ का दबाव ६० पौण्ड से न बढ़ना चाहिए।

गति २ :

दबाव हटाने के लिए अब शरीर को धीरे से वापस अपनी एड़ियों पर ले आइए। इससे पेट के भीतर अंग पुनः अपने स्थान पर आ जाते हैं और माँस शिरा नीचे हो जाता है जिससे श्वाँस अन्दर खिंच जाती है।

गति नं. १ को २ सेकण्ड व गति नं. २ को तीन सेकण्ड लगने चाहिए।

★

१०२. सिवेस्टर विधि

घायल की स्थिति :

घायल व्यक्ति को पीठ के बल (सीधा) लिटा दीजिये। उसके कन्धों को ऊँचा करने के लिए उनके नीचे कुछ दें और उसके सिर को पीछे की ओर लटक जाने दें।

कार्यकर्त्ता की स्थिति :

अपने दोनों घुटने घायल के सिर के आसपास रखकर घुटनों के बल बैठ जाइये कार्यकर्ता का चेहरा घायल के पैर की तरफ होना चाहिए।

गति नं. १ :

गति नं. १

घायल व्यक्ति के सिर के ऊपर झुक जाइये और उसके हाथों की कलाइयों को दोनों हाथों में पकड़ लें। इसके बाद दोनों हाथ सीने के नीचे के भाग पर ले जाकर एक दूसरे के आगे-पीछे रखकर दबायें इस संचलन में फेफड़ों के अन्दर की हवा बाहर निकल जायेगी।

गति नं. २ :

गति नं. २

घायल व्यक्ति के सीने पर दिये गए दबाव को हटाइये फिर उसके दोनों हाथों को तेजी से ऊपर तथा बाहर की ओर उठाते हुए उसके सिर के ऊपर से यथा सम्भव पीछे की ओर ले जाइये। इस प्रक्रिया में उसके फेफड़ों में वायु भर जावेगी।

इस प्रक्रिया को प्रति मिनिट १२ बार के हिसाब से दोहराइये। इस प्रक्रिया में एक बार में पाँच सेकन्ड लगते हैं। दो सेकण्ड सीने में दबाव के लिये और तीन सेकण्ड हाथों को उठाने में।

रक्त पट्टी बनाना :

मरीज की बीच की अँगुली की निचले सिरे को स्प्रिट से साफ करिये व एक निसंक्रमित सुई को चुभो दीजिये व दूसरे हाथ की अँगुली व अँगूठे से अँगुली को कुछ ऊपर से दबाइये रक्त की बून्द को पट्टी के एक सिरे पर रखिये व दूसरी पट्टी के सिरे को ४५° के कोण से रक्त को फैला दीजिये। दूसरे सिरे पर फिर एक बून्द रक्त लीजिये व निडिल से फैला दीजिये। इसे सुखा कर नम्बर डाल दीजिये।

★

१०३. मुँह दर मुँह विधि

दुर्घटनाग्रस्त व्यक्ति को पीठ के बल लेटा कर उसके सिर को दोनों हाथों से थाम लीजिये। एक हाथ से उसका सिर पीछे धकेल दीजिये। एक अन्य व्यक्ति उसके जबड़े को ऊपर और आगे की ओर खींचे। अपना मुँह पूरा खोल लीजिये, गहरी श्वांस खींचिये तथा यदि वह व्यक्ति शिशु अथवा छोटा बच्चा हो तो अपने

होठ बच्चे के मुख व नाक से सटा दीजिये। जब तक उसकी छाती उभरी हुई दिखाई न दे फूक मारते रहिये। इसके बाद रुक जाइए और अपना मुँह हटा लीजिये प्रति मिनिट २० बार के हिसाब से यह प्रक्रिया बार-बार करते रहिये।

मुँह दर मुँह विधि

प्रथम छः बार यह प्रक्रिया शीघ्रता से की जानी चाहिए।

वयस्क हो तो—दुर्घटनाग्रस्त व्यक्ति के होठ से अपना मुँह सटा दीजिये तथा उसके नासो को अपने गालों से बन्द कर दें। नथुनों को हाथों से दबा कर नाक बन्द करने की भी आवश्यकता पड़ सकती है। अब मुँह से उसके फेफड़ों में हवा भर दें तथा सीने को ऊपर उभरता हुआ देखते रहें तत्पश्चात अपना मुँह हटा लें। यह क्रिया प्रति मिनिट १० बार करनी चाहिए। प्रथम ६ बार यह क्रिया शीघ्रता से करना चाहिए।

★

१०४. इन्जैक्शन लगाने का तरीका

इन्जैक्शन लगाने के पहले सिरिंज व सुई को करीब ३० मिनिट तक पानी में उबालें। फिर पिस्टन को सिरिंज में डाल दीजिये व सुई निचले हिस्से में लगा दीजिये। सुई सिरिंज में अच्छी तरह लगाना चाहिये। अब पिस्टन को थोड़ा ऊपर खींचिये। अगर पिस्टन ऊपर खिच जाता है तो सिरिंज में हवा भर जावेगी। करीब एक सी. सी. हवा भर लीजिये व इन्जैक्शन की शीशी के ढक्कन को स्प्रिट से साफ कीजिये व सुई बोतल की रबर की डाट में से डाल दीजिये। पिस्टन दवा दीजिये अतः सिरिंज की हवा शीशी में चली जायेगी। अब दवा सिरिंज में खींच लीजिये व सुई को बाहर निकाल लीजिये। अगर हवा का कोई बुलबुला आपकी सिरिंज में रह गया हो तो सिरिंज को उल्टा करिये। हवा का बुलबुला ऊपर आ जावेगा। उसे पिस्टन को दबाकर बाहर निकाल दीजिए। अब आप रोगी की बाँह के पीछे वाले

भाग में, पुट्ठ पर या जाँघ के सामने वाले वाले में इन्जेक्शन लगा सकते हैं। पहले स्प्रिट से वह भाग साफ कीजिये व अगर बाँह में इन्जेक्शन लगाना हो तो ४५° के कोण से व पुट्ठे पर लगाना हो तो ९०° के कोण से सुई माँसपेशी में घुसा दीजिये। अब पिस्टन को थोड़ा बाहर खींचिये और सिरिंज में देखिये कि खून आता है या नहीं। खून आने का मतलब है सुई नस में है। इस सूरत में सुई और सिरिंज को बाहर निकाल लीजिये। अगर खून नहीं आता है तो आप पिस्टन को दबाकर सिरिंज की दवाई डाल दीजिए। इसके बाद सुई बाहर निकाल लीजिये। कुछ खून आ सकता है अतः रुई से उसे दो, तीन मिनिट दबाइये, खून बन्द हो जावेगा।

सबक्यूटेनियस या इन्ट्राडरमल इन्जेक्शन :

यह इन्जेक्शन त्वचा में लगाया जाता है। बी. सी. जी. का टीका व सेन्सिटिविटी टेस्ट इसी विधि से की जाती है।

निसंक्रमित सिरिंज में दवाई भर कर सुई को त्वचा में घुसा देना चाहिए। (ध्यान रखना चाहिए कि सुई ज्यादा अन्दर न जावे) व दवाई को पिस्टन दबा कर आहिस्ता से डाल दीजिये। दवाई डालते वक्त कुछ मुश्किल महसूस होती है। दवाई अन्दर जाने पर त्वचा का वह हिस्सा ऊपर उभर आवेगा व संतरे की खाल जैसे उभरे दाने दिखाई देंगे।

शिरा (Vein) में इन्जेक्शन देने का तरीका :

यह इन्जेक्शन हाथ में कोनी के सामने वाले भाग, हथेले से पीछे के भाग या पाँवों में, जहाँ की शिरायें उभरी दिखाई दें लगाया जाता है।

सर्वप्रथम नस का चुनाव कीजिये व शिरा के जहाँ इन्जेक्शन लगाना है के करीब चार इंच ऊपर हथेली से बांह को दबाना चाहिए व मरीज को कहिए कि वह अपनी मुट्ठी कसकर बन्द कर ले अतः शिरा में खून और भर जावेगा व वे उभर जावेंगी व अपनी तर्जनी उँगली से नस महसूस कीजिये व उस भाग को स्प्रिट से साफ करिये। अब सुई नस के पास चमड़ी में घुसा दीजिये व धीरे-धीरे नस की लाइन में ले जाइये और पिस्टन को थोड़ा खींचिये। अगर सिरिंज में थोड़ा खून आ जावे तो इन्जेक्शन शिरा में लग चुका है। अतः धीरे-धीरे सिरिंज की दवा डाल दीजिये। अगर रोगी को सलाइन देना है तो सिरिंज को निकाल लीजिये व सलाइन की नली सुई से जोड़ दीजिये व सुई को स्टिचिंग प्लास्टर से फिक्स कर दीजिये।

★

१०५. प्रतिरोधात्मक टीके

(बच्चे को उपहार के बजाय टीके लगवाना सबसे बड़ा उपहार है।)

साधारणतया संक्रमण का डर छोटे बच्चों में अधिक होता है। रोग के कीटाणु छोटे बच्चों पर आक्रमण कर देते हैं। अगर बच्चे में प्रतिरोधात्मक शक्ति नहीं है तो

रोग उन्हें जकड़ लेता है अतः स्वास्थ्य कर्मचारी के लिए जरूरी है कि वह प्रतिरोधात्मक टीकों के विषय में जानकारी रखे व लोगों को उनके विषय में समझाये ।

टीके इस प्रकार दिये जाते हैं :

आयु		टीका
(१) जन्म के बाद	चेचक बी. सी. जी.	ये टीके अलग-अलग बाँहों में एक साथ लगाये जा सकते हैं।
(२) तीसरे माह	डी. पी. टी. या ट्रिपल एण्टीजन	डिप्थेरिया, काली खाँसी टिटेनस
	पोलियो	पहली खुराक
(३) चौथे माह	डी. पी. टी. पोलिया	दूसरी खुराक
(४) पाँचवें माह	डी० पी० टी० पोलियो	तीसरी खुराक
(५) १० से १२ माह	टायफाइड	इसके हर २ वर्ष बाद
(६) $१\frac{1}{2}$ वर्ष	डी. पी. टी. पोलियो	प्रथम बुस्टर खुराक
(७) ३ वर्ष	चेचक	इसके हर ३ वर्ष बाद
(८) ५ वर्ष	डी. पी. टी पोलियो	दूसरी बुस्टर खुराक
	बी. सी. जी.	प्रथम बुस्टर खुराक
(९) १० वर्ष	बी. सी. जी.	दूसरी बुस्टर खुराक

टीके देने के तरीके :

चेचक का टीका—चेचक का टीका पावडर के रूप में आता है व साथ ही ट्यूब में तरल पदार्थ रहता है जो ग्लिसरीन होता है। अतः पहले पावडर में ग्लिसरीन मिलाकर टीका तैयार कीजिये। फिर बच्चे की बायीं बाँह के बाहर की तरफ के भाग को साबुन व पानी से धोना चाहिए। (स्प्रिट का प्रयोग नहीं करना चाहिए) फिर दो मुँही सुई को टीके की दवाई में डुबाइये व दवाई को बाँह के बाहर वाले भाग पर लगाइये व सुई को १५-२० बार थोड़े दबाव से पिंच करिये। दबाव इतना न हो की खून आ जाये।

टीका लगाने के चौथे या पाँचवें दिन टीका उभर आता है। इसके साथ कुछ पीड़ा, बेचैनी खुजलाहट होती है। जब टीका सूखना शुरू होता है तो ये लक्षण खत्म हो जाते हैं उसकी पपड़ी तीन सप्ताह में उतर जाती है।

बी० सी० जी०—यह टीका क्षय या तपेदिक रोग से बचाता है। यह ड्राय-फ्रिज होता है। यह विशेष सिरिंज जिसे ट्यूबर कुलिन सिरिंज कहते हैं, से दिया जाता है। यह बांयी भुजा के ऊपर व सामने वाले भाग में दिया जाता है। यह इंट्राडरमली दिया जाता है। टीके की दवाई ०.१ सी. सी. इन्जेक्ट की जाती है। ३ से ६ सप्ताह बाद टीके में से लसलसा, गाढ़ा पदार्थ बहने लगता है जो ८ से १२ सप्ताह में ठीक हो जाता है व निशान बाकी रह जाता है। इस टीके का घोल सलाइन में बनाया जाता है।

डी० पी० टी०—यह टीका गला घोटु, कुकर खाँसी व टिटेनस की बीमारी की रोकथाम करता है। यह टीका जाँघ के बाहरी भाग में या पुट्टे पर लगाया जाता है। टीका लगाने के बाद एक, दो दिन पीड़ा रहती है। यह १/२ सी० सी० माँसपेशी में इन्जेंक्ट किया जाता है।

पोलिया—यह टीका ०.५ सी० सी० मुँह के द्वारा दिया जाता है।

टिटेनस टाक्साइड—यह टीका आधा सी० सी० माँसपेशी में सिरिंज के द्वारा लगाना चाहिए। यह गर्भवती माताओं को ६, ७, ८वें माह में लगाना चाहिए। यह टीका गर्भवती माताओं को प्रसव के ४ से ६ सप्ताह पूर्व लगाना चाहिए।

यह टीका कोई भी चोट लगने पर लगवाना चाहिए। इसकी २ खुराक ४ से ६ सप्ताह के अन्तर से देना चाहिए व तीसरी खुराक ६ माह बाद देना चाहिए।

सभी टीके फ्रीज में या ठण्डे स्थान पर रखना जरूरी होता है।

टीका कब नहीं लगाना चाहिए :

(१) जब कोई संक्रमण हो।

(२) अगर चर्म रोग हो जैसे—एक्जिमा इत्यादि।

(३) बच्चे को दस्त हो रहे हों।

(४) जब बुखार हो।

(५) बच्चे को झटके या मिर्गी की बीमारी हो।

(६) परिवार में किसी को भी एलर्जी जैसे अस्थमा (Asthma) इत्यादि हो।

(७) अगर बच्चा कमजोर हो।

★

१०६. ठण्डे पानी की पट्टियाँ

सामान्यतः शरीर का तापमान ९८.४° F या ३७°C होता है परन्तु जब शरीर का तापमान किसी संक्रमण के द्वारा या और किसी बीमारी की वजह से १०३-१०४° F तक या और अधिक पहुँच जाता है तो तापमान कम करने के लिए ठण्डे पानी की पट्टियाँ या बरफ के पानी की पट्टियाँ चढ़ाना चाहिए।

विधि :

एक चोकोर बर्तन में ठण्डा पानी लीजिये (अगर बर्फ मिल जाये तो बेहतर है) इसमें साफ कपड़ा या लिंट का टुकड़ा चोकोर काट कर डालिये व उसे बाहर निकाल कर निचोड़ लीजिये। इतना निचोड़िये कि पानी झरे नहीं। पानी की पट्टी मरीज के सिर पर रख दीजिये दूसरी पट्टी लीजिये उसे भी पानी में डुबा कर निचोड़ लीजिये व मरीज की हथेलियाँ, अग्रबाहु पर घुमाइये व रख दीजिये। इसी प्रकार पैर की पगथलियों पर रखिये। जब पट्टियाँ सूख (Dry) जावें तो उन्हें फिर से पानी में डुबोकर निचोड़िये व फिर रखिये। जब तक की मरीज़ के शरीर का तापमान १००° F तक न आवे तब तक पट्टियाँ बदलते रहिये।

★

१०७. भाँप लेना

कुछ संक्रामक रोगों में मरीज को श्वाँस लेने में कठिनाई होती है जैसे : निमोनिया, सर्दी इत्यादि। अतः भाँप लेने से उन्हें आराम मिलता है।

विधि :

एक चोकोर बर्तन में पानी को उबालिये व उसमें २ चम्मच विक्स की दवा मिलाइये। मरीज के मुँह पर एक टॉवेल डाल दीजिये व वह चोकोर बर्तन पर झुक जावे जिससे उसमें से निकली भाप बाहर न जा पावे व मरीज लम्बी-लम्बी श्वाँस लेकर भाप को अन्दर ले इससे उसे श्वांस लेने में आसानी होगी। यह क्रिया करीब ४-५ मिनिट तक करें।

★

१०८. गरारे करना

जब गले में संक्रमण हो जाता है तो मरीज को गले में दर्द होता है व गला लाल हो जाता है। अतः मरीज को कुछ भी खाने व पीने में तकलीफ महसूस होती है।

विधि :

एक बर्तन में करीब आधा लिटर पानी को उबाल लेना चाहिए व उसमें १० ग्राम या २ चम्मच नमक या ५-६ दाने पोटेशियम परमेगनेट (लाल दवा) के मिला देने चाहिए व पानी को ठण्डा होने देना चाहिए। जब पानी गुन-गुना गरम रह जाय पानी मुँह में लेना चाहिए व मुँह ऊपर की ओर उठाकर श्वाँस धीरे-धीरे छोड़ना चाहिए (इस विधि में ग. ग. ग. ग. की आवाज होगी) व पानी को कुल्ला कर देना चाहिए। ध्यान रहे पानी पेट में या श्वांस नली में न जा पाये। इस विधि को ५ या ६ बार करना चाहिए व दिन में करीब ३, ४ बार गरारे करना चाहिए।

●

१०९. परिभाषाएँ (दवाइयाँ)

दवाई (Drug) :

वह वस्तु जो किसी भी बीमारी को रोकने (Prevention) या इलाज करने (Cure) के लिए आन्तरिक या बाहरी रूप से उपयोग में लाई जाती है को दवाई कहते हैं। जैसे—मलेरिया के लिए क्लोरोक्वीन आन्तरिक रूप से व सिर दर्द में बाम या घाव होने पर मलहम बाहरी रूप से उपयोग में लाया जाता है।

एप्लिकेशन (Application) :

यह दवाई तरल रूप में होती है व त्वचा पर स्तेमाल होती है। जैसे—बेन्झाइल बेन्जोएट।

केप्सूल (Capsul) :

ये जिलेटिन (gelatin) के बने खोखे होते हैं, इनमें दवाई भर दी जाती है। ये पानी में घुलनशील होते हैं। कड़वी दवाइयों को आसानी से लेने के लिए इनका उपयोग किया जाता है।

क्रीम (Cream) :

इनमें मोम व ग्लिसरीन होता है व इनमें दवाई अच्छी तरह मिलाई जाती है व त्वचा के लिए उपयोगी होते हैं।

इन्जेक्शन :

ये वे दवाइयाँ हैं जो माँसपेशियों या रक्त में सुई के द्वारा पहुँचाई जाती हैं। जैसे—नोवेलजिन इन्जेक्शन।

मिक्सचर (Mixture) :

यह दो या दो से अधिक दवाइयों को पानी में घोलकर बनाया जाता है। यह आन्तरिक उपयोग में लिया जाता है।

आँखों का मलहम (Ointment for the eye) :

मलहम पीले मोम में दवाई मिलाकर बनाया जाता है।

गोली (Pills) :

ये गोल व ठोस होती हैं, इनमें दवाई होती है, ये सरलता से निगली जा सकती है, कभी-कभी इन पर शकर की परत रहती है, ये अमाशय में घुल जाती है। अगर इनका उपयोग आँत में लेना होता है तो इन पर केरोटिन की परत चढ़ा दी है जिससे ये अमाशय में नहीं घुलती व आँत में जाकर घुलती है।

एनिमा (Enema) :

ये तरल पदार्थ गुदाद्वार द्वारा रेक्टम में पहुँचाये जाते हैं।

लान्जेस (Logenges) :

ये शकर व दूसरी स्वादिष्ट पदार्थ से दवाई मिलाकर बनाई जाती है जिसका

असर मुँह व गले की झिल्ली पर अधिक समय तक रहता है। ये चूसने के काम आती है।

सपोजिटरी (Suppositories) :

इनका एक सिरा नुकीला होता है, ये गुदाद्वार के द्वारा रेक्टम में पहुँचाई जाती है।

कीमोथेराप्यूटिक एजेन्ट (Chemotherapeutic agent) :

संक्रामक रोगों के रोगाणु (कीटाणुओं, जीवाणु इत्यादि) की वृद्धि को रोकने या नष्ट करने वाली दवाइयों को कीमोथेराप्यूटिक एजेन्ट कहते हैं।

इनमें निम्न दवाइयाँ आती हैं :

(१) सल्फोनामाइड।

(२) एन्टिबायोटिक।

●

११०. सल्फोनामाइड

(१) ये दवाइयाँ रोगाणुओं की वृद्धि रोकती हैं।

(२) पेपटोन व मवाद होने पर इनकी क्रिया कम होती है।

(३) इनमें विषाणुओं (virus) को नष्ट करने की व उनकी वृद्धि रोकने की क्षमता नहीं होती है।

(४) बगैर आक्सीजन के जिन्दा रहने वाले कीटाणुओं (Anaerobic) को करने की क्षमता इनमें नहीं होती है।

(५) मोतीझरा (Typhoid) के कीटाणुओं को नष्ट करने की क्षमता इनमें नहीं होती है।

(६) अलग-अलग सल्फोनामाइड की क्षमता अलग-अलग होती है।

(७) सामान्यतः यह आँत के ऊपरी भाग द्वारा तेजी से सोख ली जाती है सिर्फ सल्फागोनेडिन व सक्सीनील सल्फाथायोझोल (Succinyl Sulphathyozole) आँत द्वारा बहुत ही कम मात्रा में सोखे जाते हैं अतः इनका उपयोग सिर्फ आँत की बीमारी जैसे दस्त लगना (Diahhorea) आँव खून के दस्त (Dysentery), हैजा (Cholera) में किया जाता है।

(८) यह रेक्टम के द्वारा नहीं सोखी जाती है।

(९) यह प्लेसेन्टा (Placenta) के द्वारा बच्चे के खून में चली जाती है।

(१०) इसे लेने के तीन घन्टे में इसका स्तर (Concentration) खून में सबसे अधिक होता है व फिर कम होने लगता है।

(११) इसका विसर्जन (Excreation) गुर्दे (Kidney) के द्वारा होता है।

(१२) यह मुंह के द्वारा दी जाती है परन्तु सल्फाडायमिडिन सोडियम शिरा के द्वारा (Intra venous) भी दी जा सकती है व सल्फासिटामाइड आँखों के लिए उपयोगी है।

(१३) इसकी मात्रा हर चार से छः घण्टे में देना चाहिए।

(१४) अगर मरीज को ४८ घण्टे में आराम न हो तो एन्टिबायोटिक शुरू कर देना चाहिए।

(१५) किसी-किसी रोगी को ये रियेक्शन (Reaction) करती है, जैसे—

१. नीलापन आ सकता है।
२. घबराहट व उल्टियाँ हो सकती हैं।
३. सिरदर्द हो सकता है।
४. शरीर में खुजली चलने लगती है।
५. शरीर में लाल-लाल दाने हो जाते हैं।
६. शरीर में सूजन आ सकती है।
७. पेशाब में खून आ सकता है।
८. पेशाब कम हो सकता है।

उपरोक्त लक्षण होने पर मरीज को एन्टिहिस्टामिनिक की गोली जैसे एविल या फारिस्टाल की गोली देना चाहिए व सल्फा उसे बन्द कर देना चाहिए व मरीज को समझाना चाहिए कि भविष्य में वह सल्फा की गोलियों का उपयोग न करे।

(१६) **मात्रा : वयस्क को**—१ ग्राम या १००० मि. ग्रा. १० किलोग्राम शरीर के वजन के अनुसार।

बच्चे को—१ ग्राम या १००० मि. ग्रा. ५ किलोग्राम शरीर के वजन के अनुसार।

१ वर्ष से कम बच्चे को—१ ग्राम या १००० मि. ग्राम $2\frac{1}{2}$ किलो वजन के अनुसार या १५० मि. ग्राम प्रति किलोग्राम शरीर के वजन के अनुसार प्रतिदिन।

(१) **सल्फासिटामाइड सोडियम**—ये आँखों के संक्रमण जैसे आँख आना व कार्नियल अल्सर में उपयोगी है। इसका १०, २० व ३० प्रतिशत का घोल आँखों में डालने के उपयोग में लाया जाता है। बाजार में यह एल्बुसिड (Albucid) लाकुला (Lacula) के नाम से मिलती है।

(२) **सल्फाडाइजन** (Sulphadizan)—यह स्वादरहित होती है व पानी में अघुलनशील है। यह कई संक्रामक रोगों में उपयोगी है। जैसे—

(a) श्वसन संस्थान का संक्रमण (सर्दी, खाँसी, निमोनिया इत्यादि)।
(b) विसर्जन संस्थान के रोग (गुर्दे में सूजन इत्यादि)।
(c) मेनिंगोकोक्स मेनिन्जाइटिस इत्यादि।

मात्रा—२ से ३ ग्राम या २००० मि. ग्राम से ३००० मि. ग्राम प्रथम डोज व हर चार घण्टे बाद १ ग्राम या १००० मि. ग्राम ४८ घण्टे तक।

(३) **सल्फाडायमिडिन**—इसका स्वाद तीखा होता है और यह पानी में अघुलनशील है। यह आँत के द्वारा बहुत ही जल्दी सोख ली जाती है व इसका विसर्जन (Excreation) धीरे-धीरे होता है अतः इसका असर शरीर में अधिक समय तक रहता है। इसका सबसे अधिक स्तर (Concentration) खून में चार से छः घण्टे में होता है। बच्चों के लिए यह तरल रूप में भी मिलती है। इसकी मात्रा व उपयोग सल्फाडाइजिन की तरह होता है।

(४) **सल्फागोनेडिन**—यह पानी में घुलनशील है। यह आंत में बहुत ही कम सोखी जाती है। अतः इसका व थेलाइल सल्फाथाझोल (phthalyl sulfthyazole) का उपयोग आंत के संक्रमण में किया जाता है।

मात्रा—५ से १० ग्राम प्रतिदिन दिन में चार बार।

(५) **नाइट्रोफ्यूरेनटोइन** (Nitrofurantoin)—यह बाजार में फ्यूराडेन्टिन (Furadentin) के नाम से मिलती है। यह गुर्दे (kidney) की बीमारी में उपयोगी है।

मात्रा—५ से ८ मि. ग्रा. प्रति किलोग्राम शरीर के वजन के अनुसार।

(६) **मेट्रोनाइडे झोल** (Metronidazole)—यह बाजार में फ्लेजिल (Flagyl) के नाम से मिलती है। यह पानी में घुलनशील है। यह स्त्री के जननांग के संक्रमण में उपयोगी है। यह ज्यादातर ट्रायकोमोनस वेजायनेलिस (Tricomonas vaginalis) नामक जीवाणु के कारण होता है।

मात्रा—२०२ मि. ग्रा. दिन में ३ बार ७ दिन तक।

एण्टिबायोटिक—ये वे पदार्थ हैं जो जीवाणु (Bactiria) एक्टिनोमाइसेट्स (Actinomycets) व फंफ़ूद (Fungus) के द्वारा पैदा किये जाते हैं। ये रोगाणुओं की वृद्धि को रोकते हैं व रोगाणुओं को नष्ट करते हैं।

१११. पेनिसिलिन

(१) यह रोगाणुओं की वृद्धि को रोकती है व रोगाणुओं को नष्ट करती है।

(२) बार-बार पेनिसिलिन देने पर रोगाणुओं में अवरोध (Resistance) पैदा हो जाता है व पेनिसिलिन का उन पर कोई असर नहीं होता है।

(३) पावडर रूप में यह दो से तीन वर्ष तक उपयोग में लाई जा सकती है। परन्तु पानी में घोलने के बाद इसका उपयोग २४ घण्टे तक करना चाहिए।

(४) बेन्झाइल पेनिसिलिन अमाशय में नमक के अम्ल (Hydrochloric acid) के कारण नष्ट हो जाती है अतः इसे इन्जेक्शन के द्वारा दिया जाता है।

इसका स्तर (Concentration) खून में उच्च स्तर पर ३० मिनिट में पहुँच जाता है व ४ घण्टे में इसका विसर्जन (Excreation) हो जाता है। अतः दूसरा इन्जेक्शन ४ घण्टे बाद लगाना चाहिए।

(५) फेन्थिसिलिन (Phenthicillin) व एम्पीसिलिन (Ampicillin) मुँह के द्वारा दी जा सकती है।

(६) प्रोकेन पेनिसिलिन (Procain penicillin) का विसर्जन २४ घण्टे में होता है। अतः इसका दूसरा इन्जेक्शन २४ घण्टे बाद लगाना चाहिए।

(७) इसका उपयोग बहुत से संक्रामक रोगों में किया जाता है।

(८) इसके द्वारा मरीज की हालत ४८ घण्टे में बहुत कुछ अच्छी हो जाती है व इसे ७ से १० दिन तक देना चाहिए।

(९) श्वसन संस्थान के संक्रमण में यह बहुत ही उपयोगी है। जैसे टांसिल (Tonsilitis) की सूजन व पीप पड़ना, खांसी, निमोनिया।

(१०) **त्वचा**—पीप वाले घाव, जलना, संक्रमित छाला (Infected ulcer) बाल तोड़ (Boil) इत्यादि में उपयोगी है।

(११) **गुप्तरोग**—सुजाक (Gonorrhea) की बीमारी में ५००,००० यूनिट बेन्झाइल पेनिसिलिन के इन्जेक्शन तीन दिन तक दिन में दो बार लगाने पर पूर्ण आराम हो जाता है या प्रोकेन पेनिसिलिन का एक इन्जेक्शन ६००,००० यूनिट का तीन दिन तक देने पर आराम हो जाता है।

(१२) गर्मी (Syphilis) की बीमारी में एक मेगा यूनिट प्रोकेन पेनिसिलिन का इन्जेक्शन ८ दिन तक लगाने पर पूर्ण आराम हो जाता है।

(१३) पित्ताशय की सूजन व मोतीझरा में यह उपयोगी नहीं है।

(१४) गुर्दे की बीमारी में यह बहुत उपयोगी है।

(१५) किसी-किसी को पेनिसिलिन के इन्जेक्शन से रियेक्शन (Reaction) हो जाता है। रियेक्शन दो प्रकार का होता है: (१) उसी समय (Early) (२) देर से (Late)।

१. **उसी समय**—मरीज को इन्जेक्शन लगाते वक्त ही घबराहट होती है, पसीना आता है उसका रक्तचाप कम हो जाता है व मरीज मर भी सकता है।

इलाज :

(अ) मरीज को एडरिनेलिन (Adrenalin) का इन्जेक्शन ०·५ ml. १ : १००० का लगाना चाहिए या डेकाड्रान ४ मि. ग्रा. का इन्जेक्शन लगाना चाहिए।

(ब) ऑक्सीजन देना चाहिए।

(ग) केल्सियम ग्लूकोनेट का इन्जेक्शन शिरा (Intravenous) में देना चाहिए।

(द) ग्लूकोज सलाइन चढ़ाना चाहिए।

(इ) एन्टिहिस्टामिनिक जैसे एविल २ मि० ली० का इन्जेक्शन लगाना चाहिए।

(उ) मरीज को अस्पताल में भरती कर लेना चाहिए व २४ घण्टे बाद घर भेजना चाहिए।

२. **देर से** (Late)—यह रियेक्शन कुछ घण्टों बाद हो सकती है।

(१) मरीज को खुजली हो सकती है।

(२) सारे बदन में सूजन आ सकती है।

(३) लाल-लाल दाने पूरे शरीर में हो सकते हैं।

(४) घबराहट व उल्टियाँ हो सकती हैं।

इलाज :

एण्टीहिस्टामिनिक की गोली या इन्जेक्शन देना चाहिए।

मरीज को समझना चाहिए कि वह भविष्य में पेनिसिलिन का इन्जेक्शन, गोली या मरहम का उपयोग न करें।

१. **बेन्झाइल पेनिसिलिन** (Benzyl Penicillin)—यह सफेद पावडर होता है व पानी में घुलनशील है। यह बाजार में क्रीस्टालाइन पेनिसिलिन या सी. पी. (Crystalline Penicillin or C. P.) के नाम से मिलता है।

मात्रा—२५०,००० यूनिट से १०००,००० यूनिट दिन में २ से ४ बार।

२. **पेनिसिलिन गोली** (Penicillin Tablet)—२००,००० यूनिट की १ गोली दिन में ३ बार।

३. **पेनिसिलिन वी गोली** (Penicillin V Tablet) : **मात्रा**—१२५ से २५० मि० ग्रा० हर ४ घण्टे में।

४. **प्रोकेन पेनिसिलिन** (Procain Penicillin)—इसका इन्जेक्शन ३००,००० यूनिट १ मि० लि० का आता है।

मात्रा—३०००,००० यूनिट से १०००,००० यूनिट प्रतिदिन।

५. **एम्पीसिलिन** (Ampicillin)—यह बाजार में एम्पीसिलिन केम्पीसिलिन इत्यादि नामों से मिलता है।

मात्रा—२५० से ७५० मि० ग्रा० प्रतिदिन हर ६ या ८ घन्टे में।

६. **इरिथ्रोमाइसिन** (Erythromycin)—यह बाजार में एलथ्रोमाइसिन, इरिथ्रोसिन व इरिथ्रोमाइसिन के नाम से मिलता है। यह रोगाणुओं की वृद्धि को रोकता है। यह बेन्झाइल पेनिसिलिन की तरह ही असर कारक होता है, कुछ रोगाणुओं पर पेनिसिलिन का असर नहीं होता है परन्तु इरिथ्रोमाइसिन उनकी वृद्धि रोकने में सक्षम है। जिन रोगियों को पेनिसिलिन का रियेक्शन होता है उनके लिये यह बहुत ही उपयोगी है। इसने रियेक्शन नहीं होती है।

मात्रा—२५० मि० ग्रा० दिन में चार बार।

७. **स्ट्रेप्टोमाइसिन** (Streptomycin)—इसका उपयोग तपेदिक (T. B.) में किया जाता है। यह तपेदिक के कीटाणओं को नष्ट करती है। यह कुछ दूसरे कीटाणु

जिन्हें पेनिसिलिन नष्ट नहीं कर पाती जैसे ग्राम निगेटिव कीटाणु उन्हें यह नष्ट करने में सक्षम होती है अतः इसे व पेनिसिलिन को मिलाकर इन्जेक्शन दिया जाता है। बाजार में यह इन्जेक्शन स्ट्रेप्टो पेनिसिलिन के नाम से मिलता है। यह मुँह से लेने पर आंत के द्वारा सोखी नहीं जा पाती है अतः यह दस्त लगना (Diahhorea) खून के दस्त (Dysentery) व हैजा (Cholera) में उपयोगी है। इन बीमारियों में इसे क्लोरसफेनिकाल के साथ मिलाकर केप्सूल के रूप में दिया जाता है। बाजार में ये केप्सूल क्लोरोस्ट्रेप, स्ट्रेप्टोपेरासिसन इत्यादि नामों से मिलते हैं। ये दिन भर में ८ केप्सूल दिये जाते हैं।

अनुसरण :

१. **क्लोरटेट्रासाइक्लिन हाइड्रोक्लोराइड** (Chlortetra cycline Hydro chloride)—यह बाजार में आरयोमाइसिन (Aureomycin) के नाम से मिलता है। केप्सूल २५० मि० ग्रा० के मिलते हैं।

मात्रा १० ये ३० मि० ग्रा० प्रति किलोग्राम शरीर के वजन के अनुसार।

२. **आक्सीटेट्रासाइक्लिन डाइहाइड्रेट** (Oxytetracycline Dihydrate)—यह बाजार में टेरामाइसिन के नाम से मिलता है। इसके केप्सूल २५० मि. ग्रा. के मिलते हैं। इन्जेक्शन १०० मि. ग्रा. के मिलते हैं। इन्जेक्शन ५० मि. ली. १ मि. ली. में होता है।

मात्रा—(१) (केप्सूल) वयस्क को १ से २ ग्राम या ४ से ८ केप्सूल प्रतिदिन बच्चे को १० से २० मि. ग्राम प्रतिदिन प्रति किलोग्राम शरीर के वजन के अनुसार।

(२) इन्जैक्शन (Intramuscular) १०० मि. ग्रा. से २०० मि. ग्रा. रोज दिन में दो बार।

(३) टेरामाइसिन गोली २५० मि. ग्रा. ४ से ८ गोली प्रतिदिन।

३. **टेट्रासाइक्लिन हाइड्रोक्लोराइड** (Tetracycline Hydrochloride)—बाजार में यह एक्रोमाइमिन (Acromycin) या टेट्रासिन (Tetracin) के नाम से मिलती है।

मात्रा : वयस्क—१ से ३ ग्राम या २५० मि. ग्रा. के केप्सूल ४ से १२ रोज।

बच्चे को—१० मि. ग्रा. से ३० मि. ग्रा. प्रति किलोग्राम शरीर के वजन के अनुसार।

इन्जैक्शन २०० मि. ग्रा. से ४०० मि. ग्रा. प्रतिदिन दिन में दो बार।

४. **टेट्रासाइक्लिन हाइड्रोक्लोराइड** (Tetracycline Hydrocloride)—ये बाजार में टेट्रामाइक्लिन के नाम से मिलते हैं।

केप्सूल—२५० मि. ग्राम। **गोली**—२५० मि. ग्राम

इन्जैक्शन—५० मि. ग्रा एक मि. ली.। **मात्रा**—एक्रोमाइसिन की तरह।

१. टेट्रासाइक्लिन जीवाणुओं की वृद्धि को रोकता है। यह सभी प्रकार के जीवाणुओं पर असर करती है तथा साथ ही सिटिकोसिस ग्रुप के (वायरस) विषाणुओं की वृद्धि भी रोकती है।

२. उपरोक्त तीनों एण्टिबायोटिक का असर एक सरीखा होता है। ये कीटाणुओं की वृद्धि को रोकती है, परन्तु कीटाणुओं को नष्ट नहीं करती है।

३. ये आंत के द्वारा जल्द ही सोख ली जाती है।

४. ये आँत की श्लेष्मा झिल्ली पर इरिटेशन (Irritation) करती है।

५. इनके लेने के २ से ४ घण्टे पश्चात इनका कान्सेन्ट्रेशन (Concentration) रक्त में उच्च स्तर पर होता है व ६ घण्टे तक रहता है।

६. ये शरीर के सभी कोषों तक पहुँच जाती है। परन्तु दिमाग में बहुत ही कम मात्रा में पहुँच पाती है।

७. इसका ९०% विसर्जन यकृत (Liver) के द्वारा व १०% गुर्दे के द्वारा होता है।

८. किसी-किसी रोगी को इसके लेने के बाद—

(१) पेट में दर्द (Dis-Comfert) हो सकता है। (२) घबराहट व उल्टियाँ हो सकती हैं। (३) दस्त लग जाते हैं।

९. अगर उपरोक्त लक्षण दिखाई दें तो एण्टिबायोटिक बन्द कर देना चाहिए।

१०. यह बहुत से रोगों में उपयोगी है। जैसे गले का संक्रमण गर्मी की बीमारी (Syphilis), सुजाक की बीमारी (Gonnorrhea), निमोनिया इत्यादि।

११. ये मोतीझरा (Typhoid), गलाघोटू (Diphtherea), तपेदिक (Tuberculosis), फफूंद का संक्रमण (Fungal Infection) इत्यादि पर उपयोगी नहीं है।

१२. एण्टिबायोटिक पेनिसिलिन व स्ट्रेप्टोमाइसिन के साथ नहीं देना चाहिए।

१३. ये मरहम के रूप में पीप वाले घाव में उपयोगी है।

१४. सर्वप्रथम सलफा व पेनिसिलिन रोगी को देना चाहिए अगर जीवाणु इनसे अवरोध (Resistance) पैदा करले तो इनका उपयोग करना चाहिए।

क्लोरमफेनिकाल (Chloramphenical) :

यह बाजार में क्लोरोमाइसिटिन, एन्ट्रोमाइसिटिन, पेराक्सिन इत्यादि नामों से २५० मि. ग्रा. से केप्सूल में मिलता है। यह इन्जैक्शन के रूप में भी मिलता है।

मात्रा—१·५ ग्राम से ३ ग्राम प्रतिदिन।

१. यह मोतीझरा (Typhoid) की बीमारी में बहुत ही उपयोगी है।

२. यह जीवाणुओं की वृद्धि रोकता है।

३. यह मुंह से लेने पर आधा घण्टे में आंत के द्वारा सोख लिया जाता है व खून में इसका उच्च स्तर २ घण्टे में हो जाता है व ६ घण्टे तक रहता है।

४. इसका विसर्जन मुख्यतया गुर्दे के द्वारा होता है।

५. इसका अत्यधिक उपयोग करने से रोगी में खून की कमी (Anaemia) हो जाता है।

६. यह इन्फ्लूएंजा, निमोनिया, गुर्दे के संक्रमण इत्यादि में उपयोगी है।

७. मोतीझरे में ५०-६० मि. ग्रा. प्रति किलोग्राम शरीर के वजन के अनुसार ८-८ घण्टे से केप्सूल देना चाहिए जब तक कि रोगी का बुखार सामान्य न हो जावे। फिर ३० मि. ग्रा. प्रति किलोग्राम शरीर के वजन के अनुसार १४ दिन तक देना चाहिए।

★

११२. सेलिसलेट (Salisalate)

इनका उपयोग बहुत अधिक होता है। ये दर्द दूर करते हैं व बुखार कम करते हैं।

१. सेलिसिलिक एसिड मरहम एन्टिसेप्टिक होते हैं। इनके लगाने से त्वचा में कुछ जलन होती है।

२. इनके लगाने से पसीना कम आता है।

३. सेलिसिलिक एसिड मुँह से लेने पर पेट में दर्द होता है, घबराहट व उल्टियाँ होती हैं।

४. एस्पिरिन की अधिक मात्रा लेने पर अमाशय कि झिल्ली में सूजन आ जाती है व रक्तस्राव भी हो सकता है।

५. यह आँत के द्वारा जल्द ही सोख ली जाती है।

६. इसका विसर्जन यकृत व गुर्दे द्वारा होता है।

७. इसके लेने से बुखार कम हो जाता है या सामान्य हो जाता है।

८. इसके लेने से दर्द बहुत ही जल्द ठीक हो जाता है।

९. इसके लेने से सूजन कम हो जाती है।

१०. किसी-किसी को इसके लेने से शरीर में लाल-लाल दाने हो जाते हैं व खुजली चलने लगती है।

११. अधिक मात्रा में देने से बहरापन आ जाता है, उल्टियाँ होती हैं, पसीना अधिक आता है, श्वाँस जल्दी-जल्दी चलने लगती है, शरीर में पानी की कमी हो जाती है व फेफड़ों में सूजन आ जाती है।

१२. सेलिसिलिक एसिड मरहम त्वचा पर फँफूद रोग (Fungal Infection) में उपयोगी है।

१३. सेलिसिलिक एसिड का पावडर चाकमिट्टी में मिलाकर लगाने से हाथों व खाँक (Axilla) में पसीना कम आता है।

१४. मिथाइल सेलिसिलेट लिनिमेन्ट को मलने से र्‌यूमेटिजम व चोट (Sprain) के दर्द में आराम मिलता है।

एस्पिरिन ग्लिसिन (Aspirine Glycine) :

यह बाजार में पेनोसिन (Paynocin) के नाम से मिलती है। यह पानी में या थूक में बहुत ही जल्द घुल जाती है। अतः इससे अमाशय की श्लेष्मा झिल्ली पर कोई खराब असर नहीं होता है।

एस्पिरिन :

यह सफेद दानेदार पावडर होता है व पानी में घुलनशील होता है।

मात्रा ३०० मि. ग्रा. से १००० मि. ग्रा. प्रतिदिन इसकी ३०० मि. ग्रा. की गोली मिलती है।

★

११३. पुरुष नसबन्दी

यह एक बहुत ही आसान व दर्द रहित आपरेशन होता है। जब किसी पुरुष के २ या ३ बच्चे हो जाते हैं तो उसे नसबन्दी की सलाह देना चाहिए।

आपरेशन से पूर्व की तैयारी (Pre-operative) :

(१) सर्वप्रथम पुरुष की स्वीकृति (Consent) लिखित रूप से लेना चाहिए।

(२) शिश्न व पोते के आसपास के बाल किसी रेजर से अच्छी तरह साफ कर देना चाहिए व सफाई करने के पश्चात साबुन व पानी से अच्छी तरह धो लेना चाहिए। व्यक्ति का शारीरिक परीक्षण किया जाता है।

(३) फिर पुरुष को आपरेशन के कमरे में ले जाना चाहिए व उसे निर्वस्त्र करके आपरेशन टेबल पर सीधा लेटाना चाहिए।

(४) नोवोकेन या झायलोकेन का परीक्षण (Test) किया जाता है।

(५) फिर सेवलान से नाभि के नीचे से जाँघों के अन्दर तक का भाग साफ करना चाहिए व फिर स्प्रिट से साफ करना चाहिए।

(६) एक निसंक्रमित टॉवेल जिसके बीच में छेद हो डाल देना चाहिए अब आपको सिर्फ पोते का भाग दिखाई देगा।

(७) बाँये हाथ के अंगूठे व तर्जनी अंगुली से शुक्राणु नली को पकड़िये यह कार्ड के पीछे की तरफ होती है अतः अंगुली व अंगूठे को घुमा-घुमा कर उसे ऊपर की तरफ लाना चाहिए।

(८) पुरुष को कहिये कि उसे एक इन्जेक्शन लगाया जावेगा व पोते पर जहाँ आपने शुक्राणु नली को पकड़ रखा है २ से ३ सी. सी. नोवोकेन का इन्जेक्शन लगाइये व उस स्थान को करीब ३० सेकेण्ड तक मलिये। नोवोकेन लगाने से वह स्थान सुन्न हो जावेगा।

(६) अब करीब आधे इन्च का खड़ा चीरा लगाइये व कार्ड को एलिस फारसेफ से पकड़िये व कार्ड को स्केल्पल से साफ करिये। आपको दूध जैसे रंग की शुक्राणु नली दिखाई देगी उसे एलिस फारसेफ से ऊपर उठाइये व धागे से आधा इन्च छोड़कर दो सिरे से बाँध दीजिये व बीच के भाग को काट कर सुई पिरोकर देखिये। कहीं खून तो निकल नहीं रहा है। शुक्राणु नली को छोड़ दीजिये व त्वचा में १ टाँका धागे से लगा दीजिये व ड्रेसिंग कर दीजिये।

यही विधि दूसरी तरफ की शुक्राणु नली के लिए अपनाइये।

४थे या ५वें दिन त्वचा के टाँके काट दीजिये।

आपरेशन के बाद हिदायतें :

(१) २, ३ रोज हल्का कार्य करें।

(२) आपरेशन की जगह पानी व धूल न लगने दें।

(३) २, ३ माह साफ लंगोट पहनें।

(४) करीब ४ माह साइकिल न चलावें व घोड़े की सवारी न करें। शराब इत्यादि का उपयोग न करें।

(५) करीब १ माह सम्भोग न करें।

(६) प्रथम १२ बार सम्भोग के समय कंडोम उपयोग में लायें।

फायदा (Advantage) :

(१) यह एक छोटा सा आपरेशन है। इसमें अस्पताल में भरती होने की जरूरत नहीं होती है।

(२) आपरेशन में तकलीफ नहीं होती है।

(३) अगर व्यक्ति के बच्चे मर जावें तो इस आपरेशन के बाद नसों को वापिस जुड़वाया जा सकता है अतः बच्चे फिर से होने लगेंगे।

(४) आदमी को आराम की जरूरत नहीं होती है।

११४. महिला नसबन्दी

यह आपरेशन बड़ा होता है इसमें पेट खोलना पड़ता है।

(१) महिला को एक दिन पूर्व अस्पताल में भरती करना चाहिए।

(२) शाम को उसे हल्का भोजन देना चाहिए।

(३) रात को उसे एक गोली ट्रंकलाइजर की देनी चाहिए जिससे वह रात भर आराम से सो सके।

(४) सुबह सर्वप्रथम नाभि के नीचे व जाँघों के वहाँ तक रेजर से सफाई करना चाहिए व साबुन व पानी से अच्छी तरह धो देना चाहिए व मरक्यूरी क्रीम पेन्ट कर देना चाहिए।

(५) हल्का एनिमा लगाया जाता है जिससे पेट साफ हो जाता है। शारीरिक परीक्षण करना चाहिए।

आपरेशन से पूर्व दवाइयाँ (Pre-Medication) :

(१) आपरेशन के आधा घण्टे पूर्व १०० मि. ग्रा. पेथिडिन का इन्जेक्शन व एक एम्पुल एट्रोपिन का इन्जेक्शन लगाना चाहिए। (पेथिडिन से नींद आती है व दर्द से आराम होने के लिए व एट्रोपिन माँसपेशियों के फैलाव के लिए होता है)

(२) महिला को आपरेशन टेबल पर ले जाने के पूर्व पेशाब कराना चाहिए।

(३) महिला को आपरेशन रूम में ले जाना चाहिए व आपरेशन टेबल पर सीधा लेटा देना चाहिए।

(४) पेट से जाँघों तक के भाग को सेवलान से साफ करिये व फिर आयोडिन व स्प्रिट से साफ करना चाहिए।

(५) फिर निसंक्रमित टावेल से ढक देते हैं। इसके बीच में एक छेद होता है। अतः अब सिर्फ आपरेशन करने की जगह दिखाई देती है।

(६) नाभि के करीब २" नीचे एक आड़ा करीब ३ इन्च का चीरा लगाइये।

(७) त्वचा अलग होने पर रेक्टस शीथ दिखाई देगा। रेक्टस शीथ को एलिस फारसेप से पकड़िये व त्वचा की भाँति चीरा लगाइये अब आपको रेक्टस माँशपेशी दिखाई देगी।

(८) इन्हें अंगुलियों की सहायता से अलग (Seperate) कर दिया जाता है। पेरीटोनियम दिखाई देगी।

(९) आर्ट्री फारसेप से पेरीटोनियम को पकड़ा जाता है व इसमें भी चीरा लगाया जाता है। अब पेट के अन्दर के अंग दिखाई देंगे जैसे आँत इत्यादि।

(१०) फेलोपियन ट्यूब गर्भाशय के फन्डस व बाड़ी के बीच में होती है अतः अपनी तर्जनी व मध्य अंगुलियों को अन्दर डालकर पहले फन्डस महसूस करिये व उसके सहारे दाहिनी तरफ अंगुलियाँ ले जाइये व ट्यूब महसूस होने पर उसे दोनों अंगुलियों की सहायता से पकड़ कर ऊपर लाना चाहिए व ट्यूब पकड़ने की फारसेप से ट्यूब पकड़ना चाहिए व उसके दो सिरों का एक इन्च छोड़कर केटगट से बाँध देना चाहिए व बीच का भाग काट दिया जाता है। यही विधि बाँये तरफ की नली के लिये करना चाहिए।

(११) पेरीटोनियम को केट गट से सी देना चाहिए।

(१२) रेक्टस माँसपेशी में १ या २ टांके लगाकर केटगट से सी दिया जाता है।

(१३) रेक्टस शीथ को केटगट से सी दीजिये।

(१४) अन्त में त्वचा को धागे की सहायता से सी दिया जाता है व ड्रेसिंग कर देना चाहिए।

आपरेशन के बाद महिला को ७ दिन तक अस्पताल में रखना चाहिए व ७ दिन तक उसे पेनिसिलन के इन्जैक्शन देना चाहिए व ७वें दिन टांके निकालकर घर जाने की छुट्टी दे दी जाती है।

हिदायत :

(१) महिला को १५ से ३० दिन तक पूर्ण आराम करना चाहिए व इस अवधि में सम्भोग क्रिया नहीं करना चाहिए।

(२) २ माह तक अधिक भार नहीं उटाना चाहिए।

(३) कोई भी तकलीफ हो तो प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र पर बताना चाहिए।

अनुसरण :

ए. एन. एम. का कार्य आपरेशन के पश्चात् अपनी भेंट एक सप्ताह के पश्चात् देना चाहिए। दूसरी भेंट १५ दिन या अगली माहवारी के पश्चात देना चाहिए। किसी भी प्रकार की तकलीफ हो तो महिला को स्वास्थ्य केन्द्र पर भेजना चाहिए।

११५. यकृत (Liver)

यह शरीर की सबसे बड़ी ग्रन्थि होती है। यह पेट के दाहिने व ऊपर की ओर पसलियों के पीछे स्थित है। इसका वजन मनुष्यों में १.४ से १.६ किलोग्राम होता है व स्त्रियों में १.२ से १.४ किलोग्राम होता है। यह १५ से २० से. मी. चौड़ा, १५ से १६ से. मी. लम्बा तथा १२ से १५ से. मी. मोटा होता है।

यह दो मुख्य भागों में विभक्त होता है : (१) दाहिना लोब, (२) बायाँ लोब।

कार्य—यह शरीर का एक महत्वपूर्ण जीवन (vital) अंग है। यह निम्नलिखित कार्य करता है :

(१) **रक्त** (Blood)—यह रक्त के लाल कणों को नष्ट करता है।

(२) यह रक्त के गोदाम के रूप में उपयोग में आता है।

(३) यह प्रोथ्रम्बिल व फाइब्रीनोजिन बनाता है जो रक्त का धक्का बनाने में मदद करते हैं।

(४) यह रक्त के तरल भाग (plasma) के सभी प्रोटीन बनाता है।

(५) यह लोह को इकट्ठा करता है, व लाल रक्त कणों को बनाने में मदद करता है।

(६) यह बाइल (Bile) रस बनाता है।

कार्बोहाइड्रेट मेटाबालिज्म (Carbohydrate Metabolism) :

(१) यह नानग्लूकोज पदार्थों को ग्लूकोज में परिवर्तित कर देता है।

(२) यह लेक्टिक एसिड, पायवुरिक एसिड व ग्लिसराल को ग्लूकोज व ग्लायकोजन में परिवर्तित कर देता है।

(३) यह ग्लायकोजन को सुरक्षित रूप में रखता है। व रक्त में ग्लूकोज कम हो जाता है तो इकट्टा ग्लायकोजन को रक्त में ग्लूकोज के रूप में पहुँचा देता है। इस प्रकार यह रक्त में ग्लूकोज की मात्रा बराबर रखने में मदद करता है।

(४) यह कार्बोहाइड्रेड से वसा बनाता है।

वसा (Fat) :

१. यह वसा को इकट्टा करके रखता है।

२. यह वसा के आक्सीडेसन में मदद करता है।

३. भोजन की वसा विशेष मनुष्य की बसा में परिवर्तित करता है।

४. यह कार्बोहाइड्रेट व प्रोटीन से बसा का निर्माण करता है।

५. यह कीटोन बाड़ी बनाता है।

प्रोटीन :

(१) यह यूरिया व यूरिक एसिड बनाता है

(२) यह प्रोटीन को तोड़ता है व उपयोगी बनाता है।

विटामिन :

यह विटामिन ए व डी इकट्ठा करके रखता है।

विसर्जन :

(१) यह भारी मेन्टल्स को बाईल जूस के द्वारा आँत में पहुँचाता है व वहाँ से मल के द्वारा उसका विसर्जन हो जाता है।

(२) कुछ कीटाणु, विष और दवाइयाँ बाइल रस के द्वारा विर्सजित होती हैं।

(३) कोलेक्ट्राल व बाइल पिगमेन्ट का विसर्जन बाइल रस के द्वारा होता है।

(४) कुछ दवाइयाँ जैसे स्ट्रीचनीन, निकोटिन, इत्यादि यकृत के द्वारा नष्ट कर दी जाती है।

(५) इसके आर. ई. सेल कीटाणुओं को नष्ट करते हैं।

●

११६. जनसंख्या समस्या

कोई भी देश अपना विकास नहीं कर सकता, अगर उस देश की जनसंख्या वृद्धि तथा विकास दर में उचित समन्वय न हो। जनसंख्या की वृद्धि १ से २, २ से ४, ४ से ८ इस गति से होती है जबकि अन्न का उत्पादन १ से २, २ से ३ की गति से बढ़ता है।

अतः जन्म दर तथा मृत्यु दर में जितना कम अन्तर होगा उतना ही वह देश अपने साधनों से अधिक लाभ उटा सकता है। इसका अर्थ कदापि यह नहीं कि मृत्यु

दर अधिक रखकर उससे जन्म दर का उचित समन्वय किया जाय। किसी भी देश की जनसंख्या वृद्धि को मापने के लिए उस देश की जन्म दर, मृत्यु दर, देश छोड़कर बाहर जाने वालों की संख्या तथा अन्य देशों से आकर बसने वाले लोगों की संख्या ज्ञात होना आवश्यक है।

किसी देश का, राज्य का या उसके किसी भाग का जन्म दर तथा मृत्यु दर निकालना हो तो, उस हेतु निम्नांकित सूत्र का उपयोग करना चाहिये। यह अवधि विशेष का निकालना चाहिए। यह प्रति हजार निकाली जाती है।

जन्म दर (प्रति हजार)— $\dfrac{\text{वर्ष में कुल जीवित जन्म} \times १०००}{\text{वर्ष के मध्य की जनसंख्या}}$

मृत्यु दर (प्रति हजार)— $\dfrac{\text{वर्ष के कुल मृत्यु} \times १०००}{\text{वर्ष के मध्य की जनसंख्या}}$

जनसंख्या वृद्धि—जन्म—मृत्यु + अन्य देशों से आने वाली संख्या
अन्य देश को जाने वाली संख्या

भारत एक लोक कल्याणकारी राज्य है, अतः यह स्वाभाविक ही है कि विभिन्न प्रयासों से मृत्यु दर कम की जाय, इस दिशा में काफी प्रयास किये गये हैं, विभिन्न प्रकार के संक्रामक रोगों के रोकथाम के समुचित उपाय किये गये, उदाहरणार्थ चेचक से भारत को पूर्ण रूप से मुक्त कर लिया गया है। बाढ़, अकाल, तूफान आदि प्राकृतिक प्रकोपों के समय समुचित कदम उठाकर जनता को शासन द्वारा सहायता की जाती है। परिणामस्वरूप या तो मृत्यु होती नहीं है या अत्यन्त अल्प होती है।

परिणामस्वरूप मृत्यु दर काफी कम हो गई, जो निम्न तालिका से स्पष्ट होता है।

वर्ष	मृत्यु दर प्रति हजार
१६४१–५०	२७.४
१६५१–६०	२२.८
१६६१–७०	१८.८

वर्तमान में मृत्यु दर लगभग १४ प्रति हजार है।

उपरोक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि मृत्यु दर काफी कम हो गई है।

इसी प्रकार अगर हम जन्म दर की ओर एक दृष्टि डालते हैं तो हम यह पाते हैं कि, पूर्व में हमारे भारत में जो जन्म दर थी वह भी परिवार नियोजन अपनाने हेतु विभिन्न प्रकार के प्रयासों से तथा प्रोत्साहन देने से कुछ कम करने में सफल सिद्ध हुए हैं। किन्तु हमारे देश के समुचित विकास तथा विकास दर को देखते हुए हमें जन्मदर को जितना कम करना चाहते थे तथा उस हेतु लक्ष्य निर्धारित किये गये थे उसे हम प्राप्त नहीं कर सके। इसके कई कारण हैं।

हमारे देश की जनसंख्या तथा जन्म दर निम्नानुसार है :

अवधि	जन्म दर (प्रति हजार)	जनसंख्या
१९५१–६०	४१.७	३६ करोड़
१९६१–७०	४०.०	४३ ,,
१९७१–	३६.९	५४ ,,

वर्तमान में भारत की जनसंख्या ६४ करोड़ है।

जनसंख्या वृद्धि का प्रभाव देश से विकास पर पड़ता है, क्योंकि हम जो भी विकास कार्य करते हैं वे बढ़ती जनसंख्या के कारण अपना उतना प्रभाव तथा लाभ जनसंख्या को नहीं दे पाते। जनसंख्या वृद्धि का प्रभाव देश तथा समाज पर आर्थिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक आदि प्रकार से पड़ता है।

भारत जैसे विकासशील देश के लिये यह सम्भव नहीं कि बढ़ती हुई जनसंख्या के अनुपात में, रोजगार, मकान, अन्न, कपड़ा आदि सुविधाएँ उपलब्ध कराई जावें। हालांकि इस प्रकार के प्रयास किये भी जा रहे हैं। किन्तु जब तक जनसंख्या वृद्धि की गति को सीमित नहीं किया जाता है तब तक सब प्रयासों का वांछित लाभ हम प्राप्त नहीं कर सकते हैं। क्योंकि हमारी जनसंख्या में प्रतिवर्ष लगभग १·५ करोड़, प्रतिदिन ३३ हजार जनसंख्या की वृद्धि होती है।

भारत की जनसंख्या वृद्धि दर निम्नानुसार रही है :

अवधि	जनसंख्या वृद्धि दर
१९४१–५१	१२.५ प्रति हजार
१९५१–६१	१८.९ ,,
१९६१–७१	२१·९ ,,

जिस गति से जनसंख्या वृद्धि होती है उस गति से ही अगर हम अन्न, कपड़ा, निवास, रोजगार आदि को उपलब्ध करा सकेंगे, या उसी गति से उत्पादन बढ़ायेंगे तो हम जिस स्थान पर आज खड़े हैं, उस स्थान पर ही खड़े पायेंगे जो सर्वथा योग्य नहीं है। अतः हमें अपने विकास की गति में तेज़ी लाना होगी फिर भी यह असम्भव ही है कि जनसंख्या वृद्धि के अनुरूप ही नहीं उससे भी अधिक विकास करे क्योंकि विकास की एक सीमा होगी, अन्न उत्पादन को भी एक सीमा तक ही बढ़ाया जा सकता है। जबकि जनसंख्या वृद्धि की कोई सीमा नहीं है। यह लगातार बढ़ती ही जावेगी। अतः जब तक हम जनसंख्या वृद्धि की गति को धीमा नहीं करते कुछ नहीं होगा। समस्याएँ पूर्ववत बनी रहेगी, असंतोष बढ़ता जावेगा, अतः जनसंख्या वृद्धि की गति को कम करना आवश्यक है।

★

११७. परिवार कल्याण

किसी भी देश की सर्वांगीण उन्नति उस देश की जनता के कल्याण हेतु अपनाये गये योजनाबद्ध प्रयासों पर निर्भर करती है। राष्ट्र की प्राथमिक इकाई परिवार होता है। परिवार से समाज तथा समाज से राष्ट्र का निर्माण होता है। परिवार के सभी सदस्य अगर मानसिक शारीरिक तथा सामाजिक रूप से स्वस्थ हो तो उस देश की सर्वतोन्मुखी प्रगति में किसी प्रकार की आशंका नहीं की जा सकती है।

अतः परिवार कल्याण कार्यक्रमों का आयोजन तथा क्रियान्वयन किया जाना नितांत आवश्यक है।

वर्ष १९७५ में राष्ट्रीय जनसंख्या नीति निर्धारित की गई। जिसमें वर्ष १९७८–७९ तक जन्म दर ३० प्रति हजार तथा १९८३–८४ तक २० प्रति हजार तक लाने का लक्ष निर्धारित किया गया। इस नीति में कुछ मुख्य मुद्दे निम्नलिखित हैं :

१. विवाह की आयु लड़की के लिए १५ से १८ वर्ष तथा लड़के के लिये १८ से २१ वर्ष करना।

२. सन् १९७१ की जनसंख्या के आधार पर ही सन् २००१ तक संसद में प्रतिनिधित्व, केन्द्रीय सहायता तथा केन्द्रीय आय में हिस्सा निर्धारित करना।

३. केन्द्रीय सहायता का आकार परिवार नियोजन के अन्तर्गत किये गये कार्य के आधार पर ही निश्चित करना।

४. लड़कियों की शिक्षा पर अधिक ध्यान देना।

५. सभी मंत्रालय तथा विभागों का परिवार नियोजन कार्यक्रम में सहयोग प्राप्त करना।

६. नसबन्दी हेतु आर्थिक क्षतिपूर्ति का आकार बढ़ाना।

७. पंचायतों, जिला परिषदों तथा अन्य संस्थाओं को प्रोत्साहन राशि आदि देना।

८. कार्यक्रमों से क्रियान्वयन हेतु स्वेच्छिक संगठनों विशेषतः जो महिलाओं से सम्बन्धित है से निकट सम्पर्क बढ़ाना।

९. खोज तथा अन्वेषण कार्य की ओर विशेष ध्यान देना।

१०. प्रेरणा के साधनों का विशेष उपयोग करना, विशेष कर ग्रामीण क्षेत्रों में स्वीकारकर्त्ताओं की संख्या अधिकाधिक बढ़ाना।

इसके पश्चात् १९७७ में पुनः राष्ट्रीय नीति का निर्धारण किया गया तथा परिवार कल्याण कार्यक्रम के रूप में अपनाया गया, जिसकी मुख्य-मुख्य बातें निम्नानुसार हैं। जिसमें पुरानी नीति की अच्छी बातों को शामिल किया गया, साथ ही कुछ नई बातों का भी सम्मिलन किया गया। जिसमें निम्न बातें मुख्य हैं :

१. परिवार कल्याण में सभी कल्याण कार्यक्रम जैसे, पोषक आहार, भोजन, कपड़ा, निवास, शिक्षा, शुद्ध पेयजल उपलब्ध कराना तथा महिला कल्याण शामिल किये गये।

२. परिवार कल्याण कार्यक्रम में अनिवार्यता, दबाव या जबरदस्ती का कोई स्थान नहीं रहेगा। वरन शिक्षात्मक तथा पूर्णतः स्वेच्छिक होगा।

३. विभिन्न प्रकार के गर्भ निरोधकों पर जोर दिया जाय तथा यह उस स्वीकारकर्त्ता के ऊपर छोड़ दिया जावे कि कौनसी विधि अपनाना चाहता है।

४. महिला नसबंदी, पुरुष नसबंदी स्वेच्छिक रूप से स्वीकारकर्ताओं के निशुल्क किये जावें, साथ ही कार्यक्रम के अन्तर्गत अन्य सेवाएँ भी निशुल्क दी जावें।

५. स्वेच्छिक नसबंदी या लूप निवेशन हेतु चिकित्सालय तक आने जाने तथा ठहरना आवश्यक होने से आर्थिक क्षतिपूर्ति जारी रहे।

६. स्वेच्छिक नसबंदी के पश्चात् अगर कोई कठिनाई हो तो उसकी चिकित्सा भी मुफ्त में की जाय। यहाँ तक कि नसबंदी के पश्चात् दुर्भाग्य से किसी प्रकरण में पुनः नस जोड़ने की आवश्यकता हो तो वह भी मुफ्त में की जावे।

७. प्रसूति पूर्व, प्रसूति के समय तथा प्रसूति पश्चात् की देखभाल करने के कार्य की ओर विशेष ध्यान दिया जावे। इस योजना के अन्तर्गत देशी दाइयों को भी प्रतिक्षण दिया जावे। बच्चों को कुँकर खाँसी, धनुर्वाद तथा गलघोटू बीमारी प्रति-रोधक टीके लगाने के कार्यक्रम का विस्तार भी किया जावे।

८. महिलाओं की शिक्षा पर विभिन्न माध्यमों से विशेष जोर दिया जावे।

९. लड़के तथा लड़की की विवाह की उम्र क्रमशः १८ से २१ व १५ से १८ बढ़ाई जावे।

१०. राज्यों को केन्द्रीय सहायता, करों में हिस्सा आदि को जहाँ जहाँ भी प्रश्न आवे १९७१ की जनसंख्या के आधार पर ही सन् २००१ तक निर्धारित की जावे।

११. परिवार कल्याण कार्यक्रम के संतोषजनक क्रियान्वयन हेतु ८% केन्द्रीय सहायता को राज्यों की परिवार कल्याण कार्यक्रम की सफलता से पूर्ववत जोड़ना जारी रहेगा।

१२. जनसंख्या सम्बन्धी शिक्षा को उच्च प्राथमिकता दी जावे।

१३. सभी प्रकार के प्रचार माध्यमों जिसमें विस्तार शिक्षा भी सम्मिलित है, का पूर्ण उपयोग परिवार कल्याण कार्यक्रमों को बढ़ाने के लिये किया जावे।

१४. श्रम संगठन, व्यापारिक संगठन, सहकारी समितियाँ, महिलाओं के संगठन, शिक्षकों के संगठन तथा अन्य सभी संस्थाओं जो जनमत को प्रभावित करती हों, से जनमत बनाने में सहयोग हेतु निकट सम्पर्क बनाया जावेगा। ग्राम पंचायतों का भी सहयोग इस हेतु प्राप्त किया जावेगा।

१५. शोध तथा अन्वेषण जो कि प्रजनन तथा रोकथाम से सम्बन्धित हों, के विषय में ध्यान दिया जावेगा।

इसी नई नीति में यह भी निश्चित किया गया कि वर्ष १९७८-७९ तथा १९८३-८४ तक क्रमशः जन्म दर ३० प्रति हजार व २५ प्रति हजार लाने का लक्ष्य निश्चित किया गया।

हाल ही में केन्द्रीय स्वास्थ्य कौन्सिल तथा केन्द्रीय परिवार कल्याण कौन्सिल जो कि उच्च शक्ति प्राप्त है। वर्तमान स्थिति, कार्य की गति, गतिरोध आदि पर विचार कर यह निर्णय लिया कि सन् १९८२-८३ तक ३० प्रति हजार जन्मदर लाया जाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया।

परिवार कल्याण कार्यक्रम के मुख्य दो भाग हैं :

१. **मातृ एवं शिशु कल्याण कार्यक्रम।**

२. **परिवार नियोजन**—भारत में योजनाबद्ध तरीके से सर्वांगीण विकास का प्रयास किया जा रहा है तथा इसके अन्तर्गत कृषि, शिक्षा, स्वास्थ्य रक्षा, वैज्ञानिक अनुसंधान आदि सभी दिशाओं में हमने उल्लेखनीय प्रगति की है, फिर भी सर्व-साधारण जन का जीवन स्तर, विकास कार्यों तथा प्रगति की तुलना में ऊँचा नहीं हो सका है। इसका एकमात्र कारण है जनसंख्या वृद्धि। अगर प्रत्येक परिवार सुखी, समृद्ध, स्वस्थ तथा सुनियोजित हो तो किये गये विकास कार्यों का लाभ समाज के सभी सदस्यों को समुचित मात्रा में प्राप्त हो सकता है।

परिवार के नियोजित होने के लिये यह आवश्यक है कि परिवार अपने परिवार के सदस्यों के स्वास्थ्य के प्रति आश्वस्त हो। इसके लिये यह आवश्यक है कि परिवार के सदस्य विशेषकर गृहिणी तथा बच्चों के स्वास्थ्य की रक्षा समुचित साधनों से की जावे, गर्भवती माता की देखभाल, बच्चों की देखभाल उचित ढंग से हो। क्योंकि हमारे देश में महिलाओं तथा ०—१४ वर्ष के बच्चों की संख्या कुल जनसंख्या का लगभग ६५ प्रतिशत है।

उपरोक्त बातों पर विचार करने पर परिवार नियोजन के वर्तमान चिंतन के अनुसार उन्हें निम्न क्षेत्र में विभाजित किया जा सकता है :

१. पारिवारिक जीवन की शिक्षा

२. यौन शिक्षा

३. शिशु जन्म में विलम्ब हेतु प्रयास

४. दो बच्चों के बीच समयांतर

५. परिवार को नियोजित करने का प्रयास तथा साधन

६. बांझ स्त्रियों की चिकित्सा।

(१) **पारिवारिक जीवन की शिक्षा**—इसके अन्तर्गत हम निम्न शामिल करते हैं :

(अ) वैवाहिक मार्गदर्शन,

(ब) वैवाहिक जीवन परामर्श,

(स) गृह प्रबन्ध पर विचार करते हैं।

(अ) वैवाहिक मार्गदर्शन—इसके अन्तर्गत विवाह हेतु उचित जीवन साथी का ढूँढना, उसके बारे में आवश्यक जानकारी प्राप्त करना, तथा उससे उचित ताल-मेल, स्वास्थ्य, रुचि, इच्छा, आकांक्षा, आर्थिक स्थिति, रूप, रंग, शिक्षा, आदि विभिन्न आधारों पर बैठ सकता है या नहीं, यह देखना यह कार्य होता है। इस कार्य हेतु भारत के कुछ बड़े शहरों में अशासकीय परामर्श केन्द्र कार्य कर रहे हैं। पश्चिमी देशों में इस प्रकार के केन्द्र स्थान-स्थान पर हैं। भारत में इस दिशा में प्रत्येक जाति अपने समाज के पंडित, मौलवी, तथा इस प्रकार के पेशेवर व्यक्ति या वधू वर सूचक मंडल, आदि के माध्यम से यह कार्य कर रहे हैं।

उद्देश्य यह है कि अगर योग्य जीवन साथी मिलता है तो उसके साथ जीवन सुख, समृद्धि तथा सन्तोषजनक ढंग से बिताया जाकर असन्तोष, मनमुटाव आदि के लिये कोई स्थान नहीं रहता है। परिणामस्वरूप परिवारों में कलह आदि न होकर परिवार टूटने से समाज को जो हानि होती है उससे बचा जा सकता है।

(ब) वैवाहिक जीवन परामर्श तथा,

(स) गृह प्रबन्ध—विवाह के वाद वैवाहिक जीवन किस प्रकार सुख, आनन्द, समृद्धिपूर्ण व्यतीत कर सकते हैं। इस हेतु यह आवश्यक है कि विवाह के बाद पति पत्नी को यौन सम्बन्ध के बारे में सही-सही तथा आवश्यक जानकारी हो तथा किस प्रकार परस्पर सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है। किस प्रकार की गलत फहमी से वैवाहिक जीवन वर्वाद हो सकता है। इस बात की जानकारी दी जाती है। इसी प्रकार अव्यवस्थित गृह प्रबन्ध किस प्रकार से पारिवारिक कलह को जन्म देता है, वहीं दूसरी ओर व्यवस्थित सुरुचिपूर्ण गृह प्रबन्ध के द्वारा किस प्रकार सुखी, समृद्ध तथा सन्तोषप्रद वैवाहिक जीवन का आनन्द लिया जा सकता है, यह सब इसके अन्तर्गत आते हैं। भारत में संयुक्त परिवार की प्रथा होने से घर की वृद्ध स्त्रियाँ, घर के बुजुर्ग आदि इस दिशा में परामर्श देने का काम करते हैं। वैसे इसके लिये विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण आदि देने की व्यवस्था भी कुछ स्थानों पर है। वैसे लड़कियों के लिये गृह प्रबन्ध नामक विषय भी पढ़ाया जाता है। यह गृहविज्ञान के अन्तर्गत आता है।

(२) **यौन शिक्षा**—यौन सम्बन्ध अत्याधिक संवेदनाशील होने से हम देखते हैं कि यौन शिक्षा के अभाव में कई प्रकार की भ्रांत धारणाओं का निर्माण हो जाता है, जिसके परिणाम भयंकर निकलते हैं। उत्सुकतावश युवक-युवतियाँ गलत मार्ग की ओर आकर्षित हो जाते हैं। परिणाम हानिकर साबित होते हैं। अतः यह आवश्यक

है कि यौन शिक्षा दी जावे ताकि उन्हें सही ज्ञान प्राप्त हो तथा मिथ्या धारणाएँ नहीं बनालें। शासन महाविद्यालयिन स्तर पर यौन शिक्षा देने पर विचार कर रहा है।

(३) शिशु जन्म में विलम्ब हेतु प्रयास।

(४) दो बच्चों के बीच समयांतर।

(५) परिवार नियोजित करने के प्रयास व साधन।

उपरोक्त तीन बातों पर हम एक साथ क्रम से विचार करेंगे। तीन बातों के लिये जिन साधनों का उपयोग होता है, उनका विभाजन हम निम्नानुसार करेंगे :

(१) स्थाई साधन, (२) अस्थाई साधन।

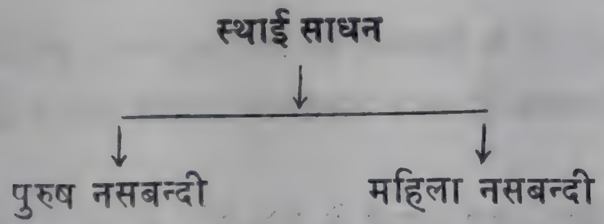

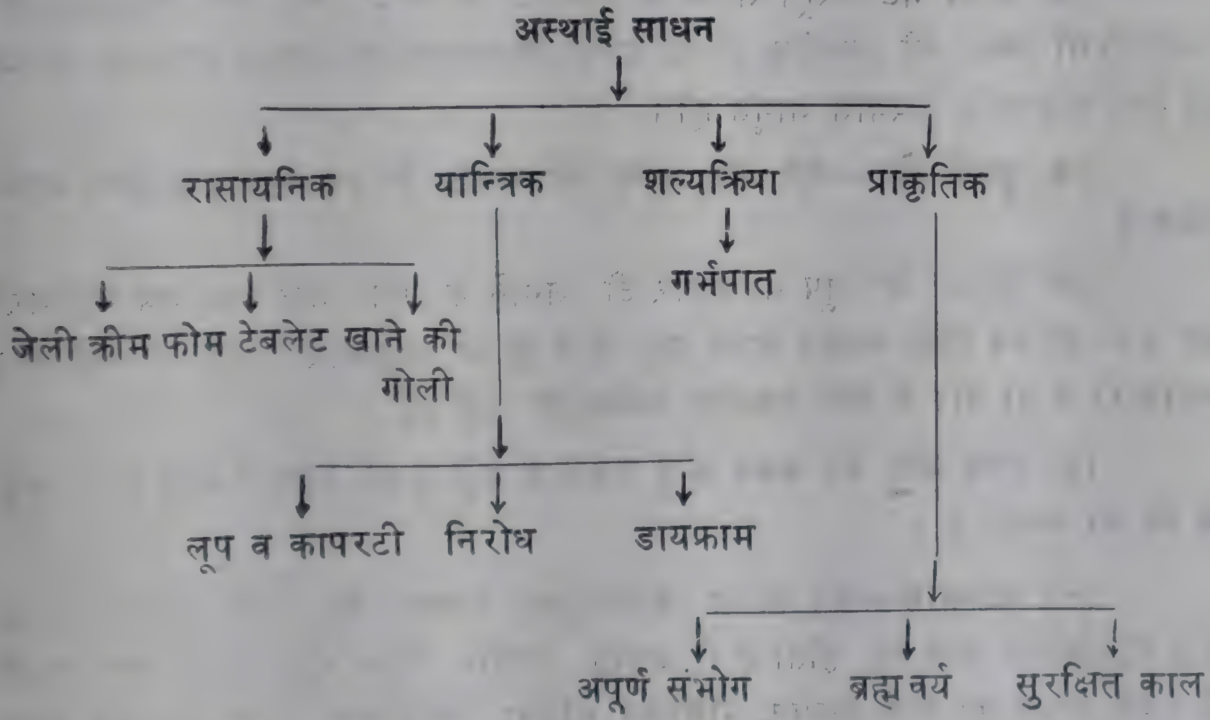

अस्थाई साधन :

(अ) यांत्रिक विधि—

(१) लूप या कापर टी—यह महिला को माहवारी के ५वें दिन से १०वें दिन या माहवारी के बाद यौन सम्पर्क होने के पूर्व कभी भी लगाया जाता है। आशय यह है कि लूप लगाने के पूर्व गर्भ धारण की क्षीण सी सम्भावना भी नहीं होनी चाहिए। यह विधि दो बच्चों के बीच समयान्तर बढ़ाने के लिये सर्वोत्तम है।

इसे लगाने का कार्य महिला चिकित्सक या प्रशिक्षित नर्स द्वारा किया जाता है। इसे लगाने पर यह आवश्यक है कि उस महिला के पूर्ण रूप से गर्भाशय का आन्तरिक परीक्षण करना चाहिये तथा यह देखना आवश्यक है कि गर्भाशय में सूजन,

छाले या अन्य कोई दोष तो नहीं है जिससे कि लूप या कापर टी लगाने पर किसी प्रकार की जटिलता उत्पन्न न हो। यह आवश्यक है कि गर्भाशय स्वस्थ हो।

लूप या कापर टी आवश्यक परीक्षण के बाद अगर महिला का गर्भाशय स्वस्थ हो तो लगाया जाता है, इसे लगाने के बाद प्रथम ३–४ दिन साधारण सा रक्त स्राव हो सकता है, कमर में कभी-कभी कुछ प्रकरणों में दर्द भी हो सकता है, अतः इसकी जानकारी महिला को पूर्व से दे देना आवश्यक है ताकि व्यर्थ की गलतफहमी न हो तथा साथ ही यह भी बता देना आवश्यक है कि अगर कोई कठिनाई हो तो वह तुरन्त निकट के चिकित्सालय में सम्पर्क साधे। इसे साधारण इलाज द्वारा दूर किया जा सकता है।

लूप या कापर टी के निवेशन के बाद अनुसरण करना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है ताकि माहिला को विश्वास हो तथा वास्तविक स्थिति मालूम हो सके। अनुसरण हेतु साधारणतः

(अ) प्रथम भेंट—लूप लगाने से २४ घंटे के अन्दर की जाना चाहिये ताकि अगर किसी प्रकार की तकलीफ हो तो उसका निराकरण तथा इलाज समय पर तुरन्त हो तथा महिला में विश्वास जागृत हो।

(ब) दूसरी भेंट—लूप या कापर टी लगाने के एक सप्ताह में होना आवश्यक है।

(स) तीसरी भेंट लूप या कापर टी लगाने के एक माह बाद जब महावारी आ चुकी हो तब होना चाहिये ताकि यह ज्ञात हो कि महावारी आई या नहीं तथा महावारी में या बाद में कोई तकलीफ विशेष तो नहीं हुई।

(द) इसके बाद भेंट अगर कोई तकलीफ नहीं है तो, प्रति ३ माह या ६ माह में की जा सकती है।

(२) **डायफ्राम**—यह साधन कटोरीनुमा आकार का रबर का बना होता है। यह विभिन्न माप का होता है। इसका उपयोग केवल महिलाएँ ही कर सकती हैं। इसे लगाने का कार्य प्रथमतः प्रशिक्षित महिला चिकित्सक द्वारा आवश्यक जाँच करने पर तथा महिला के गर्भाशय का माप लेने पर उस अनुसार किया जाता है। साथ ही महिला चिकित्सक उस महिला को किस प्रकार लगाया जाए तथा निकाला जाए इसका प्रशिक्षण भी देती है। महिला स्वयं अल्प श्रम से स्वयं लगाना तथा निकालना सीख जाती है।

केवल डायफ्राम का उपयोग नहीं किया जाता है। सावधानी के तौर पर इसके अन्दर की ओर जेली क्रीम लगाई जाती है, इसके पश्चात् इसे लगाया जाता है। इसे सम्भोग के पूर्व लगाया जाता है तथा यह आवश्यक है कि सम्भोग के बाद ८-१० घण्टे लगा रहे। पश्चात् इसे निकाल कर धोपोंछ कर, सुखाकर अगले उपयोग के लिये सुरक्षित रखा जाता है।

(३) **निरोध**—यह साधन रबर का बना होता है। यह सब साधनों में सरल, सर्वप्रचलित तथा लोकप्रिय साधन हो गया है। यह रबर का लम्बा थैलीनुमा होता है, यह मशीन द्वारा पूर्व से जाँचा हुआ होता है, अतः इसमें किसी प्रकार के छेद होने की सम्भावना नगण्य होती है। सम्भोग के समय पुरुष को इसे अपने शिश्न पर चढ़ा लेना चाहिए तथा संभोग के बाद इसे किसी सुरक्षित स्थान पर फेंक देना चाहिये या गाढ़ देना चाहिये. किन्तु ध्यान यह रखना आवश्यक है कि इसे बच्चों या अन्य किसी के हाथ नहीं पड़े। एक निरोध का उपयोग केवल एक बार ही करना चाहिये। निरोध का उपयोग करने के पूर्व यह आवश्यक रूप से देख लेना चाहिए कि उसके उपयोग की अन्तिम तिथि तो नहीं निकल गई है।

(ब) रासायनिक विधि—

(१) **फोम टेबलेट या झागदार गोली**—यह गोली शुक्राणु नाशक औषधि से बनी होती है। इसकी एक गोली सम्भोग के २-३ मिनिट पूर्व पानी में भिगोकर स्त्री योनि द्वार से अन्दर रखी जाती है। यह गोली गीली होने से गर्भाशय में झाग बनाना प्रारम्भ कर देती है। गोली रखकर २–३ मिनिट के अन्दर सम्भोग किया जाय तो. स्खलन होने पर झाग शुक्राणुओं को समाप्त कर देता है। अगर गोली रखने को अधिक समय हो गया हो तो उसका असर खतम हो जावेगा। अतः ऐसी स्थिति में पुनः एक गोली गीली करके रखना चाहिए।

(२) **जेली क्रीम**—यह एक प्रकार की क्रीम होती है, इसमें भी शुक्राणु समाप्त करने की औषधि होती है। इसे सम्भोग के पूर्व एप्लीकेटर के द्वारा योनि मार्ग से अन्दर प्रविष्ट कराया जाता है, तथा इसके तुरन्त बाद सम्भोग किया जाता है। इसके सम्पर्क में आने पर शुक्राणु नष्ट हो जाते हैं।

(३) **गर्भ निरोधक खाने की गोली**—यह विधि केवल महिलाओं के लिये ही है। यह गोली प्रारम्भ करने के पूर्व महिला को अपना पूर्ण परीक्षण किसी महिला चिकित्सक से कराना चाहिए तथा उनकी सलाह के अनुसार समय-समय पर जाँच कराना चाहिए। यह गोली माहवारी के ५वें दिन से प्रति दिन एक खाई जाती है तथा वह पेकेट समाप्त होने तक प्रतिदिन खाना होती है। गोली खाना प्रारम्भ करने पर नियमित रूप से गोली खाना आवश्यक है, इसमें किसी प्रकार की अनियमितता नहीं होनी चाहिए। अगली माहवारी प्रारम्भ होने से ५वें दिन पुनः प्रारम्भ करना चाहिए। यह क्रम तब तक जारी रहना चाहिए जब तक सन्तान उत्पत्ति की आवश्यकता न हो। गोली प्रारम्भ करने पर कभी-कभी चक्कर आना, मिचली आना, रक्त स्राव होना आदि शिकायत हो सकती हैं। अतः तुरन्त चिकित्सक से परामर्श करना चाहिए।

(स) प्राकृतिक विधि—

(१) **अपूर्ण सम्भोग**—इस विधि में सम्भोग क्रिया करते समय सतर्क रहना आवश्यक है, सम्भोग क्रिया के अन्तिम चरण में जब स्खलन होने की स्थिति आती

है तब पुरुष अपने शिश्न को योनी से बाहर निकाल लेता है तथा बाहर स्खलन करता है। जिससे शुक्राणु योनी मार्ग में प्रवेश नहीं कर पाते।

(२) **ब्रह्मचर्य**—यह विधि सब विधियों से सरल है। इस विधि में जब तक सन्तान की आवश्यकता न हो तब तक सम्भोग नहीं किया जाता। सम्भोग क्रिया से अनुपस्थित रहना ही ब्रह्मचर्य है। इसमें किसी प्रकार की औषधि या साधन की आवश्यकता नहीं होती है। केवल आवश्यकता है मनो निग्रह दृढ़ निश्चय की तथा उसके पालन की।

(३) **सुरक्षित काल**—यह वह काल है जब सम्भोग करने पर गर्भधारण की सम्भावना नगण्य होती है।

यह विधि उन्हीं प्रकरणों में उपयोगी है जिसमें महिला का महावारी चक्र नियमित हो तथा चक्र की अवधि निश्चित हो। इसकी गणना करने के लिये यह जानना आवश्यक है कि महावारी से १४ से १६ दिन पूर्व स्त्री बीज अण्डाणु निकलता है, अतः उस तिथि से ४ दिन पूर्व तथा चार दिन बाद तक संभोग नहीं करना चाहिये, यह काल असुरक्षित काल है। उदाहरण के लिये, अगर किसी महिला को माहवारी ३० दिन में नियमित रूप से आती है, तथा आने वाली माहवारी तारीख ३० को है तो सम्भवतः उस महिला का अण्डाणु दिनांक १४ से १६ के बीच निकलेगा अतः इसके पूर्व ४ दिन याने दिनांक १० से तथा ४ दिन बाद याने दिनांक २० तक संभोग नहीं करना चाहिये। इसका तात्पर्य यह हुआ कि माहवारी के बाद प्रथम दस दिन तथा अन्तिम दस दिन संभोग के लिए सुरक्षित हैं। इस अवधि में संभोग करने पर गर्भ धारण की सम्भावना नगण्य होती है। इसी प्रकार माहवारी २४ दिन, २६ दिन, या २८ दिन की होने पर इसी प्रकार गणना की जा सकती है। बीमारी, बुखार, तापमान आदि कारणों से अण्डाणु कभी-कभी जल्दी या विलम्ब से निकल सकता है। अतः इस विधि पर पूर्णतः विश्वास नहीं किया जा सकता है।

गर्भ का चिकित्सकीय कानूनी समापन—पूर्व में गर्भपात कानूनी रूप से अपराध था, परिणामस्वरूप गर्भपात का कार्य नीम हकीम, फरेबी, अनुभवहीन व्यक्तियों द्वारा अनाधिकृत रूप से यह कार्य चोरी छिपे तौर पर किया जाता था जिसका परिणाम कभी-कभी अत्यन्त भयानक होता था, महिला को कभी-कभी प्राण से भी हाथ धोना पड़ता था।

अतः शासन द्वारा सन् १९७१ में गर्भ का चिकित्सकिय समापन अधिनियम बनाकर कुछ निश्चित स्थितियों में अधिकृत चिकित्सकों को गर्भ समापन करने की अनुमति प्रदान की। नियमों के अनुसार निम्न स्थितियों में उक्त अधिनियम के अन्तर्गत गर्भपात करने की अनुमति दी गई :

१. गर्भवती का जीवन बचाने के लिये।

२. गर्भवती स्त्री को गम्भीर शारीरिक अथवा मानसिक आघात से बचाने के लिये।

३. मानवीय आधार पर जहाँ गर्भ धारण बलात्कार के कारण हुआ हो।

४. यदि उसका सप्रमाण कारण हो कि जन्म लेने वाला बच्चा ऐसी शारीरिक अथवा मानसिक अप-सामान्यताओं का शिकार होगा, जिससे वह गम्भीर रूप से विकलांग हो सकता है।

५. यदि गर्भ निरोधक उपाय के असफल हो जाने पर गर्भ ठहर जाता है।

६. अगर यह सम्भावना हो कि गर्भवती स्त्री पर वातावरण अथवा परिस्थितियों के कारण उसके स्वास्थ्य को नुकसान पहुँच सकता है।

गर्भपात की सुविधाओं की उपलब्धि—सभी शासकीय चिकित्सालय अथवा संस्था जहाँ शासन द्वारा चिकित्सकीय कानूनी गर्भपात करने की अनुमति प्रदान की हो। उसकी सूचना, सूचनापट्ट पर सम्भावित चिकित्सा संस्थाओं में उपलब्ध रहेगी।

कानूनी गर्भपात कौन कर सकता है ?

१. प्रसूती और स्त्री रोग विज्ञान में सभी स्नातकोत्तर अथवा प्रसूती और स्त्री रोग विज्ञान में ६ महीने का व्यावहारिक अनुभव रखने वाले शल्य चिकित्सा के स्नातकोत्तर डाक्टर।

२. प्रसूती और स्त्री रोग विज्ञान में ५ वर्ष का अनुभव रखने वाले एम. बी. बी. एस. (स्नातक) डाक्टर।

३. ऐसे एम. बी. बी. एस. डाक्टर जिन्होंने प्रसूती और स्त्री रोग विज्ञान में ६ महीने की हाउस जॉब कर रखी है अथवा इस कार्य के लिये स्वीकृत डाक्टरी शिक्षा संस्थानों में कानूनी गर्भपात में तीन महीने का प्रशिक्षण प्राप्त किया हो।

गर्भ का कानूनी चिकित्सकीय समापन—रोगी के गर्भावस्था का निदान करने पर उसका पूरा नाम, पता, उम्र आदि समस्त विवरण प्राप्त किया जाता है, जिसे पूर्ण रूप से गोपनीय रखा जाता है। १२ सप्ताह तक का गर्भावस्था में समापन करना अत्यन्त ही आसान होता है। १२ सप्ताह से अधिक व २० सप्ताह से कम की अवधि के गर्भ का समापन किया जा सकता है, किन्तु यह गर्भपात दो डाक्टरों की लिखित सलाह पर ही किया जा सकता है। गर्भ समापन हेतु गर्भिणी को स्वयं को अपनी स्वीकृति लिखित में देना पड़ती है अगर गर्भिणी नाबालिक हो अथवा विकृत मानसिकता वाली हो तो उसके संरक्षक से लिखित सहमति प्राप्त करना आवश्यक है।

सावधानी :

१. गर्भ धारण सम्बन्धी जानकारी प्राप्त होते ही, जितनी जल्द हो सके अगर आवश्यक हो तो गर्भ का समापन करा लेना चाहिये।

२. बार-बार गर्भ का समापन कराना स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है। अतः अगर सन्तान दो से कम हों तो अन्य साधन बरतने चाहिए।

गर्भपात कराने के पश्चात् अगर कोई कठिनाई हो जैसे, रक्त स्राव, बुखार, वेदना या माहवारी में गडबड़ी आदि हो तो तुरन्त चिकित्सक से सम्पर्क साधना चाहिये।

(६) **बांझ स्त्रियों की चिकित्सा**—इसके अन्तर्गत उन स्त्रियों की चिकित्सा की जाती है जिन्होंने संतान को जन्म ही नहीं दिया है। आवश्यक जाँच परताल के बाद जिस बात की कमी, विकृति पात्र की हो उसको दूर करने का प्रयास किया जाता है। क्योंकि परिवार नियोजन होना चाहिए यह सत्य है जहाँ संतान ही नहीं है वहाँ नियोजन का प्रश्न नहीं किन्तु ऐसा नहीं प्रत्येक दयात्री को संतान होना, उनके परिवार के समाज तथा राष्ट्र के हित में ही है। अतः ऐसी स्त्रियों की आवश्यक चिकित्सा कर उन्हें संतान लाभ हो इस बात का प्रयास किया जाता है।

●

११८. जल

कोई भी प्राणी बिना पानी के जीवित नहीं रह सकता। प्रतिदिन सोकर उठने से लेकर रात्रि को सोते तक विभिन्न कार्यों के लिये पानी की आवश्यकता होती है।

पानी का संगठन H_2O—हायड्रोजन दो भाग तथा ऑक्सीजन का एक भाग मिलाने पर पानी बनता है।

पानी के स्रोत—वर्षा, नदी, तालाब, पोखर, झरने, जमीन के अन्दर में स्थित जल जिसमें कुएँ, ट्यूबवेल आदि आते हैं, पानी दो स्थानों पर उपलब्ध होता है :

१. सतही पानी जो जमीन के ऊपर उपलब्ध होता है जैसे नदी, पोखर, तालाब आदि।

२. गहरा पानी जो जमीन के अन्दर स्थित है जिसे खोदकर निकाला जाता है जैसे—कुआँ, ट्यूबवेल आदि।

पानी के प्रकार—(१) मृदु जल, (२) कठोर जल।

मृदु जल, का ही उपयोग पेयजल के रूप में किया जाता है, कठोर जल को भी उबालकर या रासायनिक पदार्थ मिलाकर मृदु जल में परिवर्तित किया जा सकता है, किन्तु यह महँगा होता है।

जल का उपयोग—(१) पेयजल के रूप में, (२) साफ सफाई के लिये, (३) नहाने, कपड़े धोने आदि घरेलू काम के लिये, (४) उद्योगों के लिये, (५) कृषि में सिंचाई के लिये, (६) मछली पालन के लिये आदि।

पेयजल—मृदु जल ही पेयजल के रूप में उपयोग किया जाता है। मानव में जल का कार्य :

१. शरीर का तापमान बनाये रखता है।

२. रक्त की तरलता बनाये रखता है।

३. भोजन आदि पदार्थों को घोलकर पचाने में सहयोग देता है।

४. शरीर के अनावश्यक तत्त्वों को बाहर निकालने मे मदद करता है।

५. शरीर के तन्तुओं को नरम, लचीला तथा चमड़ी को चमकदार बनाये रखता है।

स्वच्छ पेयजल—उपरोक्त जल स्रोतों में से जमीन के अन्दर का पानी शुद्ध व स्वास्थ्य के लिये साधारणतः निरापद होता है। प्रति व्यक्ति औसत ३० गेलन पानी प्रतिदिन उपलब्ध होना चाहिए। ग्रामीण क्षेत्रों में साधारणतः कुओं का पानी पीने के काम में लिया जाता है। अतः हम यहाँ पर मुख्यतः उस पर ही विचार करेंगे। कुआँ बनाने हेतु निम्न बातों का ध्यान रखना आवश्यक है :

(अ) स्थान का चयन :

१. कुआँ बनाने हेतु ऐसे स्थान का चयन करना चाहिए जहाँ पुराने खाद के गढ्डे न हों।

२. ढालू जमीन का चयन नहीं करना चाहिये।

३. कुएँ के स्थान के आसपास झाड़ न हो।

४. कुएँ का स्थान शौचालय व खाद के गढ्डे, मूत्रालय आदि से जिससे कुएँ का जल संक्रमित होने की सम्भावना हो, से ५० फुट कम से कम दूर हो।

५. कुआँ निवास स्थान से अधिक दूर न हो।

(ब) कुएँ की खुदाई व निर्माण :

१. कुएँ की खुदाई पक्की चट्टान आने तक या पक्की मुरम आने तक करना चाहिए ताकि उसमें सतही पानी (Subsoil Water) आने की संभावना न रहे।

२. कुएँ की खुदाई समुचित मात्रा में पानी प्राप्त होने तक करना चाहिये।

३. कुएँ की खुदाई होने पर उसकी जुड़ाई पत्थर या ईंटों से पक्के चूने तथा सीमेंट में करना चाहिए। यह जमीन से तीन फिट तक ऊँची लाना चाहिए।

४. चारों ओर एक तीन फिट चौड़ा चबूतरा (Plateform) जमीन से तीन फिट ऊँचा बनाना चाहिए।

५. चबूतरे का ढाल कुएँ की विपरीत दिशा में होना चाहिए तथा अंत में कम से कम ६" से ६" इन्च चौड़ी नाली बनाना चाहिए। ताकि चबूतरे के ढलान का पानी इस नाली में आ सके।

६. कुएँ के चारों ओर कम से कम तीन फीट ऊँची दीवाल होना चाहिये, किन्तु दीवाल गोल बनाना चाहिए ताकि इसका उपयोग उपभोगकर्ता बाल्टी, घड़ा आदि रखने के काम में न कर सके।

७. कुएँ को ऊपर से बन्द कर हेंड पम्प लगाना चाहिए। अगर यह संभव न हो तो जितनी गिर्री आवश्यक हो, लगावें। किन्तु कुए पर पानी खींचने के लिए सामूहिक रस्सी या चेन तथा बाल्टी रखना चाहिए।

८. कुएँ पर ढक्कन होना चाहिए ताकि उपयोग के पश्चात् उसे बंद किया जा सके।

९. कुएँ पर नहाने, बर्तन माँजने, कपड़े धोने की अनुमति नहीं होना चाहिए।

१०. कपड़े धोने, बर्तन माँजने के लिये अलग से पक्का चबूतरा कुएँ से कम से कम २५ फीट की दूरी पर बनाना चाहिए तथा इससे निकलने वाले गंदे पानी को कुएँ से ५० फीट की दूरी पर सोख्ते गढ्डे में पक्की नाली द्वारा जोड़ना चाहिए।

११. अलग से स्नान गृह बनाना चाहिये, जिसमें महिला तथा पुरुषों के लिए अलग-अलग व्यवस्था हो इसे कुएँ से ५० फीट की दूरी पर सोख्ते गढ्डे से पक्की नाली द्वारा मिलाना चाहिये।

ट्यूब वैल—इसमें मशीन द्वारा खुदाई की जाती है, खुदाई समुचित मात्रा में पानी आने तक की जाती है। इसमें यह भी ध्यान रखा जाता है कि सतही पानी न आवे। इसका व्यास एक इंच से ९ इंच तक या अधिक भी हो सकता है। १ इंच से १॥ इंच तक के व्यास द्वारा प्रति घण्टे २०० से ३०० गेलन पानी तथा ९ इंच के व्यास के ट्यूब वेल द्वारा ६०००० से ७०००० गेलन पानी प्रति घण्टे निकाला जा सकता है। यह पानी कीटाणु रहित होता है।

नदी झरने—इसका पानी मूलतः तालाब से अपेक्षाकृत शुद्ध होता है। किन्तु शहरों कस्बों की नालियों का पानी या कल कारखानों का अशुद्ध, गंदा जल अगर नदी या झरने में छोड़ा जाता है तो वह अशुद्ध हो जाता है। इसका पानी बिना साफ किये तथा कीटाणु रहित किये पीने के काम में नहीं लाना चाहिए। अगर इसका पानी पीने के काम में लेना आवश्यक हो तो जिस स्थान पर गन्दगी नदी या झरने में मिलती हो उससे कम से कम २०० फीट ऊपर की ओर से पानी लेना चाहिये।

तालाब—इसका पानी अगर यदि गंदगी से परे हो, यह बड़ा हो, गहरा हो, तथा इसमें नहाना, धोना आदि नहीं हो तो पेयजल के रूप में काम में लिया जा सकता है।

किन्तु सावधानी बतौर कुआँ, नदी, झरना तथा तालाब के पानी के शुद्धीकरण के बिना यह पीने के काम में नहीं लाना चाहिए। क्योंकि पानी की अस्वच्छता से निम्न रोग होते हैं :

(१) मोतीझरा (२) कृमीरोग (३) हैजा (४) पीलिया (५) पेचिस।

पेयजल का शुद्धीकरण—शुद्धीकरण की निम्न विधियाँ हैं :

(अ) **नैसर्गिक विधि**—१. एकत्रीकरण २. आक्सीडेसन या सेडिमेन्टेशन।

(ब) **कृत्रिम विधि**—१. उबालना २. आसवन क्रिया ३. रासायनिक कीटनाशक पदार्थ डालना ४. स्लो सैन्ड फिल्टररेपिड सैन्ड फिल्टर ५. निथारना।

(अ) नैसर्गिक विधि :

(१) **एकत्रीकरण**—इसमें केवल जल एकत्रित किया जाता है। जिसमें अपने आप जल स्थिर होने पर मिट्टी आदि नीचे बैठ जाती है।

(२) **सेडिमेन्टेशन**—इसमें पानी को कुछ समय तक स्थिर रखा जाता है। इससे पानी की अशुद्धियाँ, मिट्टी आदि नीचे बैठ जाती हैं।

(ब) कृत्रिम विधि :

(१) **उबालना**—इस विधि में पानी उपयोग के पूर्व उबाला जाता है। इससे पानी में उपस्थित कीटाणु मर जाते हैं तथा पानी पीने के लिए निरापद हो जाता है।

(२) **आसवन क्रिया**—इसमें पानी को उबाला जाता है, उबालते समय इसमें से वाष्प निकलती है। उसे अन्य बर्तन में काँच की नली द्वारा एकत्रित कर ठंडा करते हैं तब यह वाष्प पानी में परिवर्तित हो जाती है।

(३) **रासायनिक कीटनाशक पदार्थ डालना : (अ) पोटेशियम परमेगनेट**—यह काले रंग की दानेदार औषधि होती है। यह लगभग एक ड्राम २०० गेलन पानी के लिए पर्याप्त होती है। इससे पानी का रंग हल्का गुलाबी हो जाता है। इसका प्रचलन आजकल नहीं है।

(४) **ब्लीचिंग पावडर** (क्लोरीन युक्त चूना)—यह सफेद रंग का पावडर क्लोरीन के गंध युक्त होता है। ताजे ब्लीचिंग पावडर में ३३% क्लोरीन पाई जाती है। ज्यादा दिन तक यह पावडर खुला रहने पर क्लोरीन उड़कर कम हो जाती है। यह पावडर १०० गेलन पानी में लगभग ३० ग्रेन पर्याप्त होती है। यह पानी को कीटाणु रहित करने के लिए सर्वोत्तम कीटाणुनाशक है। इस पावडर को थोड़े पानी में बाल्टी में घोला जाता है तत्पश्चात् बाल्टी को कुएँ में छोड़कर पानी को ऊपर नीचे हिलाया जाता है। इसके डालने से पानी में क्लोरीन की हल्की सी गंध आती है। किन्तु यह सर्वथा निरापद है। पेयजल कुएँ का शुद्धीकरण प्रति सप्ताह करना चाहिये किन्तु हैजा, मोतीझरा आदि महामारी के रूप में हो तो तब शुद्धीकरण प्रतिदिन करना चाहिए। ताकि संक्रमण का भय समाप्त हो जाता है।

पेयजल को क्लोरीनिकृत करने हेतु पानी नापने की विधि तथा क्लोरीनिकृत करने की विधि निम्नानुसार है।

पानी के नापने का सूत्र :

(१) **गोल कुआँ**—$D^2 \times W \times 5$ = कुएँ में तादाद गेलन पानी

D—व्यास (कुएँ का)

W—पानी की गहराई

(२) **चौकोर कुआँ**—$L \times B \times H \times 6\frac{1}{4}$ = कुएँ में तादाद गेलन पानी

L = कुएँ की लम्बाई

B=कुएँ की चौड़ाई
H=पानी की गहराई

उपरोक्त सूत्र द्वारा कुएँ में पानी की मात्रा मालूम की जाकर उसके अनुसार प्रति १०० गेलन में ३० ग्रेन ब्लीचिंग डालना चाहिए।

तालाब का शुद्धीकरण—अगर तालाब का पानी पीने में लिया जाता है तो एक रस्सी जिसकी लम्बाई उस तालाब की लम्बाई से अधिक हो लेकर उस रस्सी में तालाब के किनारे से करीब आठ फीट अन्दर की ओर से रस्सी के दोनों सिरे पर ब्लीचिंग पावडर एक थैली में बाँधना चाहिए इसके पश्चात् रस्सी का एक सिरा एक व्यक्ति पकड़े तथा दूसरा व्यक्ति दूसरा सिरा पकड़े तथा दोनों व्यक्ति आमने सामने के किनारे पर खड़े हों तब निश्चित ही दोनों ओर किनारे से आठ फीट की दूरी पर तालाब में ब्लीचिंग पावडर की थैली डूबेगी। इसके बाद दोनों व्यक्ति एक साथ विपरीत दिशा में रस्सी पकड़ कर चलना प्रारम्भ कर दें। परिणामस्वरूप दोनों ही तालाब की परिक्रमा लगावेंगे तथा पूर्ण तालाब में किनारे से आठ फीट की दूरी पर पानी में ब्लीचिंग पावडर घुलता चला जावेगा।

नदी के जल का शुद्धिकरण—नदी के जल को पंप करके टंकी में एकत्रित कर ब्लीचिंग पावडर डालना चाहिये। किन्तु ग्रामीण क्षेत्र में इस प्रकार की व्यवस्था सम्भव न हो तथा नदी का पानी स्टोअर करने की व्यवस्था न हो तब सीमेन्ट की खाली थैलियों में ब्लीचिंग पावडर भरकर मुँह सिलकर जिस स्थान से पानी भरा जाता हो उस स्थान से बहाव की विपरीत दिशा में ऊपरी ओर २५ फीट की दूरी पर स्थान-स्थान पर डाल देना चाहिये। पानी का बहाव कम हो तथा पानी की गहराई अधिक न हो तो पानी भरने के स्थान से २५ फीट की दूरी पर ऊपरी और पानी में दो तीन स्थानों पर दो-दो लकड़ी गाड़कर उससे ब्लीचिंग पावडर भरी हुई सीमेन्ट की बोरी इस प्रकार लटकाना चाहिए की थैली का थोड़ा भाग पानी में डूबा रहे ताकि पानी में थोड़ा-थोड़ा ब्लीचिंग घुलता रहे।

स्लो सैन्ड फिल्टर, रैपिड सैन्ड फिल्टर—यह विधि वृहद मात्रा में पानी को शूद्ध करने के लिये काम में लाई जाती है। इसमें काफी बड़ी-बड़ी टंकियों की तथा मशीनों की आवश्यकता होती है।

★

११९. कूड़ा करकट का विसर्जन

१. कूड़ा करकट यह वह अनुपयोगी व त्यागी हुई वस्तु है जिसका घर गृहस्थी, संस्था, कल कारखाने, कृषि आदि कार्यों में आवश्यकता न होने से उसका निसंक्रमण किया गया हो, जैसे धूल, राख, शाक सब्जियों का अनुपयोगी भाग, कागज पैकिंग, फटे कपड़े, काँच आदि।

कूड़ा करकट के प्रकार :

(१) **सूखा कूड़ा करकट**—जैसे—राख, मिट्टी, काँच, लकड़ी के टुकड़, ईंटों के टुकड़े इत्यादि।

(२) **गीला कूड़ा करकट**—जैसे तरकारी के छिलके, माँस-मछली आदि का अनुपयोगी भाग।

(३) **सड़क तथा गलियों की बुहारु**—इसमें सूखा तथा गीला, दोनों प्रकार का कूड़ा करकट मिला रहता है, उपरोक्त चीजों के अलावा गोबर, लीद, पेड़ के सूखे पत्ते आदि भी शामिल हैं।

(४) हाट, बाजार, अस्तबल या जानवर, बूचड़खाने में अनुपयोगी होने वाली वस्तुएँ।

कूड़े करकट से स्वास्थ्य का सम्बन्ध :

(अ) अधगीला या गीला कूड़ा करकट मक्खियों का प्रजनन स्थान है।

(ब) कूड़ा करकट की ओर चूहे आकर्षित होते हैं।

(स) बीमारियों के कीटाणु कूड़े करकट की धूल या मक्खियों के माध्यम द्वारा भोजन तथा अन्य माध्यमों द्वारा ग्रहण कर बीमारी फैलाने में सहायक होते हैं।

(द) कूड़े करकट द्वारा वातावरण (हवा) दूषित व गंदी होती है।

(य) कूड़े करकट के द्वारा वर्षा का पानी दूषित होता है।

कूड़े करकट का संग्रह :

१. **घर-घर संग्रह**—बाल्टी, डब्बा, कचरा पेटी आदि द्वारा।

२. **सामूहिक कचरा पेटी**—कोठी, दीवारों वाला बनाया गया स्थान।

३. **हाथ गाड़ी द्वारा**—(व्हील वाली) ढक्कन वाली।

४. **मोटर लारी**—(ढक्कन वाली)।

कूड़ा करकट को एकत्रित स्थान से दिन में दो बार हटाने की व्यवस्था होनी चाहिए।

कूड़ा करकट की निवारण की विधियाँ :

१. **भूमि का पटाव**—यह गढ्डे, तालाब, खाई आदि को भरने के लिए काम में लाई जाती है। इसके साथ मिट्टी भी डाली जाती है। इन स्थानों पर कई वर्षों तक मकान नहीं बनाया जा सकता है। प्रत्येक ६ से ८ फीट तह के पश्चात् मिट्टी डालना चाहिये।

२. **समुद्र में फेंकना**।

३. **खाद बनाना** (कम्पोस्टिंग)—इस विधि में मलमूत्र तथा कूड़ा करकट को दफनाकर इसे खाद में परिवर्तित किया जाता है। इसमें उत्पन्न होने वाली गर्मी

६०° तक या अधिक हो सकती है, जिसके द्वारा मक्खी के अण्डे तथा लावी समाप्त हो जाते हैं। साधारणतया बीमारी को फैलाने वाले कीटाणु भी नष्ट हो जाते हैं।

कम्पोस्ट की विधि :

(१) इन्दौर पद्धति। (२) बैंगलोर पद्धति। (३) यांत्रिक विधि। (४) खाद के गढ्डे। (५) गाड़ना। (६) जलाना।

१. **इन्दौर पद्धति**—ढलवा भूमि पर यह बनाया जाता है। आवश्यकता अनुसार १६ से ३२ फीट लम्बे ५ से ८ फीट गहरे तथा ४ से ८ फीट चौड़े, आठ-आठ गढ्डे दो कतारों में बनाये जाते हैं। गढ्डे के चारों ओर नाली होना चाहिए। ताकि वर्षा का पानी अन्दर न जा सके। पहले कूड़े की ६ इन्च की परत बिछानी चाहिए, इसके पश्चात् २ इन्च की मल की तह डालनी चाहिये। पुनः ६ इन्च कचरा व मल की तह डालकर गढ्डे को भरते रहना चाहिये। अन्तिम तह कूड़े की तह होना चाहिये तथा जमीन की सतह से २ फीट खाली छोड़ देना चाहिये। ४ से ७ दिन बाद गढ्डे को अन्दर से कचरा मल को पलटना चाहिये। अगर नमी कम हो तो जैसे ग्रीष्म ऋतु में पानी छिड़कना चाहिये। इस प्रकार ३० दिन में यह उत्तम खाद बन जाता है।

इन्दौर विधि के दोष :

(१) मक्खियों को फैलाने का स्थान।
(२) उलटने के कारण उत्पन्न होने वाली गर्मी में कमी।
(३) मिश्रित करने की क्रिया अस्वास्थ्यप्रद व अधिक मेहनत वाली।
अतः विधि का प्रचलन कम होता जा रहा है।

२. **बैंगलौर विधि**—इस विधि में ३ फिट गहरे, ५ से ८ फिट चौड़े तथा १५ से २० फिट लम्बे गढ्डे आवश्यकतानुसार खोदे जाते हैं। इनकी गहराई ३ फिट से अधिक नहीं होनी चाहिये। क्योंकि एनारोबिक कीटाणु (ऑक्सीजन की अनुपस्थिति में कार्य करने वाले कीटाणु) की क्रिया ठीक से नहीं होने के कारण खाद बनाने में समय लगता है। गढ्डे में सर्वप्रथम ६ इन्च कूड़ा डालना चाहिये पश्चात् २ इन्च मल डालना चाहिये। इस प्रकार से क्रिया दोहराते रहना चाहिये जमीन से एक फिट ऊपर होनी चाहिये। ऊपरी तह कूड़ा-करकट की होनी चाहिये जो ९ इन्च की हो, पश्चात् मिट्टी की तह डालकर बन्द कर देना चाहिये। ६ दिन के अन्दर गढ्डे का तापमान ६०° से. हो जायेगा तथा २ से ५ सप्ताह में सड़ने की प्रक्रिया पूर्ण हो जायेगी तथा सभी प्रकार के हानिकारक कीटाणुओं का नाश हो जायेगा। ४ से ६ माह में यह खाद बनकर तैयार हो जायेगी।

३. **यान्त्रिक विधि**—इसमें प्रथम कूड़े में से ठोस वस्तुएँ जैसे—काँच, हड्डियाँ, लोहा आदि निकाल ली जाती हैं, पश्चात् कूड़े को मशीन से पीसकर २ इन्च के छोटे-छोटे टुकड़े कर लिये जाते हैं, उसके पश्चात् मशीन के माध्यम से मल, गन्दा

पानी तथा कूड़े को आपस में मिलाया जाता है तथा इस क्रिया में आवश्यक तापक्रम, पानी आदि दिया जाता है। यह ४ से ५ सप्ताह में खाद बन जाता है। विश्व के कुछ उन्नत देशों में इसे अपनाया गया है। जैसे जर्मन, इसराइल इत्यादि, भारत सरकार भी ५ लाख से अधिक जनसंख्या वाले देशों में इसे लागू करने का विचार कर रही है।

४. **खाद के गड्ढे**—ग्रामों में गोबर, पत्ते, कचरा आदि द्वारा यह बनाये जा सकते हैं, यह विधि बैंगलौर पद्धति ही है। इसमें भी खाद ५–६ माह में तैयार होता है। लम्बाई, चौड़ाई, गहराई उपलब्ध कूड़ा–करकट गोबर आदि की मात्रा पर होगी। गड्ढे कम से कम दो होना चाहिये। एक के भरने पर दूसरा काम में लाया जा सकता है।

५. **गाड़ना विधि**—यह विधि केम्प, मेला आदि में काम में लाई जाती है। इस विधि के अनुसार १·५ मीटर चौड़ा, २ मीटर गहरा तथा १ मीटर लम्बी नाली (ट्रेन्च) लगभग २०० व्यक्तियों के लिये १ सप्ताह के लिये काफी होती है। यह जब जमीन से ४० से. मी. ऊँची भर दी जाये तो इस पर मिट्टी की एक तह कम से कम ५० से. मी. की लगाना चाहिये। इस प्रकार ६ माह में खाली करके पुनः काम में लाई जा सकती है।

६. **जलाना (इन्सीनेरेशन)**—एक तरह की भट्टी होती है, जिसमें केवल कूड़ा-करकट जला दिया जाता है। इसके आकार कई प्रकार के होते हैं। परन्तु प्रत्येक में निम्न भाग पाये जाते हैं—(१) कचरा डालने की जगह, (२) ठोकने तथा राख निकालने वाला दरवाजा, धुआँ निकलने की चिमनी।

★

१२०. मानव मल-मूत्र तथा पशु मल-मूत्र का निवारण

मानव मल-मूत्र का निष्क्रमण—मानव मल-मूत्र का विसर्जन अगर ठीक से नहीं किया जाता है तो कई प्रकार की संक्रामक बीमारी जैसे—हैजा, मोतीझरा आदि फैलाने में यह काफी सहायक होते हैं। भारत में अगर मानव मल-मूत्र का विसर्जन उपयुक्त तरीके से हो तथा शुद्ध पेय जल प्राप्त हो तो ८० प्रतिशत पेट सम्बन्धी बीमारियों को रोका जा सकता है।

अतः मानव मलमूत्र विसर्जन तथा निष्क्रमण उचित ढंग से किया जाना अत्यन्त आवश्यक है।

मानव मल-मूत्र निष्क्रमण की विधियाँ :

१. **अस्वास्थ्यप्रद विधि**—इस विधि के अन्तर्गत प्रकृति के आह्वान को निपटाने के लिए (मल-मूत्र विसर्जन के लिए) खुले खेत, खुला स्थान, तालाब का किनारा, नदी का किनारा, नाले का किनारा आदि का उपयोग किया जाता है, इससे

कई प्रकार की बीमारियाँ फैलती हैं। अतः इस विधि का उपयोग नहीं करना चाहिए।

२. **स्वास्थ्यप्रद विधि**—इसके अन्तर्गत कई प्रकार की विधियाँ आती हैं जो स्वास्थ्यप्रद तरीकों से मल मूत्र के निष्क्रमण हेतु अत्यन्त उपयोगी हैं। अलग-अलग विधियाँ, अलग-अलग स्थान पर उपयोगी होती हैं।

(१) **पेल शौचालय**—इसमें पक्के बने प्लेट फार्म के नीचे टीन का डिब्बा रखा जाता है। प्रत्येक बार उपयोग करने के बाद टीन या डिब्बे को खाली करना चाहिये। पीछे से डिब्बा या टीन रखा जाता है। उस पर ढक्कन लगा होना चाहिए, ताकि मवेशी, सुअर आदि गन्दगी नहीं फैला सकें तथा मक्खियों का उपद्रव भी कम हो। सिट पर भी ढक्कन होना चाहिए।

(२) **कमोड शौचालय**—यह शौचालय उन लोगों के लिए उपयोगी हैं जिन्हें बैठकर शौच से निवृत होने में तकलीफ होती हो या खड़े-खड़े निवृत्त होने की आदत हो। इसका प्रचलन यूरोपीय देशों में तथा धनी परिवारों में होता है। जहाँ पर वाटर केरीज सिस्टम नहीं हो। पूर्व में भारत में कई विश्रामग्रहों में भी इसी प्रकार के शौचालय काम में आते थे। इसमें लकड़ी का एक ऊँचा चबूतरा (प्लेटफार्म) बना होता है, इसके बीच में एक छेद होता है। इसके ऊपर ढक्कन होता है। तथा छेद के नीचे बाल्टी या डिब्बा रखा जाता है। आधुनिककाल में इसमें परिवर्तन कर नीचे चाईना मिट्टी का पाट रहता है जो किसी पाईप द्वारा सेफ्टीक टैंक या वाटर केरिज सिस्टम के पाईप से जोड़ दिया जाता है। इस प्रकार के शौचालय आजकल कई विश्रामग्रहों में देखने को मिल सकते हैं।

(३) **पिट लेट्रीन**—इस शौचालय के लिए १०–१५ फिट गहरा गड्ढा खोदा जाता है, जिसकी चौड़ाई ६" से १२" तक होती है। खुदाई मशीन द्वारा की जाती है। गड्ढे के ऊपर सिट लगा दी जाती है। इस प्रकार के शौचालय से कुएँ के पानी के दूषित होने की संभावना होती है।

(४) **बोअर होल लेट्रीन**—इस विधि के शौचालय की खुदाई ओगर नामक मशीन द्वारा की जाती है। इस प्रकार खोदे गए गड्ढे पर सिट लगाई जाती है। हमेशा यह ध्यान रखना आवश्यक है कि खुदाई सतही पानी (सब सोइल वाटर) से २–३ फीट नीचे तक करना आवश्यक है। इसमें प्रतिदिन चार भाग फ्रूड आईल एक भाग घासलेट मिला हुआ घोल डालना चाहिए। इससे दुर्गन्ध नहीं आती है।

(५) **डग वेला शौचालय**—इस प्रकार के शौचालय १५ फीट गहरा तथा ३ फीट गहरा गड्ढा खोदकर ऊपर सिट लगाई जाती है। इस विधि से भी निकट के कुओं का जल दूषित हो सकता है।

(६) **रासायनिक क्लोजेट**—इस विधि में फिनाइल, कास्टिक सोडा या कोई भी (दुर्गन्धनाशक) तर पदार्थ डाला जाता है। इससे दुर्गन्ध नहीं आती है। यह विधि जहाज, हवाई जहाज, नाव आदि में अपनाई जाती है।

(७) **गहरी खाई वाला शौचालय**—इस प्रकार के शौचालयों का निर्माण मेला, प्रदर्शनी, सम्मेलन आदि अवसरों पर किया जाता है जब काफी बड़ी संख्या में अल्प अवधि हेतु लोग आने वाले हों। इसमें ३ फीट गहरी, १३ फीट लम्बी, $1\frac{1}{2}$ फीट चौड़ी नाली खोदी जाती है। बीच में पर्दे लगाये जाते हैं। प्रत्येक बार शौचालय का उपयोग करने पर मिट्टी डालना चाहिये।

(८) **उथली खाई वाला शौचालय**—इस प्रकार के शौचालय में लम्बाई ३ फीट १' से $1\frac{1}{2}$' फीट चौड़ी तथा १ से २ फिट गहरी नाली खोदी जाती है। अगर आवश्यकता हो तो बीच में टाट आदि की आड़ की जाती है। उपयोगकर्ता के बैठने के लिये लकड़ी का फ्रेम लगाया जाता है या पटिये डाले जाते हैं ताकि बैठने वालों को असुविधा न हो। उपयोगकर्ता को प्रत्येक बार उपयोग के बाद मिट्टी डालना चाहिये।

(९) **पब्लिक लेट्रीन**—यह शौचालय सार्वजनिक उपयोग के लिए नगरपालिका, पंचायत आदि द्वारा बनाया जाता है। इसका निर्माण रहने के स्थान से या सड़क से कम से कम ५० फीट की दूरी पर करना चाहिए। इस प्रकार के शौचालय नीचे पक्के व आसपास टिन या लकड़ी के पटिये की आड़ किये हुए होना चाहिए। यह एक से अधिक व्यक्तियों के लिए एक साथ उपयोग करने के लिए बनाये जाते हैं। समस्त शौचालयों को नालियों से एक दूसरे से जोड़ा जाता है ताकि उपयोग के समय का गन्दा पानी नालियों के माध्यम से एक गड्ढे (सोखते गड्ढे) में एकत्रित किया जाता है। इस गड्ढे में प्रतिदिन फिनाइल डालना चाहिए। प्रत्येक शौचालय में लोहे या अल्युमीनियम या किसी हल्के धातु का डब्बा, बर्तन, तगारी, बाल्टी रखी होना चाहिए ताकि एक साथ मल को निश्चित स्थान तथा पात्र में एकत्रित कर उस डब्बे को स्वच्छ कर पुनः काम में लाया जा सके।

(१०) **हेण्ड फ्लश**—यह पेय जल स्रोत से कम से कम ५० फीट की दूरी पर बनाना चाहिये। इसे बनाने के लिये लगभग ६ फीट लम्बा, ५ फीट चौड़ा तथा १० फीट गहरा गड्ढा खोदना चाहिये तथा इसकी जुड़ाई जमीन से २ फीट ऊपर जमीन की सतह तक पक्की कराना चाहिये। किन्तु गड्ढे की जमीन कच्ची ही रखना चाहिये। पश्चात गड्ढे के बीच में एक फीट की दिवाल बनाना चाहिये। इससे यह दो भागों में विभाजित होगा, इस गड्ढे से लगभग आधा फीट की दूरी पर बीच की दिवाल के पास मिट जो कि चीनी मिट्टी, मुजक या सीमेंट की बनी हो, जमीन से लगभग ३ फीट ऊँचे पक्के प्लेटफार्म पर लगाना चाहिए तथा इसके नीचे ट्रेप जो कि अंग्रेजी के यू (U) के आकार का होता है, लगाना चाहिए। इस ट्रेप को पाईप द्वारा जोड़ा जाकर गड्ढे की बीच की दीवाल पर लाना चाहिए। यहाँ पर सीमेंट की बनी हुई दोमुही लगाना चाहिए तथा एक लम्बा पाइप जिसकी ऊँचाई लगभग १२ फीट हो, खड़ा लगाना चाहिए ताकि गन्दी बदबू ऊपर निकल जावे। इस पाईप

पर छत्रीनुमा ढक्कन लगाना आवश्यक है। ताकि वर्षा का पानी या पक्षी इस पाईप में न गिर सके। इस स्थान पर जमीन से करीबन १ फीट ऊँचा एक निरीक्षण चेम्बर बनाना चाहिये जिसमें आवश्यकता पर निरीक्षण कर अगर पाइप लाइन बन्द हो गई हो या एक गड्ढा भर गया हो तो अन्य को चालू किया जा सके। इन दोनों गड्ढों को फरसी या पटिये से ऊपर से बन्द कर देना चाहिए। जो दोमुही लगाई गई है उसका एक मुँह एक गड्ढे में तथा दूसरा मुँह दूसरे गड्ढे में होना चाहिये। प्रारम्भ करते समय एक मुँह बन्द कर देना चाहिए। जिस स्थान पर सिट लगाई जावे उसमें पैर रखने के लिये फूटरेस्ट लगाना चाहिये। उपलब्ध साधन सामग्री के अनुसार आड़ करना चाहिये किन्तु ऊपर छत होना आवश्यक है ताकि वर्षा का पानी न आ सके तथा ग्रीष्म में धूप न लग सके। अगर पक्का बनाया जाता है तो, कम से कम एक उजालदान होना आवश्यक है।

शौचालय का उपयोग—शौचालय का निर्माण पूर्ण होने पर इसका उपयोग करना प्रारम्भ किया जा सकता है। प्रत्येक बार उपयोग करने पर कम से कम ५ लीटर पानी डालना चाहिये, इससे गन्दगी बहकर एक गड्ढे में चली जावेगी तथा ट्रेप में पानी की सिल बनी रहेगी ताकि अन्दर से बदबू नहीं आ सके। इसकी विशेषता ही यह है कि इसमें पानी की सिल ट्रेप में बन जाती है, इसलिये इस हेन्ड फ्लश वाटर सिल लेट्रीन कहते हैं। गन्दगी जो बहकर गड्ढे में जावेगी। उसका पानी जमीन कच्ची होने से सोख लेगी तथा ठोस पदार्थ एकत्रित होता रहेगा। जब गड्ढा भर जावे तो दोमुही से इस ओर का मुँह बन्द कर देना चाहिये तथा अन्य मुँह चालू कर देना चाहिये, लगभग तीन माह में प्रथम गड्ढे में एकत्रित मल खाद का रूप धारण कर लेता है। अतः इसे निकाल दिया जाता है तथा गड्ढा पुनः उपयोग के लिये तैयार हो जाता है। इस प्रकार के शौचालय का एक गड्ढा ८ से १० सदस्यों के एक परिवार के लिये लगभग १ वर्ष के लिये पर्याप्त होता है।

यह शौचालय ग्रामीण क्षेत्र के लिये सर्वथा उपयोगी तथा उपयुक्त शौचालय है। इसमें किसी प्रकार की बदबू नहीं आती है। खाद भी कृषि के काम में आ सकता है। अतः यह सर्वोत्तम शौचालय है। इसमें कभी भी फिनाइल या साबुन का पानी नहीं डालना चाहिये।

स्वास्थ्यप्रद मूत्रालय—इसका निर्माण साधारणतः सार्वजनिक उपयोग के लिये किया जाता है। इस हेतु ४′+४′ का एक पक्का प्लेटफार्म जमीन से लगभग २′ ऊँचा बनाया जाता है। इसका ढाल अन्दर की ओर दिया जाता है जिसके अन्त में नाली बनी होती है, इस नाली द्वारा बहकर आया हुआ मूत्र पास में ही सोख्ते गड्ढे में जाता है। इस गड्ढे में प्रतिदिन क्रूड आइल या फिनाइल डालना चाहिए। इसी प्रकार मूत्रालय को भी प्रतिदिन धोकर फिनाइल डालना चाहिए।

पशु मलमूत्र विसर्जन—भारत का ८०% भाग ग्रामों में निवास करता है, तथा पशु जहाँ एक ओर कृषि कार्य के अभिन्न अंग हैं, वहीं दूसरी ओर मनुष्य के

लिये भी अत्यन्त उपयोगी प्राणी है। अतः इनके बाँधने के स्थान (गौशाला) की व्यवस्था स्वास्थ्यप्रद होना आवश्यक है।

पशुओं को अपनी-अपनी सुविधा के अनुसार बाँधा जाता है। एक पंक्ति में, दो पंक्ति में या अधिक, दो पंक्ति में बाँधने की दो विधि हैं: (१) सिर से सिर (२) पूँछ से पूँछ। प्रथम विधि में पशु के दोनों पंक्तियों के सिरे आमने-सामने आते हैं। अन्य विधि में दोनों पंक्तियों के पशुओं की पूँछ एक दूसरे की ओर होती हैं।

दोनों ही प्रकारों में गौशाला की जमीन खड़े ईंट के खरन्जों की पक्की बनी होनी चाहिये तथा पशु की पूँछ की ओर ढाल होना चाहिये तथा ढाल के अन्त में नाली होनी चाहिये जिससे कि पशु मूत्र बाहर की ओर बहकर जा सके। बाहर की ओर एक पक्का गड्ढा होना चाहिए। जिससे यह मूत्र एकत्रित हो, गड्ढे पर ढक्कन होना चाहिये। इस मूत्र का उपयोग गोबर घोलकर गोबर गैस प्लांट में डालने के काम में या खाद के गड्ढे में डालने के काम में आ सकता है। यह रासायनिक दृष्टि से बहुत ही मूल्यवान है।

पशु मल (गोबर) का उपयोग—अधिकांश स्थानों पर यह देखने में आया है कि गोबर का उपयोग कण्डे थापकर ईंधन के रूप में भी किया जाता है। यह बहु-मूल्य वस्तु का दुरुपयोग ही है। गोबर का सबसे अच्छा उपयोग गोबर गैस प्लांट बनाकर किया जा सकता है। इससे ईंधन तथा रोशनी दोनों ही कार्य किये जा सकते हैं तथा बाद में शेष रहे भाग का उपयोग खाद बनाने के लिये किया जा सकता है। गोबर का खाद बनाने के लिये कम्पोस्ट विधि सर्वोत्तम है, जिसका विवरण पूर्व के पृष्ठों पर दिया गया है।

★

१२१. ग्रामीण स्वच्छता

हमारा भारतवर्ष मुख्यतः ग्रामों में ही बसा है। जनसंख्या का ८० प्रतिशत से भी अधिक भाग ग्रामों में ही निवास करता है। अतः ग्रामों में निवासियों के स्वास्थ्य स्तर को अगर ऊँचा उठाना है तो हमें ग्रामीण स्वच्छता की ओर अनिवार्यतः ध्यान देना होगा। अगर निवास स्थान स्वच्छ हो तो मनुष्य को स्वस्थ रहने में कोई कठिनाई नहीं है। ग्रामीण स्वच्छता के अन्तर्गत निम्न बातों पर विचार किया जाना आवश्यक है।

१. **स्वास्थ्य शिक्षा**—इसके अन्तर्गत ग्रामीण जनता को यह शिक्षा देना चाहिये कि किस प्रकार स्वच्छता से स्वस्थ जीवन प्राप्त किया जा सकता है। क्योंकि ग्रामीण आँचल के निवासी स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं से अनभिज्ञ रहते हैं। बीमारियों से पीड़ित रहते हैं, किन्तु उन्हें इसका ज्ञान नहीं होता कि इसका कारण

क्या है । उदाहरण के लिये ग्राम में अगर नारु की बीमारी हो तो वह उसका इलाज करवायेंगे, किन्तु उसके कारण को दूर करने का प्रयास नहीं करेंगे, क्योंकि वह उससे अनभिज्ञ है ।

अतः स्वास्थ्य शिक्षा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, उन्हें यह बताया जाना आवश्यक है कि स्वयं के शरीर, घर, पास-पड़ौस तथा ग्राम की स्वच्छता का क्या महत्त्व है । उन्हें यह भी बताना नितान्त आवश्यक है कि बीमारी क्या है, कैसे होती है, कैसे फैलती है, इसे किस प्रकार रोका जा सकता है, इसमें स्वच्छता का कितना महत्त्व है, आदि । अगर ग्रामीणों को स्वच्छता सम्बन्धी उपयुक्त सलाह दी जाती है तो उन्हें कई प्रकार की बीमारियों से बचाया जा सकता है ।

निवासगृह का निर्माण तथा व्यवस्था—निवासगृह कच्चा हो या पक्का, स्वच्छ हवा तथा प्रकाश के आवागमन के लिये यह आवश्यक है कि उपयुक्त संख्या में उजालदान तथा खिड़की तथा दरवाजे हों । निवास गृह का मुख पूर्व व पश्चिम में हो तो अत्यन्त लाभदायक होता है । उजालदान तथा खिड़की आमने सामने हों तो हवा तथा प्रकाश का मुक्त रूप से आवागमन होता है । घर में रसाई घर, सोने का कमरा, भंडारगृह अगर सम्भव हो तो अलग-अलग होना चाहिये । प्रत्येक घर में स्नानगृह तथा स्वास्थ्यप्रद शौचालय होना नितांत आवश्यक है । घर का निर्माण इस प्रकार करना चाहिये कि सील (सितांग) नहीं हो । रसोईघर में धुआँ रहित चूल्हा होना चाहिये ताकि धुआँ आसानी से बाहर निकल जावे तथा आँखें खराब न हों ।

पीने का पानी सुरक्षित स्थान पर स्वच्छ घड़े या अन्य बर्तन में रखना चाहिये। पानी भरने के पूर्व बर्तन साफ धोकर पानी छानकर भरना चाहिये । घड़े या बर्तन में से पानी निकालने के लिये अलग एक (डोलची) बर्तन होना चाहिये । खाने व पीने की वस्तुएँ रखने के लिये अलग से व्यवस्था होनी चाहिये । स्नानगृह स्वतन्त्र तथा इतना बड़ा हो कि स्नान करने में कोई कठिनाई न हो, इसमें उजालदान होना आवश्यक है । संक्रामक बीमारियों के फैलने का मुख्य स्रोत मलमूत्र तथा दूषित पेय जल है । अतः खुले स्थान या खेत का उपयोग मल त्याग करने के लिये नहीं करना चाहिए । स्वास्थ्यप्रद हेण्ड फ्लश शौचालय का उपयोग करना चाहिये, शौचालय का निर्माण पेय जल कुएँ से कम से कम ५० फीट की दूरी पर होना चाहिये ।

सार्वजनिक स्थानगृह तथा शौचालयों का निर्माण महिला तथा पुरुषों के लिये अनिवार्यतः अलग-अलग होना चाहिये ।

पेय जल की व्यवस्था—ग्रामों में आम तौर पर पीने का पानी कुओं से प्राप्त किया जाता है । अतः इसका निर्माण स्वास्थ्यप्रद आदर्श कुएँ हेतु निर्धारित मानदण्डों के अनुसार करना चाहिये ।

पेय जल कुएँ का शुद्धीकरण ब्लीचिंग पावडर द्वारा समय-समय पर करना चाहिये । इसका पूर्ण विवरण पूर्व पृष्ठों में अंकित है ।

कूड़े कर्कट का विसर्जन—ग्रामों में विशेष तौर पर गोबर मुख्य रूप से काफी मात्रा में निकलता है। इसका उपयोग गोबर गैस प्लांट में करना चाहिये, तत्पश्चात खाद बनाने हेतु कम्पोस्ट विधि अपनाना चाहिये।

पशुशाला—निवासगृह से दूर होना चाहिये। इसका निर्माण भी पूर्व पृष्ठों में दिये अनुसार निर्धारित मापदण्डों के अनुसार करना चाहिये।

गन्दे पानी का निकास—स्नानगृह, मोरी आदि स्थानों से निकलने वाले गन्दे पानी के निकास का विसर्जन दो प्रकारों से किया जा सकता है : (१) आंगन बाडी, (२) सोख्ते गड्ढे।

१. **आँगन बाड़ी**—गन्दा पानी नालियों के माध्यम से अगर घर के आस-पास खाली स्थान हो तो आँगन बाडी लगाने के लिये सर्वोत्तम रूप से किया जा सकता है। आँगन बाड़ी में शाक सब्जी तथा फूल लगाये जा सकते हैं। इस प्रकार की शाक सब्जी लगाना चाहिये, जिसके फल जमीन के अन्दर नहीं लगते हों, जैसे—आलू, प्याज, मूली आदि इससे हानि हो सकती है। इसके लिये केला, पपीता, बेंगन आदि उपयुक्त हैं।

२. **सोख्ता गड्ढा**—इसका निर्माण करने पर गन्दा पानी इसमें आसानी से छोड़ा जा सकता है। जहाँ आँगन बाड़ी हेतु स्थान उपलब्ध न हो वहाँ कीचड़ तथा गंदगी से बचने के लिये सोख्ते गड्ढे का निर्माण करना अत्यन्त लाभदायक होता है।

निर्माण—८-१० व्यक्तियों के परिवार के लिये एक सोख्ता गड्ढा ६ से ८ माह के लिये पर्याप्त होता है। २′×२′×२′ माप का गड्ढा खोदकर उसमें मोटी १″-१½″ की गिट्टी या ईंट के टुकड़े की ६″ की तह लगाना चाहिये। इसके पश्चात उस पर ६″ की छोटी गिट्टी की तह लगाना चाहिये। इस पर ६″ की मोटी रेती की तह तथा अन्त में ५″ की बालू रेत की तह लगाना चाहिये। गड्ढे के चारों ओर एक फीट की दीवार बनाना चाहिये ताकि बाहर का पानी इसमें न जा सके। अन्त में गड्ढे में ऊपर टाट, फटी हुई चटाई डालना चाहिये, आपका सोख्ता गड्ढा बनकर तैयार है। इसमें नाली द्वारा स्नानगृह, मोरी आदि का गन्दा पानी छोड़ना चाहिये। प्रतिवर्ष वर्षा की समाप्ति पर इसे खोदकर पुनः बनाना चाहिये। यह गन्दे पानी के निकास के आधार पर कम ज्यादा या छोटा बड़ा बनाया जा सकता है।

आवारा कुत्ते, चूहे, मच्छर, मक्खी आदि की समाप्ति :

(१) जहाँ पर पानी व्यर्थ में गड्ढे आदि में भरा रहता है, वह स्थान मच्छरों के प्रजनन के लिये सर्वोत्तम स्थान है। मच्छर मलेरिया को फैलाने में मुख्य रूप से भाग लेता है। अतः ऐसे रुके हुए पानी के गड्ढों को भर देना चाहिये या नाली द्वारा

पानी निकाल देना चाहिये। अगर यह दोनों ही सम्भव न हों तो मोटर का निकला हुआ तेल या मिट्टी का तेल प्रति सप्ताह थोड़ा-थोड़ा डालना चाहिये।

(२) आवारा कुत्ते ग्राम के लिये सिर दर्द रहते हैं और अगर दुर्भाग्यवश उसमें से कोई कुत्ता पागल हो जाता है तो वह ग्राम के लिये अभिशाप हो जाता है।

अतः अगर ग्राम में कुत्ते पागल हो गए हों तो उसकी सूचना तुरन्त प्रा. स्वा. केन्द्र को दें तथा कुत्तों को समाप्त करा दें। जिन व्यक्तियों को कुत्ते ने काटा हो उसे तुरन्त अस्पताल भेज दें। घरेलू जानवरों जैसे गाय, भैंस, घोड़ा आदि को कुत्ते के सम्पर्क में नहीं आने दें।

उपरोक्त अनुसार ग्रामों में स्वच्छता का ध्यान रखा गया तो हम ग्रामीण क्षेत्र से काफी संक्रामक बीमारियों की रोकथाम करने में सफल होंगे।

★

१२२. नेतृत्व

समय की कल्पना बिना नेतृत्व के नहीं की जा सकती। जीवन के किसी भी क्षेत्र में हम देखें तो नेतृत्व को देखा जा सकता है। विश्व स्तर के नेता विश्व में अपने देश का, समाज का, विचारों का नेतृत्व करते हैं। राज्य स्तर के नेता अपने राज्य का नेतृत्व करते हैं, स्थानीय नेता स्थानीय जनता का नेतृत्व करते हैं। परिवार का नेतृत्व परिवार का मुखिया करता है। मनुष्य ही नहीं जानवर भी अपने नेता के नेतृत्व में कार्य करते हैं, उसका अनुसरण करते हैं। उदाहरण के लिए, चींटियों को ही लें। उनके समूह की नेत्री जिस दिशा में जायेगी उसी दिशा में अन्य चींटियाँ भी पंक्तिबद्ध होकर चलती हैं।

मानव समाज में नेतृत्व अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। नेता अपने अनुयायिओं का नेतृत्व करता है। बिना अनुयायिओं के नेता होना निरर्थक है। नेता वही है जिसे समाज का एक भाग स्वीकृत करता हो, उसके विचारों को मानता हो तथा उसका अनुसरण करने को तत्पर रहता हो। नेता तथा अनुयायिओं के बीच नेतृत्व एक महत्वपूर्ण कड़ी है।

नेता के स्वयं के कुछ विचार होते हैं कुछ सिद्धान्त होते हैं। उनके आधार पर ही वह अनुयायिओं को प्रेरित करता है, प्रेरित करने का उसका तरीका उसका व्यवहार, बोलचाल, विचार या उनका अनुसरण कुछ भी हो सकता है। इसी के माध्यम से वह अपने अनुयायिओं के व्यवहार पर विचारों का प्रभाव डालता है। क्योंकि उसमें वह क्षमता होती है, कुशलता होती है। नेतृत्व, नेता तथा अनुयायिओं के सम्बन्धों का ज्ञान करता है। नेता अपने ज्ञान, कुशलता, क्षमता, तथा अनुभव के आधार पर नेता का पद स्वयं प्राप्त करता है। वह अपने उपरोक्त गुणों के कारण अपने अनुयायिओं के आचार, विचार, व्यवहारों पर नियन्त्रण प्राप्त करता है। उन्हें निय-

नियत कर मार्गदर्शन देता है। इसमें सत्ता तथा शक्ति का पूर्ण आभास होता है। यह आवश्यक नहीं कि यह सब प्रभुत्व के कारण ही हो। यह नेतृत्व में भी सम्भव है। क्योंकि प्रभुत्व में इच्छा न होने पर भी आदेश मानने को बाध्य होना पड़ता है। इसमें भय का प्रमुख स्थान है। किन्तु नेतृत्व में पारस्परिक सामन्जस्य के आधार पर नेता तथा अनुयायिओं के सम्बन्ध होते हैं।

नेतृत्व एक प्रगतिशील प्रजातांत्रिक विचारधारा है। जबकि प्रभुत्व केवल शक्ति सत्ता तथा इससे निर्माण होने वाले भय पर आधारित सम्बन्ध है।

नेता के प्रकार :

(१) धार्मिक नेता (पंडित, मोलवी, फादर आदि)
(२) सामाजिक नेता (समाज सुधारक)
(३) राजनैतिक नेता (राजनीतिज्ञ)
(४) बौद्धिक नेता (विद्वान व्यक्ति)
(५) आर्थिक नेता (पूँजीपति)

उपरोक्त नेताओं में भी तीन प्रकार के नेता होते हैं :

(अ) तानाशाह नेता
(ब) प्रजातान्त्रिक नेता
(स) मध्यम मार्गी नेता।

अन्य कई प्रकार से नेताओं को परिभाषित कर श्रेणीबद्ध किया जा सकता है। जैसे स्थानीय, प्रान्तीय राष्ट्रीय. अन्तर्राष्ट्रीय नेता आदि एक ही अनुयायी एक समय कई प्रकार के नेताओं का अनुयायी हो सकता है। उदाहरणार्थ, एक किसी धर्म को मानने वाला धनी तथा विद्वान राजनीतिज्ञ। यह व्यक्ति जहाँ तक धर्म का सम्बन्ध है उसके धर्म के नेता का अनुयायी है. धनी होने से उससे बड़े उद्योगपति नेता का अनुयायी है विद्वान होने से वह बौद्धिक नेता का अनुयायी हो सकता है. तथा राजनीतिज्ञ होने से उससे बड़े राजनैतिक नेता का अनुयायी हो सकता है किन्तु एक प्रकार के नेता जो परस्पर विरोधी विचारधारा रखते हों. दोनों का वह अनुयायी नहीं हो सकता। यही बात नेता को भी लागू हो सकती है। एक व्यक्ति कई प्रकार का नेता हो सकता है।

नेता के आवश्यक गुण :

(१) मिलन सारिता (२) बुद्धिमान (३) आत्मविश्वासी (४) परिश्रमी (५) परिवर्तनशील मनोवृत्ति वाला (६) कुशल (७) दक्ष (८) समय सुचक्ता वाला (९) वक्ता (१०) कल्पना शक्ति वाला (११) निडर (१२) साहसी (१३) सकल्प शक्ति वाला (१४) स्पष्टवादी (१५) तुरन्त निर्णय लेने की क्षमता वाला (१६) आत्म संयमी (१७) उत्तरदायित्व निभाने की योग्यता रखने वाला (१८) सद्‌गुणी नेता में उपरोक्त गुण होने पर ही वह उत्कृष्ट नेतृत्व कर एक अच्छा नेता बन सकता है।

नेता के कार्य :

(१) नये ज्ञान, विचारों से अपने अनुयायिओं को ज्ञान कराना, उनके विचार जानना तथा अगर आवश्यक हुआ तो उसमें परिस्थिति अनुसार परिवर्तन करना।

(२) अपने विचारों के अनुसार अनुयायिओं के व्यवहार में परिवर्तन लाना।

(३) किसी समस्या का समाधान करना तथा समस्या का निराकरण करने हेतु प्रयास करना।

(४) अपने वक्तृत्व शक्ति के माध्यम से अनुयायिओं को प्रेरित करना।

(५) अनुयायिओं के कल्याण हेतु कार्य करना।

(६) किसी भी विपत्ति के समय समयानुकूल मार्गदर्शन देना तथा मदद करना।

(७) वर्तमान के आधार पर भविष्य का आकलन करना।

(८) व्यवहार कुशलता से अनुयायिओं का विश्वास प्राप्त करना।

स्वास्थ्य कार्यक्रमों में नेता का योगदान :

(१) अगर नेता को सही तरीके ढूंढ़ा गया, पहचाना गया तथा उसे कार्यक्रमों की जानकारी दी जाकर उससे सहयोग माँगा गया तो कार्यक्रम को सफल बनाने में काफी योगदान हो सकता है।

(२) अगर नेता ने कार्यक्रम के महत्त्व को समझा तथा उसके योग्य होने पर उसे स्वयं ने अपनाया तो कार्यक्रम सफल हो सकते हैं।

(३) अगर स्वक्रिया होगा तो वह सम्पर्क साधने पर निश्चित ही मददगार साबित होगा। निष्क्रिय नेता या और इसके सम्पर्क साधने पर अगर वह स्वयं नहीं अपनायेगा तो कम से कम अवरोध उत्पन्न नहीं करेगा। व्यवधान उत्पन्न न करना भी एक महत्वपूर्ण योगदान देना है।

अतः सर्वथा योग्य नेता को पहचान कर, उसके अनुभव का तथा लोकप्रियता का लाभ उठाते हुए स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता को स्वास्थ्य कार्यक्रम को सफल क्रियान्वयन के लिए ग्रामीण क्षेत्र के सभी नेताओं से निकट सम्पर्क बनायें, उनका विश्वास प्राप्त करें तथा कार्यक्रम की जानकारी देकर उनका सहयोग, उनकी सुविधा तथा स्थानीय आवश्यकता के अनुसार प्राप्त करें। अगर ऐसा किया गया तो कोई कारण नहीं कि स्वास्थ्य योजना का सम्पूर्ण लाभ ग्रामीण जनता को प्राप्त न हो।

★

१२३. प्रचार प्रसार में द्रष्य श्राव्य साधनों का योगदान

किसी भी कार्यक्रम की सफलता प्रसार साधनों के आधार पर निर्भर करती है। आधुनिक युग में प्रचार-प्रसार का महत्व किसी से भी छुपा नहीं है। इसमें द्रष्य श्राव्य साधनों का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

द्रष्य श्राव्य साधन क्या है ?

ये साधन हैं जिनके माध्यम से प्रभावशाली ढंग से सीखने समझने वालों को सरल तथा सुरुचिपूर्ण ढंग सीखने में सहायता करता है।

द्रष्य श्राव्य साधनों का महत्व :

द्रष्य श्राव्य संचार का एक मुख्य साधन है। यह सीखने तथा सिखाने वाले को अत्यन्त सहायता करता है। यह साधन ग्रहणकर्त्ता तथा दाता की शक्ति को बढ़ाता है। द्रष्य श्राव्य साधन शिक्षक तथा शिष्य दोनों को सहायता करते हैं।

यह शिक्षक को क्रमबद्ध तरीके से व्यवस्थित रूप से पढ़ाने में मदद करते हैं। अपने विचारों को अधिक स्पष्ट करने में सहायता करते हैं। शिक्षक विषय रुचिकर ढंग से पढ़ा सकता है। इसके द्वारा मनोवृत्ति बदलने में सहायता मिलती है। विचारों की समृद्धि करने में सहायक होते हैं। शिक्षक जो बातें बोलकर नहीं सिखा सकता है वह इन साधनों के माध्यम से आसानी से पढ़ा सकता है। इसमें बोलना भी कम पड़ता है।

यह विद्यार्थी को किसी भी बात को जल्दी, आसानी से सीखने में मदद करता है। इस माध्यम से सीखी बातें जल्दी याद होती हैं। यहाँ पर शिक्षक से विद्यालय में पढ़ाने वाले शिक्षक से ही तात्पर्य नहीं है न उसे विद्यालय में पढ़ने वाले विद्यार्थी से ही है किन्तु शिक्षक वह व्यक्ति है जो शिक्षा देता है, अपना ज्ञान देता है चाहे व्यवसायिक रूप से वह कुछ भी हो। विद्यार्थी वह है जो कुछ सीखने का प्रयास करता है। सीखने में रुचि हो।

द्रष्य श्राव्य साधनों के गुण :

अच्छे द्रष्य श्राव्य साधनों में निम्नांकित गुण होना आवश्यक है : (१) साधन समझाने में सरल हों। (२) एक समय एक ही विचार को प्रगट करने वाले हों, (३) स्थानीय भाषा में हों तथा रुचिकर हों। (४) संक्षिप्त हों किन्तु विचारों को पूर्ण प्रगट करने वाले हों। (५) सस्ते तथा आकर्षक हों। (६) अगर रंगीन हों तथा आकर्षक वृत्ति के हों अति उत्तम होता है।

द्रष्य श्राव्य साधन के प्रकार :

१. **जन संचार के लिये**—रेडियो, टेलीविजन, नाटक, सिनेमा, कठपुतली का खेल, पोस्टर्स, पाम्पलेट्स, छपी हुई सामग्री जैसे पाम्पलेट, लिफलेट, प्रदर्शनी फिल्म स्ट्रेप, फिल्म स्लाईड, टेलीव्हीजन, टेपरेकार्ड आदि।

२. **समूह तथा व्यक्तिगत सम्पर्क में सचार के लिये साधन**—चार्ट, ग्राफ, नक्शे, क्लीप चार्ट, क्लीप बुक, ब्लेक बोर्ड आदि।

द्रष्य श्राव्य साधनों के चयन करने की पद्धति :

१. जो विषय हम पढ़ाना चाहते हैं उससे सम्बन्धित साधन ही चयन करना चाहिए।

२. सीखने वालों की उम्र, शिक्षणस्तर आदि के अनुरूप ही चयन करना चाहिये ।

३. सीखने वाले की रुचि व अनुभव के आधार पर ही साधन का चयन होना चाहिये ।

४. समूह का आकार, बैठक व्यवस्था तथा उपलब्ध सुविधा के आधार पर ही साधन का चयन होना चाहिये ।

५. परिवहन व्यवस्था के अनुकूल साधन का चयन करना चाहिये । स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता के लिये उपयोगी द्रष्य तथा श्राव्य साधन जिनका उपयोग कर वह स्वास्थ्य कार्यक्रमों का ग्रामीण क्षेत्र में अधिकाधिक प्रचार कर सकता है । वे हैं :

१. पाम्पलेट २. पोस्टर्स ३. फ्लेश कार्ड ४. फनेल ग्राफ ५. क्लिप बुक ६. श्याम पाट ७. टेप रिकार्डर ८. ट्रांन्जिस्टर ९. चार्ट १०. ग्राफ आदि ।

उपरोक्त साधनों में से उपलब्ध साधनों का उपयोग करते हुए स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता अगर स्वास्थ्य कार्यक्रम का प्रचार करे तो ग्रामीण जनता काफी लाभान्वित होगी । उनमें जागृति होगी, भ्रांतियाँ मिटेंगी तथा स्वास्थ्य कार्यक्रमों को सही दिशा में सोचेंगा । स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता को भी समझाने में सरलता होगी । इसका प्रभाव जनता पर अच्छा पड़ेगा परिणामस्वरूप कार्यक्रम सफलता प्राप्त करेंगे ।

१२४. संचार

संचार वह प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत किसी विशिष्ट सन्देश को मूलरूप में एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाया जाता है । इस प्रक्रिया को संचार या सन्देश वाहन कहते हैं ।

अगर संचार ठीक है तो ऐसे सन्देश एक स्थान से दूसरे स्थान पर उसी मनो-भाव, मूल रूप में, उसी भावना से पहुँचाया जावे तो उसका अपेक्षित प्रभाव होता है अन्यथा उसका रूप परिवर्तित होने पर उसका वह प्रभाव नहीं रहते हुए भ्रम का निर्माण होता है, जिससे वांछित परिणाम प्राप्त नहीं होते हैं । हमारे दैनिदिनी के व्यवहार में भी हम पाते हैं कि जब एक व्यक्ति एक बात को कहता है तो अन्य व्यक्ति अगर उसी बात को उसी रूप में उसी भावना से ग्रहण कर अन्य व्यक्ति तक नहीं पहुँचाता तो इससे गलत फहमी का निर्माण होता है । अफवाहों का उदगम् संचार उचित रूप से न होने पर ही होता है । जिसके परिणाम कभी-कभी काफी भयकर निकलते है । अतः संचार ठीक होना आवश्यक है ।

संचार के स्रोत :

१. चर्चा २. विचार गोष्ठी ३. चलचित्र ४. टेलीविजन ५. भाषण ६. पत्र पत्रिकायें ७. समाचार पत्र ८. रेडियो आदि इन साधनों से संचार होता है ।

पर कई बार इनमें जो बातें बताई या कही जाती हैं, उसके मूल रूप में ग्रहण नहीं किया जाता तो उसका प्रभाव नष्ट हो जाता है तथा उसके वांछित परिणाम नहीं निकलते हैं।

उचित संचार की रुकावटें :

१. संचार का स्रोत ही अगर त्रुटिपूर्ण हो। २. स्रोत की भाषा सरल न हो। ३. संचार के द्वारा जो बातें कही जाती हैं कभी-कभी द्वि-अर्थी होती हैं, जिसका अर्थ ठीक रूप में न लेते हुए अन्यथा भी लिया जाता है। ४. स्रोत में जो भावना स्पष्ट करने का प्रयास किया गया हो वह विधि ही दोषपूर्ण हो। ५. संचार के स्रोत को मूल रूप में ग्रहण करने में लापरवाही। ६. ग्रहणकर्त्ता में बुद्धि तथा ज्ञान की कमी। ७. संचार के लिये अपनाये गये साधन की अप्राप्ति। ८. ग्रहण कर्त्ता द्वारा संचार स्रोत द्वारा प्राप्त सन्देश का जानबूझकर या अनजाने में अपने मनमाने ढंग से अर्थ तथा निष्कर्ष निकालना तथा उसका प्रसार अपने ढंग से करना। ६. अगले वर्ग द्वारा भी मनमाने ढंग से अर्थ निकालना तथा उसका बिगड़े रूप में प्रसार करना। १०. संचार में त्रुटि होने पर समय पर ही तुरन्त उसमें सुधार या खंडन न करना।

संचार रुकावटें दूर करने के उपाय :

१. संचार के लिये जिस भाषा को उपयोग में लिया जावे उसकी भाषा सरल समझ में आने वाली तथा स्थानीय भाषा हो ताकि गलत फहमी का कोई कारण न हो। २. संचार के साधन के रूप में चित्र मॉडल आदि जिसका उपयोग किया जावे वह स्पष्ट तथा आसानी से समझ में आने वाला होना चाहिए। ३. संचार में जो बातें कही या लिखी जावें या प्रदर्शित की जाती हैं वह द्वि-अर्थी नहीं होनी चाहिए। ४. संचार के लिये जो साधन अपनाया जावे उसका उपयोग प्रभावकारी ढंग से हो इस बात का प्रयास किया जाना चाहिये। ताकि मूल भावना को ग्रहण करने में ग्रहण कर्ता को कोई कठिनाई न हो। ५ संचार के माध्यम के रूप में जिस साधन को अपनाया जाय उसे ग्रहणकर्ताओं के ज्ञान, बुद्धि तथा शैक्षणिक स्तर के आधार पर ही चुनना चाहिये अन्यथा उसका वांछित प्रभाव नहीं पड़ेगा। ६. संचार के जो साधन अपनाये जावें वे पर्याप्त होने चाहिये। उदाहरण के लिये, एक हजार व्यक्तियों की सभा को सम्बोधित करने के लिये लाउडस्पीकर का उपयोग करना पूर्णतः पर्याप्त होगा। न कि मेगा माईक। ७. त्रुटिपूर्ण संचार होने पर उसका खंडन तथा सुधार तुरन्त करना चाहिये।

स्वास्थ्य कार्यक्रमों में संचार का महत्व :

हम प्रतिदिन देखते हैं कि स्वास्थ्य कार्यक्रमों के बारे में सही जानकारी के अभाव में या संचार त्रुटिपूर्ण होने से विभिन्न प्रकार की अफवाहें उड़ती रहती हैं। अतः स्वास्थ्य कार्यकर्ता को चाहिये कि वह स्वास्थ्य कार्यक्रमों की जानकारी जब भी दे तब सरल भाषा में स्पष्ट शब्दों में तथा स्थानीय भाषा में दे तथा उसे उचित

माध्यमों से योग्य उदाहरण द्वारा समझाना चाहिये। शंकाओं का समाधान तुरन्त करना चाहिए। अगर किसी प्रकार की भ्रान्ति उत्पन्न हो या भ्रामक बातें उसे मालूम पड़ें तो तुरंत खंडन करना चाहिए। अगर स्वास्थ्य कार्यकर्ता को स्वयं किसी बात की पूर्ण जानकारी न हो या भ्रम हो तो वह अपर्याप्त हो तो अपनी धारणाओं के आधार पर जानकारी कदापि न दे वरना सही तथा तथ्य पूर्ण जानकारी अपने वरिष्ठों से प्राप्त कर उसके पश्चात् ही वह जानकारी अन्य व्यक्तियों को दे। स्वास्थ्य कार्यक्रमों को सफल बनाने के लिये यह आवश्यक है कि उनके सम्बन्ध में पूर्ण तथा सही जानकारी दी जावे तभी कार्यक्रमों का क्रियान्वयन उचित ढंग से तथा सफल होगा।

●

१२५. प्रेरणा

किसी भी कार्यक्रम को चलाने के लिये उसे जन सामान्य द्वारा स्वीकार किया जाना आवश्यक है। कोई भी व्यक्ति स्वीकार तब करेगा जब उसे आवश्यकता होगी या आवश्यकता महसूस कराई जायेगी, जब वह स्वीकार करने के लिये तैयार होगा तब उसे हम प्रेरित करेंगे।

अंतः प्रेरणा—एक प्रकार की उत्तेजन शक्ति है जो कार्य करने के लिये तथा जारी रखने के लिये उत्तेजित करती है।

मनुष्य में प्रेरणा तब उत्पन्न होती है जब मनुष्य को किसी बात की आवश्यकता होती है, या उसे आवश्यकता महसूस करा दी जाती है तब व्यक्ति में वह प्राप्त करने की इच्छा जाग्रत होती, उसे प्राप्त करने हेतु मानसिक तनाव उत्पन्न होता है। यह एक चालक शक्ति है। इसे प्रणादेन (Drive) कहते हैं। यहीं से प्रेरणा की क्रियाशीलता प्रारम्भ होती है। व्यक्ति जो उसमें मानसिक असंतुलन हो गया है, उसे दूर का संतुलन प्राप्त करने का प्रयास करता है, अर्थात जिस बात की उसे आवश्यकता हो गई है उसकी पूर्ति करने का वह प्रयास करने लगता है. यह प्रयास तब तक निरंतर जारी रहता है तब तक लक्ष्य प्राप्त नहीं हो जाता है।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है तथा वह समाज का एक सदस्य है। विरासत में जो संस्कृति उसे प्राप्त हुई है उसके अन्तर्गत कई कारणों से आवश्यकता उत्पन्न होती है। वैसे सामान्यतः दो प्रकार की प्रेरणा होती है।

(१) जन्म जात प्रेरणा :

मानव जन्म में कुछ आवश्यकता जैसे भूख, प्यास, प्रेम आदि होता है इनकी पूर्ति के लिये भोजन, जल आदि आवश्यक है। इनके अभाव में संतुलन बिगड़ जाता है। आवश्यकताएँ प्रणोदन होती हैं तो पूर्ति करने वाली वस्तुएँ उद्दीपक होती हैं। इन दोनों में बिना संतुलन आवश्यक है पर इसके बीच में प्रेरणा होना आवश्यक है। जैसे भूख प्रणोदन है। इसकी पूर्ति उद्दीपक (भोजन) द्वारा होगी किंतु

अगर व्यक्ति को भूख न हो तथा अच्छे से अच्छे पकवान भी वह ग्रहण नहीं करेगा उसे उद्दीपक से प्रेरणा नहीं मिलेगी क्योंकि पकवान या भोजन उद्दीपक है किन्तु केवल भूख की स्थिति में, अगर भूख लगी है तो वह चटनी रोटी जो कि उद्दीपक है, को प्राप्त करने की इच्छा उसे जागृत होगी तथा वह उसे प्राप्त करने का प्रयास करेगा क्योंकि यहाँ पर प्रेरक है। बिना प्रेरक से कोई काम हम नहीं करते हैं। हमें थकान है, बिस्तर सामने है तथा प्रेरक भी है तो हम तुरन्त बिस्तर पर विश्राम करेंगे। किन्तु केवल बिस्तर होने पर हम विश्राम नहीं करेंगे। जब आवश्यकता होती है और उसके पूर्ति का साधन उपलब्ध है तो हम प्रेरक के कारण क्रियाशील हो जाते हैं, क्रियाशील होना ही स्पष्ट करता है कि प्रेरक है। प्रेरक द्वारा हम जब प्रेरित होते हैं तो यह क्रिया प्रेरणा है।

(२) उद्दीपक प्रेरणा :

किसी भी कार्यक्रम को चलाने के लिये प्रेरणा अत्यन्त आवश्यक है। इसका निर्माण उद्दीपक की उपस्थिति में होता है। तथा अगर प्रणोदन है तो प्रेरक अपना कार्य निश्चित ही करेगा। हम देखते हैं कि ग्रामों में कुछ लोगों को परिवार नियोजन साधन अपनाना आवश्यक होता है, बच्चों को टीके लगवाना आवश्यक होता है, किन्तु उन्हें इसका ज्ञान नहीं है, उन्हें इसकी आवश्यकता महसूस कराना आवश्यक है। वे जब आवश्यकता महसूस करेंगे उसकी पूर्ति की इच्छा जागृत होगी। इस समय उन्हें अगर उद्दीपक मिलता है तो उसमें उत्तेजना होगी, प्रयास होगा तथा वे परिवार नियोजन साधन अपना लेंगे या टीके लगवा लेंगे जैसी भी आवश्यकता होगी।

उद्दीपक दो प्रकार के होते हैं :

(१) सकारात्मक उद्दीपक।

(२) नकारात्मक उद्दीपक।

(१) **सकारात्मक उद्दीपक**—जो प्रोत्साहित करता है जैसे नसबंदी कराने वाले को क्षतिपूर्ति के रूप में धन, प्रशंसा।

(२) **नकारात्मक उद्दीपक**—जो दंड या भय के रूप में होता है जैसे टीके न लगवाने पर रोग से ग्रसित होने का भय या नसबंदी न कराने पर लाभ प्राप्ति से वंचित होना आदि।

तात्पर्य यह है कि स्वास्थ्य कार्य कर्ता को जिस स्वास्थ्य कार्यक्रम से सम्बन्धित प्रेरणा कार्य करना हो प्रथम उसकी आवश्यकता बताना चाहिये, समझाना चाहिये, महसूस कराना चाहिये। तत्पश्चात आवश्यकता पूर्ति के साधनों के उपलब्धी बाबद बताना चाहिये साथ ही स्वीकार करने के लाभ स्वीकार न करने की स्थिति में होने वाली संभावित हानि, कठिनाई का ज्ञान कराना चाहिये और यह प्रयास तब तक जारी रहना चाहिये जब तक लक्ष्य प्राप्ति न हो अर्थात कार्यक्रम को समाज स्वीकार न कर ले।

प्रेरणा कार्य लगातार चलने वाली प्रक्रिया है क्योंकि मनुष्य की आवश्यकता अनंत है, किन्तु उसे जागृत करने की आवश्यकता है, महसूस कराने की आवश्यकता है। यही प्रेरणा कार्य है।

★

१२६. समुदाय में कार्य करने के चरण

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में ही जन्म लेता है, समाज का सदस्य होता है तथा अन्त में समाज में ही उसकी मृत्यु होती है। मनुष्य का व्यवहार समाज द्वारा निर्धारित रूढ़ि रीति, परम्पराओं, विश्वास आदि द्वारा नियन्त्रित होता है।

किसी भी समस्या का समाधान करने के लिये यह आवश्यक है कि समुदाय में कार्य किया जाय, समाज को समस्या के बारे में बताया जावे तथा उन्हीं के सहयोग से निराकरण का प्रयास किया जाय। सामाजिक परिवर्तन एकदम नहीं आता है। उसमें समय लगता है, समस्या को समझकर परिवर्तन द्वारा निराकरण करने का कार्य समाज सेवक करते हैं।

समाज में कार्य करने के लिये, उनके दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने के लिये व्यवस्थित तथा क्रमबद्ध विधि से कार्य करना आवश्यक है।

(१) व्यक्तिगत सम्पर्क।
(२) समूह चर्चा।
(३) समुदाय में कार्य।

(१) **व्यक्तिगत सम्पर्क**—इसमें कार्य कर्ता द्वारा एक-एक व्यक्ति से व्यक्तिगत रूप से मिलकर चर्चा की जाकर प्रेरणा कार्य किया जाता है।

कार्यकर्ता में निम्न बातें होना आवश्यक है :

(१) जिस विषय पर चर्चा करना है उसका पूर्ण ज्ञान।
(२) सम्पर्क हेतु पूर्व निर्धारित उद्देश्य।
(३) मित भाषी।
(४) शंका समाधान की पूर्ण योग्यता।
(५) गम्भीर, दृढ़ संकल्प वाला तथा उतावला न हो।
(६) सफलता के प्रति आशावान।

उपरोक्त गुण कार्य कर्ता में आवश्यक होने के साथ ही निम्न बातों का ध्यान विशेष रूप से रखना चाहिये :

(१) व्यक्ति सम्पर्क का ज्ञान अगर संभव हो तो उस व्यक्ति को पूर्व से ही करा देना चाहिये जिससे सम्पर्क किया जाता है, उसे पूर्व से ज्ञात होने से वह उपलब्ध रहेगा।

(२) व्यक्तिगत सम्पर्क का स्थान, तिथि तथा समय पूर्व निर्धारित होना आवश्यक है।

(३) इस सम्पर्क के पूर्व उस व्यक्ति के बारे में आवश्यक जानकारी प्राप्त कर लेना चाहिए।

(४) सम्पर्क के प्रारम्भ में कार्य कर्ता को अपना परिचय तथा मंतव्य बताना चाहिये।

(५) चर्चा में कार्यकर्ता को इस प्रकार से प्रयास करना चाहिये की अन्य व्यक्ति अधिकाधिक चर्चा में भाग ले, शंकाएँ पूछे, प्रश्न पूछे।

(६) कार्यकर्ता को गम्भीरता तथा धैर्य से शंकाओं का समाधान तथा प्रश्नों के उत्तर देना चाहिये।

(७) चर्चा में प्रयास यह होना चाहिये कि समस्या के बारे में उसे अच्छी तरह से अवगत कराया जाय तथा उसके समाधान हेतु उसमें उत्सुकता निर्माण की जाय।

(८) कार्यकर्ता को अपना मत या विचार अन्य व्यक्ति पर कभी भी नहीं थोपना चाहिये।

(९) कार्यकर्ता को जिस व्यक्ति से चर्चा की जा रही है, अपना निर्णय तुरन्त देने के लिए जोर नहीं देना चाहिये। उसे पुनः मिलने का आश्वासन देकर बिदा लेना चाहिए ताकि उसे स्वतन्त्र रूप से सोचने समझने का अवसर मिल सके। व्यक्तिगत सम्पर्क के समय अपनी बात कहने के लिये स्वास्थ्य कार्यकर्ता को निम्न सहायक साधनों का उपयोग भी करना चाहिये। ये बड़े सहायक सिद्ध होते हैं।

१. फ्लेश कार्ड २. सिरिज ३. पाम्पलेट्स ४. लिफ्लेट्स ५. सचित्र कहानी ६. पोर्टेबल माडल आदि।

(२) **समूह चर्चा**—मानव जन्म से ही समूह में निवास करता है। प्रथम वह परिवार के साथ रहता है जो कि प्राथमिक इकाई है, इसके पश्चात् विद्यालय, पास-पड़ोस, मित्रों के समूह में खेलता, कूदता, सीखता, बड़ा होता है। इस प्रकार समूह बदलते जाते हैं। किन्तु हर समूह में वह कई बातें जैसे अनुशासन, प्रेम, सह-अस्तित्व, सहनशीलता, समन्वय आदि गुणों को सीखता है, आत्मसात करता जाता है, तभी वह एक सफल नागरिक बनता है।

समूह चर्चा—जब दो या अधिक व्यक्ति एक ही स्थान पर समान समस्या या उद्देश्य के सम्बन्धी चर्चा के लिये एकत्रित होते हैं तथा चर्चा करते हैं, व समाधान निकालने का प्रयास करते हैं उसे समूह चर्चा कहा जाता है।

समूह चर्चा का उद्देश्य :

(१) समस्या महसूस करना।

(२) समस्या के निराकरण हेतु चर्चा करना।

(३) समस्या को सुलझाने में सहयोग प्राप्त करना।

(४) समस्या का निराकरण करना।

(५) किये गये कार्य पर चर्चा करना, विश्लेषण करना, मूल्यांकन करना तथा तदनुसार सुधार कर पुनः कार्य प्रारम्भ करना या कार्य को गति देना।

समूह चर्चा के प्रकार :

(१) औपचारिक चर्चा, (२) अनौपचारिक चर्चा।

औपचारिक चर्चा :

यह चर्चा पूर्व योजना बनाकर निश्चित उद्देश्य के लिए, निश्चित दिनांक, निश्चित स्थान व समय पर आयोजित की जाती है। चर्चा के विषय की जानकारी पूर्व में सम्बन्धित व्यक्तियों को दे दी जाती है।

औपचारिक चर्चा आयोजन कर्ता को ध्यान में रखने हेतु आवश्यक बातें :

(१) सामान्य रुचि वाले व्यक्तियों को एकत्रित करना।

(२) समूह में सभी क्षेत्र के [मोहल्ले] लोग जहाँ तक सम्भव हो बुलाना।

(३) जनसाधारण की समस्या को ही विचारार्थ लेना, व्यक्तिगत समस्या का समूह चर्चा में कोई स्थान नहीं है।

(४) समूह में सदस्यों की संख्या इतनी होनी चाहिये कि सभी व्यक्ति उसमें स्वतन्त्रतापूर्वक अपने विचार प्रकट कर सकें।

(५) चर्चा में वातावरण सौहार्दपूर्ण हो, संघर्षपूर्ण न हो।

(६) ऐसे विषय जिसमें संघर्ष या मन मुटाव हो सकता हो वे विषय चर्चा हेतु कदापि न लें।

(७) समूह चर्चा की बैठक व्यवस्था जहाँ तक संभव हो अर्ध गोलाकार होना चाहिये।

(८) चर्चा में प्रत्येक व्यक्ति का मत जानने का प्रयास होना चाहिए। ताकि उदासीन व्यक्ति भी इसमें भाग लेने के लिए प्रेरित हों।

(९) आयोजन कर्ता को विषय का पूर्ण ज्ञान हो।

समूह चर्चा सफल नहीं होती अगर :

(१) सामान्य चर्चा वाले व्यक्तियों को एकत्रित नहीं किया जाता।

(२) समूह के सदस्यों की संख्या अत्यन्त अल्प (जैसे २-३) या अत्याधिक न हो जैसे १५-२० से अधिक।

(३) सभी सदस्यों को अपने विचार प्रकट करने का अवसर न मिले।

(४) जब सदस्य एक साथ बोल रहे हों तथा एक दूसरे को विचार सुनाई ही नहीं पड़ रहे हों।

(५) चर्चा का उद्देश्य ही स्पष्ट न हो।

(६) संघर्षपूर्ण वातावरण का निर्माण हो जावे।

(७) व्यक्तिगत समस्याओं पर चर्चा हो।

समूह चर्चा को नियन्त्रित करने, विषय से अलग न हटने तथा उन्मुक्त चर्चा करने हेतु एक नेता की आवश्यकता होती है। अतः समूह में से ही एक व्यक्ति को नेता चुनना चाहिये जिसे—(१) विषय का पूर्ण ज्ञान हो। (२) प्रभावशाली हो। (३) प्रोत्साहित कर सके। (४) संघर्षपूर्ण वातावरण का निर्माण न होने दे। (५) चर्चा के विषय से अलग न हटने दे। (६) सभी सदस्यों को भाग लेने हेतु प्रोत्साहित करें। (७) समस्या के समाधान हेतु अगर आवश्यक हो उसी समय निर्णय पर पहुँचने का प्रयास हो।

समूह चर्चा का विवरण लिखने की व्यवस्था भी होनी चाहिए। इस हेतु एक लेखन का कार्य करें, चर्चा के बीच हुये विचारों के आदान-प्रदान की मुख्य-मुख्य बात को नेता के मार्ग-दर्शन में लिखे तथा लिये गये निर्णयों को भी अंकित करे तथा अन्त में समूह चर्चा का प्रतिवेदन पढ़कर सुनावे।

समूह चर्चा के लाभ :

(१) चर्चा में निष्क्रिय व्यक्ति भी अन्य लोगों के विचार सुनकर विचार करने लगता है तथा सक्रिय हो जाता है।

(२) समस्या के सम्बन्ध में समूह के सभी सदस्यों को सभी दृष्टिकोण से विचार करने का अवसर मिलता है तथा समझने का अवसर मिलता है तथा निर्णय लेने में सुविधा होती है।

(३) निर्णय एकमत या बहुमत द्वारा होता है अतः सदस्य का समाधान करने में सभी सहयोग देते हैं।

अनौपचारिक समूह चर्चा :

जब बिना पूर्व निर्धारित समय, स्थान तथा विषय के अचानक समूह में जाकर किसी एक विषय पर चर्चा आरम्भ की जाती है। इस हेतु पूर्व से निर्धारित चर्चा की रूपरेखा नहीं होती है।

अनौपचारिक चर्चा मे जिस प्रकार भाग लिया जावे तथा उसमें जिन बातों का ध्यान रखा जाये वह निम्नानुसार हैं :

(१) समूह में सम्मिलित होते ही अपना परिचय दे।
(२) उनकी जिस विषय पर पूर्व में चर्चा चल रही थी उसमें रुचि ले।
(३) चर्चा के बीच अपना विषय भी रखे।
(४) उनकी आवश्यकताओं को समझे तथा संभव हो तो सुझाव दे।
(५) अपने विषय में रुचि उत्पन्न करे।

समुदाय में कार्य :

इसमें कार्य करने में किसी प्रकार का संख्या का, स्थान का बन्धन नहीं होता है। यह प्रणाली वृहद् जनसंख्या को एक साथ किसी समस्या के बारे में अवगत कराते हुए उसके समस्या समाधान को बताया जाता है। इसमें शिक्षित करने वाली संस्था या

स्रोत ही समस्या का समाधान बताता है। उनसे समाधान के लिए साधारणतः सुझाव नहीं माँगे जाते। केवल विकल्प दिये जा सकते हैं।

यह कार्य जनसभा, सम्मेलन, रेडियो प्रसारण, दूरदर्शन (टेलीविजन) पर प्रसारण, समाचार पत्र आदि के माध्यम से किया जाता है।

इसमें आवश्यक है कि समस्या के विभिन्न पहलुओं को स्पष्ट किया जाय। उससे होने वाली कठिनाई तथा हानि से उपलब्ध साधन या माध्यम द्वारा जन साधारण को अवगत कराया जाय साथ ही उसके समाधान हेतु हल को भी सुझाया जाय।

★

१२७. स्वास्थ्य शिक्षा

प्रस्तावना—स्वास्थ्य मानव द्वारा अर्जित एक सम्पत्ति है। इसे सुरक्षित रखना पूर्णतः मानव के स्वयं के प्रति तथा समुदाय के प्रति व्यवहार पर निर्भर करता है। मानव हमेशा ही इसके प्रति उदासीन रहा है तथा इसे खोने पर ही उसे पाने की उत्सुकता जागृत हुई है।

स्वास्थ्य क्या है ?

परिभाषा—विश्व स्वास्थ्य संघटन के अनुसार, "स्वास्थ्य पूर्ण शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक कल्याण की एक दशा है, बीमारी या कमजोरी की अनुपस्थिति ही नहीं है।"

स्वास्थ्य वह दशा है जिसमें मानव शरीर तथा आन्तरिक व बाह्य पर्यावरण में उचित सहयोग हों।

शिक्षा—पूर्व निर्धारित लक्ष्य की ओर अग्रसर होकर उद्देश्य प्राप्ति हेतु किया हुआ ज्ञानार्जन ही शिक्षा है। चाहे ज्ञानार्जन का माध्यम कुछ भी हो। अनुभव के आधार पर प्राप्त ज्ञान ही शिक्षा है।

स्वास्थ्य शिक्षा—"स्वास्थ्य शिक्षा एक प्रक्रिया है जिसका उद्देश्य लोगों के ज्ञान, मनोवृत्ति एवं व्यवहार को बदलना है।"

स्वास्थ्य शिक्षा उन समस्त अनुभूतियों का योग है जो स्वास्थ्य सम्बन्धी आचरणों, आदतों एवं ज्ञान को अनुकूल रूप से प्रभावित करता है। जिसके अनुसार आचरण करने पर व्यक्ति तथा समाज का स्वास्थ्य उन्नत रहता है।

स्वास्थ्य शिक्षा के उद्देश्य—समुदाय के सदस्यों के स्वास्थ्य सम्बन्धी आदतों तथा ज्ञान के बीच की खाई को भरना है। उद्देश्यों को निम्नानुसार वर्गीकृत किया जा सकता है :

(१) स्वास्थ्य, व्यक्ति एवं समुदाय की सम्पत्ति है। यह भावना का निर्माण करता है।

(२) लोगों को अपने कार्यों तथा प्रयत्नों द्वारा स्वास्थ्य समस्याओं के निराकरण हेतु निपुणता तथा ज्ञान से सज्जित होना चाहिये।

(३) स्वास्थ्य सेवाओं के विकास तथा उचित उपयोग हेतु प्रेरित करना।

(४) उत्तम स्वास्थ्य किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है इसका ज्ञान प्रदान करना।

(५) व्यक्ति एवं समुदाय में व्याप्त अज्ञान एवं गलत धारणाओं को दूर कर उत्तम स्वास्थ्य हेतु स्वयं प्रयास करना।

(६) स्वास्थ्य मानव समुदाय की एक अमूल्य निधि है यह जागृति उत्पन्न करता है।

(७) स्वास्थ्य शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य है। स्वस्थ आदतों का डालना तथा स्वास्थ्य शिक्षा के अनुसार आचरण करना क्योंकि बिना आचरण के शिक्षा बेकार है क्योकि एक कहावत है "मैं सुनता हूँ भूल जाता हूँ, देखता हूँ, स्मरण रखता हूँ, यदि करता हूँ तो मैं जानता हूँ।"

(८) व्यक्ति तथा समुदाय की धार्मिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक भ्रांतियों को दूर कर ज्ञान का प्रकाश देना। जैसे चेचक टीका, D. D. T. spray न कराना।

(९) स्वास्थ्य शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति, समुदाय तथा राष्ट्र को उन्नति की ओर अग्रसर करना।

स्वास्थ्य शिक्षा वह सीमेन्ट है जिसके द्वारा स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यक्रमों रूपी ईंटों को जोड़कर स्वस्थ राष्ट्र रूपी भवन का निर्माण किया जा सकता है। स्वास्थ्य शिक्षा बिज, मानव उर्वरा भूमि तथा उत्तम स्वास्थ्य उसकी उत्तम फसल है।

स्वास्थ्य शिक्षा के सिद्धान्त—स्वास्थ्य शिक्षा सभी समाज, वर्गों जाति, अमीर-गरीब, युवा, वृद्ध, शिक्षित, अनपढ़, रोगी एवं स्वस्थ्य सभी लोगों के लिये समान रूप से उपयोगी है।

स्वास्थ्य शिक्षा के सिद्धान्त :

(१) जब तक प्रेरणा नहीं होगी लोग सीखेंगे नहीं।

(२) सीखने की इच्छा तथा रुचि होना आवश्यक है।

(३) स्वास्थ्य शिक्षा दोहरी प्रक्रिया है।

(४) लोगों के पूर्व ज्ञान को आधार बनाकर नया ज्ञान देना चाहिये।

(५) श्रोता तथा वक्ता में उचित संचार होना चाहिये। भाषा सरल, स्पष्ट तथा आसानी से समझ में आने वाली होनी चाहिये।

(६) नकारात्मक शिक्षा के बजाय सकारात्मक शिक्षा अधिक उपयोगी है। नकारात्मक शिक्षा को आधार बनाया जा सकता है।

(७) आवश्यकता के अनुरूप शिक्षा देना चाहिये। (कालरा के समय प. नि. की सलाह नहीं देनी चाहिये।)

(८) लोगों की आदत खान, पान, प्रथाएँ, रूढ़ियाँ, धार्मिक विश्वास निषेधों की जानकारी होनी चाहिये।

(९) लोगों को भूमि, स्वास्थ्य तथ्यों को बिज तथा स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता बीज बोने वाला होना चाहिये।

(१०) स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता तथा लोगों के बीच सोह्यार्दपूर्ण सम्बन्ध होना चाहिये। लोगों का विश्वास उनके सुख-दुःख में सहायक होकर प्राप्त करना चाहिये।

(११) श्रोता का रहन-सहन, स्तर, शिक्षा आदि को ध्यान में रखकर शिक्षा दी जानी चाहिये।

(१२) एक बार में ही सभी अनुकरण नहीं करते अतः उसे बार-बार दोहराना चाहिये।

(१३) प्रत्येक व्यक्ति जीवन पर्यन्त सीखना चाहता है, अधिक उम्र हो जाने से सीखने की योग्यता कम नहीं हो जाती वरन् रुचि की कमी तथा सीखने की इच्छा की कमी बाधक होती है।

(१४) क्रियात्मक शिक्षा अधिक उपयोगी होती है।

(१५) स्थानीय नेताओं से सम्पर्क, उनसे सोहार्दपूर्ण सम्बन्ध तथा उनकी उपस्थिति तथा क्रियात्मक योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है।

स्वास्थ्य शिक्षा का विषय निम्न बातों पर निर्भर होना चाहिये :

१. समूह की रुचि तथा उनकी आवश्यकता

२. समूहों को जो पहले से ज्ञात है

३. आयु, लिंग शिक्षा का स्तर

४. समुदाय की स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याएँ।

स्वास्थ्य शिक्षा के चरण :

परिवार—१. **व्यक्ति शिक्षा**—(अ) Infant age (ब) Toddlar age (स) स्कूल की उम्र (द) किशोर अवस्था (प) युवावस्था (फ) वृद्धावस्था।

२. **समुदाय**—(१) स्थानीय धार्मिक नेता (२) स्थानीय सामाजिक नेता (३) पदासीन अधिकारी (पोलिस, पटवारी अध्यापक आदि) (४) स्थानीय चिकित्सक (५) स्थानीय स्वयं सेवा संस्था तथा उनके पदाधिकारी (६) शिक्षा के उचित अवसरों का उपयोग (जैसे हैजा, बाढ़, बीमारी, गर्भवती अवस्था आदि) (७) जरूरतमन्दों से सम्पर्क (८) तुरन्त सेवायें (९) स्वास्थ्य समितियों का स्थानीय तौर पर गठन।

३. **समूह**—(१) व्यक्तिगत सम्पर्क द्वारा समस्या जानकर उनका तुरन्त निराकरण (२) समूह की समस्या जानकर उसका तत्काल निराकरण।

समूह में निम्न तरीके से स्वास्थ्य शिक्षा दी जानी चाहिये :

१. समूह चर्चा (Group meeting),

२. आमसभा,

३. भाषण,

४. चिकित्सक के क्लीनिक,

५. उद्योग (Industry) में जन-समूह जब एकत्रित होता हो जैसे चौपाल, पंचायत की बैठक, सांस्कृतिक कार्यक्रम।

स्वास्थ्य शिक्षा की पद्धति :

१. व्यक्तिगत सम्पर्क, २. समूह चर्चा, ३. आमसभा में, ४. प्रान्त देश या विश्वव्यापी कम्पेन।

स्वास्थ्य शिक्षा के साधनों के चयन का सिद्धान्त :

१. स्वास्थ्य शिक्षा के साधनों की उपलब्धि।

२. स्वास्थ्य शिक्षा जिन्हें दी जाती है उनका बौद्धिक शैक्षणिक स्तर।

३. समुदाय को रुचि रहे ऐसा साधन।

४. शिक्षा साधन में निहित तथ्यों का सही तथा वातावरण तथा आवश्यकता के अनुरूप होना।

५. उपयोगी तथा रुचिपूर्ण तथा उद्देश्य प्राप्ति में सहायक हो।

६. स्थानीय साधनों का अधिकाधिक उपयोग।

स्वास्थ्य शिक्षा के साधन तथा सामग्री :

१. साक्षात्कार, २. ग्रुप या समूह चर्चा, ३. व्याख्यान या गोष्टी, ४. **पेनल या सिरपोझीयम**—केवल विशेषज्ञ ही चर्चा करते हैं तथा अन्य केवल श्रवण करते हैं, ५. समाचार पत्रों में चित्र या समाचार आदि लेख, ६. मासिक, साप्ताहिक, पत्र पत्रिकाओं द्वारा चित्र, समाचार व लेख आदि, ७. चल-चित्र प्रदर्शन, ८. स्लाईड शो, ९. प्रदर्शनी, १०. बुलेटीन बोर्ड या सूचना पट, ११. चार्ट, ग्राफ, १२. पोस्टर्स, १३. पाम्पलेट्स १४. बुक्लेट्स १५. टेलीविजन, १६. माडल्स, १७. अजायबघर, १८. रेडियो संदेश रेडियो फोरम, १९. कठपुतली का प्रदर्शन, २०. नाटक ड्रामा, २१. स्वास्थ्य मेगजिन, २२. रोल प्ले, २३. प्रदर्शन।

स्वास्थ्य शिक्षा का क्षेत्र :

१. परिवार नियोजन,

२. आहार, पोषक आहार, कुपोषण से होने वाली बीमारियाँ,

३. संक्रामक रोगों की रोकथाम,

४. दुर्घटना की रोकथाम,

५. मानसिक स्वास्थ्य

६. पर्यावरण स्वच्छता (स्वच्छ वायु, कूड़ा, कर्कट, गंदे पानी का निकास),

७. व्यक्तिगत स्वास्थ्य (स्नान, कपड़े, दाँत, खांसना),

८. मानव शरीर रचना,

९. अस्वास्थ्यप्रद आदतों एवं पदार्थों के प्रभाव,

१०. मातृ एवं शिशु कल्याण।

स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता को या उससे उच्च पदस्थ को समय-समय पर मूल्यांकन करना चाहिये।

मूल्यांकन करते समय निम्न बातों पर विचार करना चाहिये :

१. निर्धारित उद्देश्य।

२. स्वास्थ्य शिक्षा हेतु निर्धारित की गई प्रणालियाँ व उसका अनुसरण।

३. निर्धारित लक्ष्य प्राप्ति का आकार।

स्वास्थ्य शिक्षा का मूल्यांकन करते समय प्राप्त प्राप्ति को ध्यान में रखते हुये निम्न बिंदुओं पर विचार करना चाहिये :

१. स्वास्थ्य शिक्षा हेतु जो विधि तथा प्रणाली अपनाना निश्चित किया गया था क्या उसी के अनुसार कार्य किया गया ?

२. कार्य में जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा उसका ब्यौरा।

३. कठिनाइयों को हल करने हेतु किये गये प्रयास।

४. सुझाव।

स्वास्थ्य शिक्षा में कार्यकर्त्ता को अपनी वाणी, कान तथा हाथों का उपयोग उचित समन्वय के साथ करना चाहिये। स्वास्थ्य शिक्षा हेतु प्रत्येक उचित अवसरों का लाभ उठाना चाहिये। स्वास्थ्य शिक्षा में श्रोता को पूर्ण स्वतन्त्रता के साथ अपने विचार तथा शंका प्रगट करने के अवसर देना चाहिये। तथा उनकी बातों को गम्भीरता के साथ सुनकर उसका निराकरण करना चाहिये।

स्वास्थ्य शिक्षा एक निरन्तर प्रक्रिया है। इसके माध्यम से सामाजिक विचारों तथा मूल्यों में परिवर्तन लाया जाता है। सामाजिक परिवर्तन एकदम नहीं आता है। अतः परिणाम को तुरन्त प्राप्ति की आशा नहीं रखना चाहिये तथा निराश न होते हुये प्रयास निरन्तर जारी रखना चाहिये तथा प्रयास यह होना चाहिये कि जिस विषय पर स्वास्थ्य शिक्षा दी जा रही है उस बाबद सेवायें तुरन्त उपलब्ध हों।

★

१२८. स्वास्थ्य सेवाएँ

स्वास्थ्य सेवाएँ भारतवर्ष में सन् १८५९ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के द्वारा बंगाल में सर्व प्रथम लागू की गयीं जो की प्रत्येक प्रांत में शनैः-शनैः लागू हुईं।

वर्तमान में मध्यप्रदेश में स्वास्थ्य संगठन की रूपरेखा निम्न प्रकार है :

केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्रालय

↓

(प्रान्तीय स्वास्थ्य मन्त्रालय)

↓

(स्वास्थ्य मन्त्री)

↓

(स्वास्थ्य सचिव)

↓

- संचालक स्वास्थ्य एवं परिवार नियोजन
- संचालक चिकित्सा सेवाएँ
  - ↓ संयुक्त संचालक
    - ↓ जिला स्वा. एवं परिवार कल्याण अधिकारी
      - ↓ प्राथमिक स्वा. केन्द्र असि. सर्जन
        - ↓ पुरुष निरीक्षक → पुरुष कार्यकर्त्ता → जन स्वास्थ्य रक्षक
        - ↓ महिला निरीक्षक → महिला कार्यकर्त्ता → देशी दाइयाँ
      - ↓ सिविल डिस्पेन्सरी असि. सर्जन
    - ↓ प्रमुख चिकित्सक
- संचालक यूनानी एवं होम्योपेथी
- संचालक आयुर्वेदिक
- ड्रग कंट्रोलर

भारतवर्ष में स्वास्थ्य कार्यक्रम :

भारतवर्ष के आजाद होने के पश्चात् भारत सरकार ने लोगों की स्वास्थ्य वृद्धि हेतु कई कार्यक्रम अपनाये हैं जिन्हें नेशनल हेल्थ प्रोग्राम (National Health Programme) कहते हैं।

(१) **मलेरिया उन्मूलन कार्यक्रम**—यह कार्यक्रम भारतवर्ष में सन् १९५३ में मलेरिया नियन्त्रण कार्यक्रम (Maleria Control Programme) के रूप में शुरू किया गया था। क्योंकि पहले प्रतिवर्ष करीब ७५० लाख लोग मलेरिया रोग से

पीड़ित होते थे व करीब ८ लाख लोगों की मृत्यु हो जाती थी। परन्तु सन् १९५८ में २ लाख व्यक्ति मलेरिया से ग्रसित हुए और मृत्यु एक भी व्यक्ति की नहीं हुई। अतः भारत सरकार ने नियन्त्रण कार्यक्रम को उन्मूलन कार्यक्रम में परिवर्तित कर दिया।

(२) **चेचक उन्मूलन कार्यक्रम**—यह योजना १९६२ में लागू की गयी व इस कार्यक्रम के अन्तर्गत १००% बच्चों को टीके लगाने का प्रावधान रखा गया। ५ जुलाई १९७५ को डब्ल्यू. एच. ओ. (W. H. O.) ने भारतवर्ष को चेचक फ्री सर्टिफिकेट दे दिया।

(३) **हैजा नियन्त्रण कार्यक्रम**—चौथी पंचवर्षीय योजना में हैजा नियन्त्रण हेतु मोबाइल यूनिटों का निर्माण किया गय व शुद्ध पानी की ओर ध्यान दिया गया।

(४) **फायलेरिया नियन्त्रण कार्यक्रम**—यह कार्यक्रम १९५५ में लागू किया गया। इस कार्यक्रम के तहत मच्छरों को नष्ट करना, व उनके लार्वा नष्ट करना व फायलेरिया के मरीजों को खोजना व इनका इलाज करना। इस समय देश में १३६ फायलेरिया नियन्त्रण यूनिट कार्य कर रही है।

(५) **तपेदिक (टी. बी.) नियन्त्रण कार्यक्रम**—इस कार्यक्रम से अन्तर्गत खकांर की जाँच करके मरीजों का पता लगाया जाता है और उन्हें जिला क्षय अस्पतालों से इलाज दिया जाता है। २० वर्ष से कम के व्यक्तियों की बी. सी. जी. से टीके लगाये जाते हैं। इस समय देश में ५४७ टी. बी. क्लीनिक कार्य कर रहे हैं।

(६) **लेप्रोसी नियन्त्रण कार्यक्रम**—यह कार्यक्रम १९५४-५५ में लागू किया गया। इस समय देश में २३५ लेप्रोसी नियन्त्रण यूनिट कार्य कर रही हैं।

(७) **गुप्त रोग (V. D.) नियन्त्रण कार्यक्रम**—गुप्त रोग नियन्त्रण कार्यक्रम सर्वप्रथम हिमाचल प्रदेश सरकार ने सन् १९५५ में शुरू किया। सन् १९५७ में यह सारे देश में शुरू किया गया। इस समय देश में ३०० में अधिक गुप्त रोग क्लीनिक कार्यरत हैं

(८) **अन्धत्व की रोकथाम**—सन् १९७० में सरकार ने १ से ५ वर्ष के बच्चों के लिए एक कार्यक्रम शुरू किया जिसमें इन बच्चों को विटामिन 'ए' की २००,००० I. U. की मात्रा ६ माह के अन्तर से दो बार दी जाती है।

(९) **ट्रकोमा नियन्त्रण कार्यक्रम**—यह कार्यक्रम सन् १९६३ में शुरू हुआ। इसमें स्वास्थ्य शिक्षा व इलाज दिया जाता है।

(१०) **गोइटर (Goitre) नियन्त्रण कार्यक्रम**—यह कार्यक्रम १९६२ में शुरू किया गया।

(११) **पौष्टिक आहार कार्यक्रम** (Nutrition Programme)—यह कार्यक्रम स्कूल, बच्चों व गर्भवती माताओं व दूध पिलाने वाली माताओं के लिये शुरू किया गया।

(१२) **परिवार नियोजन**।

★

१२६. सेवाएँ

मध्य प्रदेश की सरकार ने स्वास्थ्य सेवाओं की गतिविधियों के अन्तर्गत सही अर्थों में सेवा को साकार करने का महत्त्वपूर्ण अभियान प्रारम्भ किया है।

मध्य प्रदेश में इस समय लगभग २०० अस्पताल हैं। ४६५ प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, ३४१२ उप. स्वास्थ्य केन्द्र कार्य कर रहे हैं। ६ चिकित्सा महाविद्यालय व प्रत्येक जिले में जिला चिकित्सालय हैं। १५० मिनी स्वास्थ्य केन्द्र आदिवासी इलाके में खोले गये हैं।

गाँव के लोगों को उनके घर के दरवाजे तक सामान्य सेवा पहुँचाने हेतु ग्रामीण स्वास्थ्य सेवा योजना लागू की गयी हैं जिसके तहत जन-स्वास्थ्य रक्षकों के प्रशिक्षण का कार्य २ अक्टूबर १९७७ से प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों पर चल रहा है।

दाई प्रशिक्षण :

प्रदेश में बाल मृत्यु दर १२२ प्रति हजार है जो कि बहुत अधिक हैं अतः इसे कम करने के लिए स्थानीय दाइयों को प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र पर प्रशिक्षित किया जा रहा है।

बहुउद्देशीय कार्यकर्त्ता :

यह योजना प्रदेश के ७ जिलों (इन्दौर, जबलपुर, ग्वालियर, बिलासपुर, भोपाल, धार, दमोद) में लागू हो चुकी है। इस योजना के तहत ये कार्यकर्त्ता एकीकृत सेवाएँ देंगे और चार स्वास्थ्य कार्यकर्त्ताओं पर एक सुपरवाइजर होगा।

मलेरिया नियन्त्रण कार्यक्रम (Maleria Control Programme) :

मलेरिया रोग को नियन्त्रित करने के लिए एक राष्ट्रीय कार्यक्रम "मलेरिया नियन्त्रण कार्यक्रम" के रूप में सन् १९५३ में प्रारम्भ किया गया। इस प्रोग्राम के लागू होने के पहले ७५ मिलियन (१ मिलियन=१० लाख) लोग प्रति वर्ष ग्रसित होते थे जिनमें से लगभग ८ लाख लोगों की मृत्यु हो जाती थी। इस प्रोग्राम के लागू करने के बाद सन् १९५८ में मलेरिया से सिर्फ २० लाख लोग ग्रसित हुए।

राष्ट्रीय मलेरिया उन्मूलन कार्यक्रम (National Maleria Eradication Programme) :

यह कार्यक्रम सन् १९५८ में पूरे देश में लागू किया गया। इसमें कीटनाशक दवाइयों का छिड़काव मच्छरों के लिए, व शहरी क्षेत्र में मच्छरों की उत्पत्ति समाप्त करने वाली प्रक्रियाओं द्वारा किया गया। साथ ही समस्त बुखार पीड़ितों को रक्त पट्टियाँ बनाकर उन्हें एन्टि मलेरिया गोली (क्लोरोक्वीन) का सेवन कराया गया व रक्त पट्टियों की जाँच प्रयोगशाला में करके जो व्यक्ति मलेरिया रोग से ग्रसित पाये गये उन्हें मलेरिया निरोधक गोली का सेवन कराया गया। मच्छरों की उत्पत्ति रोकने के लिये कीटनाशक औषधि (डी. डी. टी. बी. एच. सी.) का उपयोग किया गया।

सन् १९६५ में मलेरिया ग्रसितों की संख्या घटकर लगभग एक लाख रह गयी व किसी भी व्यक्ति की मृत्यु इस रोग से नहीं हुई परन्तु आगे चलकर इस रोग ने भयानक रूप धारण कर लिया।

अतः सन् १९७७ में परिवर्तित योजना लागू की गयी।

परिवर्तित योजना :

(१) प्रत्येक जिले में जिला स्वास्थ्य अधिकारी इस कार्यक्रम के लिए जिम्मेदा रहेंगे।

(२) लेबोरेटरी टेक्नीशियन को जिला मुख्यालयों से हटाकर प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों के अधीन कार्य करना होगा।

(३) सर्वेलेन्स इन्सपेक्टर्स एवं सर्वेलेन्स वर्कर्स को भी प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र के आधीन काम करना होगा।

योजना का स्वरूप

संचालक, राष्ट्रीय मलेरिया उन्मूलन योजना कार्यक्रम
↓
- सम्भावित सहकारिता रचना रीजनल को आडिनिटिंग आर्गेनाइजेशन
- प्रादेशिक मलेरिया लाजिस्ट
  ↓
  क्षेत्रीय उप संचालक स्वास्थ्य सेवाएँ मलेरिया
  ↓
  जिला स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण अधिकारी
  ↓
  - जिला मलेरिया अधिकारी मलेरिया इन्सपेक्टर्स
  - स्वास्थ्य अधिकारी प्रा. स्वा. केन्द्र
    ↓
    - लेब टेक्नीशियन
    - सर्वेलेंस इन्सपेक्टर्स
      ↓
      सर्वेलेन्स वर्कर्स
      ↓
      जन. स्वा. रक्षक

सर्वेलेंस कार्य की रचना :

(१) स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता माह में २ बार प्रत्येक घर में भेंट देगा व बुखा के केसेस की रक्त पट्टी तैयार करेगा।

(२) ग्रामीण एवं पिछडे क्षेत्रों में जहाँ चिकित्सा सेवा उपलब्ध नहीं है बुखार इलाज के केन्द्र (फीवर ट्रीटमेन्ट डिपो) की स्थापना की जाना। जिसका संचान उस ग्राम के शाला के अध्यापक अथवा किसी सामाजिक कार्यकर्ता द्वारा किया ावेगा।

(३) बुखार पीड़ितों को क्लोरोक्वीन की गोलियों का वितरण शाला के ध्यापक एवं पंचायतों द्वारा किया जावेगा।

छड़काव कार्य :

ग्रामीण क्षेत्रों में कीटनाशक दवाई (डी. डी. टी. या बी. एच. सी.) का छड़काव प्रत्येक मकान व जानवरों के रहने वाले कोठों में किया जायेगा। प्रतिवर्ष छड़काव मलेरिया फैलने की अवधि में वर्ष में दो बार किया जायेगा। बी. एच. सी. ी दवा का छिड़काव वर्ष में ३ बार किया जायेगा क्योंकि बी. एच. सी. का प्रभाव ीवारों पर १ से १½ माह रहता है।

छिड़काव के लिए निर्देश :

(१) मकान के सभी कमरे व मवेशियों के कोठे भी आवश्यक रूप से कीटाशक दवाई द्वारा छिड़काव किया जाना चाहिए।

(२) दीवारों पर लगे फोटो कैलेण्डर आदि सामान छिड़काव के पूर्व हटा ना चाहिए एवं प्रत्येक कमरे की समस्त दीवारों पर छिड़काव किया जाना ाहिए।

(३) छिड़काव के पूर्व समस्त खाद्य सामग्री सावधानीपूर्वक ढँकना चाहिए।

(४) प्रत्येक ग्राम के समस्त मकानों में कीटनाशक दवाई द्वारा छिड़काव किया जाना आवश्यक है।

(५) कमरे का कोई भी हिस्सा बगैर छिड़काव के नहीं होना चाहिए।

(६) कीटनाशक दवाई के छिड़काव से २–२½ माह तक मकानों को न तो ीपें न ही पुताई ही करायें।

●

१३०. बहुउद्देशीय कार्यक्रम योजना

कई वर्षों से राष्ट्रीय स्वास्थ्य परिवार नियोजन और आहार सम्बन्धी कार्यक्रम देश में चल रहे हैं। परन्तु इन सब कार्यक्रमों का आपस में समन्वय नहीं है। हालाँकि ये सभी कार्यक्रम प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र के माध्यमों से चल रहे हैं। इन सभी कार्यक्रमों के कार्यकर्ता अलग-अलग कार्य करते हैं और ऐसा अनुभव हुआ है कि इनकी जो जनसंख्या दी गई है अत्यधिक है और उसे कम करने की आवश्यकता है। इस प्रकार जनसंख्या कम करने से कार्यकर्त्ता कार्य प्रभावशाली ढंग से कर सकेगा। इन सब सेवाओं को ग्रामीण समुदाय तक प्रभावशाली ढंग से पहुँचाने हेतु एक समिति का गठन किया गया है। जिनमें निम्नलिखित सुझाव दिये :

(१) कार्यकर्त्ताओं के कार्य क्षेत्र कम करना। कार्य क्षेत्र बड़ा होने के कारण समुदाय में सम्पर्क ठीक ढंग से नहीं हो पाता।

(२) एक ही घर में अनेक कार्यकर्त्ता विभिन्न कार्यक्रमों से जानकारी लेने जाते हैं। किन्तु समुदाय को जो स्वास्थ्य सम्बन्धी आवश्यकता है, उसकी पूर्ति नहीं हो पाती।

(३) सामान्य रोग का इलाज एक भी कार्यकर्त्ता नहीं देता है। यदि ये सेवा कार्यकर्त्ता दे तो समुदाय से अच्छा सम्पर्क बन सकता है।

(४) कई राज्यों में इस प्रकार की योजना को क्रियान्वित किया गया और यह पाया कि बहुउद्देशीय कार्यकर्त्ता ग्रामीण क्षेत्र के लिए आवश्यक एवं उपयोगी है।

(५) पुरुष कार्यकर्त्ता के लिए ६.५ हजार जनसंख्या में स्वास्थ्य, परिवार नियोजन, मलेरिया, चेचक, ट्रकोमा और मातृ शिशु कल्याण सेवाएँ कार्यक्रम का ही समन्वय किया जावे।

(६) ए. एन. एम. कार्यक्षेत्र १० ००० जनसंख्या पर होता है जो कि बहुत अधिक है। इसलिये इनके कार्यक्षेत्र के ३-४ हजार जनसंख्या को गहन कार्य हेतु एवं ६–७ हजार में वे पूरी सेवाएँ देने के लिये बुलाये जाने पर उत्तरदायी होगी।

(७) कार्यकर्त्ताओं को पुरुष स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता और महिला स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता के नये नाम से जाना जायेगा और महिला एवं पुरुष सुपरवाइजर को स्वास्थ्य सहायक क नाम से जाना जाये। प्रत्येक उप-केन्द्र में एक महिला कार्यकर्त्ता और एक पुरुष कार्यकर्त्ता की टीम कार्यरत होगी। कमेटी ने यह भी सुझाव दिया कि प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों की संख्या बढ़ाई जाये। प्रत्येक ५०,००० जनसंख्या पर एक प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र की स्थापना की जाये और इसके अतिरिक्त १६ उप-केन्द्र खोले जाये जो करीब ३१०० जनसंख्या पर होंगे।

बहुउद्देशीय कार्यकर्त्ता को सामान्य चिकित्सा हेतु दवाइयाँ उपलब्ध कराई जायेंगी और इसके लिए प्रत्येक उप-केन्द्र को २००० रु० का बजट दिया जायेगा। वर्तमान में देश में करीब १०० मेडिकल कालेज हैं और करीब ३७० जिले हैं। यह सुझाव दिया है कि एक मेडिकल कालेज ३ जिले की स्वास्थ्य एवं परिवार नियोजन, आहार आदि कार्यक्रम के लिये उत्तरदायी रहेगा। प्रत्येक जिला स्तर पर १००–१५० पलंग वाला अस्पताल होगा। जिसमें विशेषतः जैसे मेडीसिन, शल्य-क्रिया, स्त्री रोग, नेत्र रोग आदि के विशेषज्ञ उपलब्ध होंगे। इन अस्पतालों में एक्सरे, लेबोरेटरी आदि की व्यवस्था होगी। प्रत्येक ४ प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र में एक को अस्पताल बनाया जायेगा जो कि तालूका या तहसील स्तरीय अस्पताल होगा। इसमें ५० से ७५ पलंगों की व्यवस्था होगी और सामान्य चिकित्सा सुविधायें उपलब्ध होंगी।

बहुउद्देशीय कार्यक्रम हेतु प्रशिक्षण :

(१) मेडिकल आफीसर को ३० दिवसीय प्रशिक्षण स्वास्थ्य एवं परिवार नियोजन प्रशिक्षण केन्द्र में दिया जायेगा।

(२) अन्य कार्यकर्त्ता व सुपरवाइजर का प्रशिक्षण ४ सप्ताह से १६ सप्ताह तक श्रेणी के अनुसार दिया जाता है।

बहुउद्देशीय कार्यक्रम के अन्तर्गत आने वाली सेवाएँ :

(१) परिवार नियोजन व मातृ शिशु सम्बन्धी, (२) चेचक, (३) मलेरिया, (४) ट्रकोमा, (५) पोषण।

स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता महिला के कार्यभार :

महिला कार्यकर्त्ता १० हजार जनसंख्या में कार्य करेगी जिसमें से ३ से ४ हजार जनसंख्या उसके गहन कार्य हेतु होगी और शेष भाग विस्तृत कार्य में होगा। गहन कार्य क्षेत्र में समस्त कार्य की जिम्मेदारी होगी और शेष भाग में बुलाये जाने पर सेवाएँ देगी।

पंजीयन :

(अ) तीन माह से अधिक अवधि की गर्भवती महिलाओं का पंजीयन करना।

(ब) विवाहित महिलायें जो प्रजनन आयु में हों उनका पंजीयन करना।

(स) समस्त बच्चों को गृह भेंट व क्लीनिक भेंट के समय पंजीयन करना।

प्रसव सम्बन्धी रिकार्ड, गर्भवती केसेस का रजिस्टर लक्ष्य दम्पत्ति रजिस्टर और शिशु एवं टाडलर रजिस्टर को तैयार करना व समय-समय पर जानकारी पूर्ण करते रहना।

घर में देखभाल :

(१) गर्भवती महिलाओं विशेषकर पंजीयत महिलाओं की गर्भ के पूरे ९ माह तक देखभाल करना।

(२) गर्भवती महिलाओं को एवं प्रसव पश्चात स्तनपान कराने वाली महिलाओं को पोषण सम्बन्धी सलाह देना।

(३) आयरन फोलिक एसिड की गोली गर्भवती महिलाओं को, स्तनपान कराने वाली महिला को, बच्चों को एवं परिवार नियोजन अपनाई हुई महिलाओं को वितरित करना। विटामिन 'ए' साल्यूशन बच्चों को वितरित करना।

(४) गर्भवती महिलाओं को टिटेनस टाक्साइड लगाना।

(५) असामान्य गर्भवती महिला केसेस को व दूसरे स्त्री रोग के केसेस को अस्पताल भेजने की व्यवस्था करना।

(६) अपने गृहण क्षेत्र में लगभग ५० प्रतिशत प्रसव करना व बुलाये जाने पर विस्तृत क्षेत्र में प्रसव करवाना।

(७) दाइयों के द्वारा किये गये प्रसवों की देखभाल करना और उचित मार्गदर्शन देना।

(८) कठिन प्रसवों को व असाधारण असामान्यता वाले नवजात शिशु को अस्पताल भेजने की व्यवस्था करना व उनको बाद में ठीक होने पर उनका अनुसरण करना। अस्पताल द्वारा उचित देखभाल होने में सहायता करना और अस्पताल से छुट्टी किये जाने वाले रोगियों का अनुसरण करना।

(९) प्रसव पश्चात कम से कम ३ विजिट देना और नवजात शिशु के आहार के विषय में समझाना।

(१०) परिवार नियोजन के संदेश लोगों तक पहुँचाना और प्रेरणा देने का कार्य समूह चर्चा और व्यक्तिगत सम्पर्क से करना।

(११) परिवार नियोजन के अस्थायी साधनों को वितरित करना और साधन अपनाने के इच्छुक व्यक्ति को परिवार नियोजन सेवाएँ स्वयं जाकर या दाई के साथ भेजकर दिलवाने में सहायता करना।

(१२) परिवार नियोजन अपनाये व्यक्तियों का अनुसरण करना और उसके कारण हुई मामूली तकलीफों को देखना उसका इलाज करना व ज्यादा तकलीफ वाले केसेस को प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र या किसी अस्पताल में भेजना।

(१३) शिशु की वृद्धि एवं विकास को आंकना और आवश्यक कार्यवाही करना।

(१४) अपने क्षेत्र के सभी नवजात शिशुओं को चेचक का प्राथमिक टीका एवं त्रिगुणी टीका लगाना और पोलियो व बी. सी. जी. का टीका लगाने की व्यवस्था करना।

(१५) साधारण बीमारियों का इलाज करना और आकस्मिकताओं में प्राथमिक चिकित्सा देना और असामान्य केसेस को प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र पर भेजना।

(१६) अपनी भेंट के दौरान सूचना देने योग्य पाई गई बीमारियों की सूचना देना।

(१७) अपने क्षेत्र के जन्म मृत्यु के आँकड़े एकत्रित करना और उनको सुपरवाइजर के द्वारा जिला रजिस्ट्रार को भेजना।

(१८) गृह भेंट के समय पेशाब की जाँच एल्बूमिन व शकर व खून की जाँच हीमोग्लोबुलिन के प्रतिशत के लिए करना।

(१९) गर्भपात चाहने वाली महिलाओं को उचित सलाह देना।

क्लीनिक में देखभाल :

(१) मेडिकल आफीसर, स्वास्थ्य निरीक्षका को उपकेन्द्र पर शिशु कल्याण एवं परिवार नियोजन सम्बन्धी क्लीनिक आयोजन में मदद देना।

(२) पेशाब और खून की जाँच करना।

(३) माताओं को व्यक्तिगत रूप से और समूह में मातृ एवं शिशु कल्याण, परिवार नियोजन, आहार, टीके, स्वच्छता और साधारण बीमारियों के बारे में शिक्षा देना।

समुदाय में देखभाल :

महिला नेताओं को पहचानना और स्वास्थ्य निरीक्षका को नेताओं के प्रशिक्षण में मदद करना।

अन्य कार्य :

(१) केन्द्र की सफाई की व्यवस्था करना।

(२) प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र में मीटिंग में उपस्थित होना।

(३) अपने क्षेत्र की दाइयों की सूची बनाना और परिवार नियोजन के कार्य में उनकी मदद लेना।

(४) पुरुष स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता की उनके कार्य में मदद करना।

(५) सब रिकार्ड एवं रिपोर्ट तैयार करना।

(६) अपने क्षेत्र का नक्शा और निर्देशन रिपोर्ट को समय पर सुपरवाइजर के पास भेजना।

पुरुष स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता के कार्यभार :

कार्यकर्त्ता ५००० से ७००० जनसंख्या में कार्य करेगा, व उसको सौंपे गए समस्त कार्यों के लिए उत्तरदायी होगा। प्रत्येक परिवार को माह में दो भेंट देना अनिवार्य है।

रिकार्ड रखना—(अ) परिवारों का सर्वे करना तथा प्रत्येक ग्राम की समुदाय के अनुसार जानकारी रखना।

(ब) पारिवारिक रेकार्ड तैयार करना, उनका उपयोग करना, ग्राम के रजिस्टर रखना जिससे मलेरिया और चेचक उन्मूलन कार्यक्रम, परिवार नियोजन कार्यक्रम, प्रतिरोध टीका व मृत्यु के आँकड़े, स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यक्रम, शैक्षणिक गतिविधियाँ, सेवाएँ तथा उपलब्धियाँ आदि की जानकारी रखी जायगी

(१) मलेरिया :

(अ) बुखार केसेस का पता लगाना (ब) मोटी व पतली खून की पट्टियाँ तैयार करना (स) इन पट्टियों को लेबोरेटरी में निरीक्षण हेतु भेजना (द) आरम्भिक उपचार देना (इ) खून की पट्टियों की परीक्षण रिपोर्ट रखना (ई) समुदाय को खून की पट्टियों के महत्व, स्प्रे के महत्व व बुखार केसेस के महत्व को समझाना।

(२) चेचक उन्मूलन कार्यक्रम :

(अ) दाने व बुखार वाले केसेस को ढूंढना व अपने सुपरवाइजर को सूचित करना। (ब) स्वास्थ्य सेवाएँ पहुँचने तक दूसरे नियन्त्रक उपाय जैसे—पृथक्करण, निसंक्रमण करना, सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों को टीके लगाना। (स) असुरक्षित बच्चों व बड़ों की सूची बनाना। (द) सभी असुरक्षित केसेस को टीके व पुनः टीके लगाना। (इ) समुदाय को बड़ी माता के टीकों का महत्व समझाना।

(३) परिवार नियोजन :

(अ) पारिवारिक रिकार्ड से लक्ष्य दम्पत्ति सूची तथा इस जानकारी को

परिवार नियोजन कार्य हेतु उपयोग में लाना (ब) परिवार नियोजन का संदेश अपने क्षेत्र के प्रत्येक दम्पत्ति को देना, व्यक्तिगत व सामूहिक रूप से प्रेरित करना (स) दम्पत्तियों को अस्थाई साधन वितरण करना (द) साधन अपनाये व्यक्तियों का अनुसरण करना। ऐसे व्यक्तियों की छोटी-छोटी तकलीफें तथा साधनों के उपयोग के प्रभाव से हुई तकलीफों को देखना और तात्कालिक उपचार देना। डाक्टरों द्वारा देखे जाने योग्य केसेस को अस्पताल या प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र भेजना (इ) पुरुष डिपो होल्डर की नियुक्ति करना तथा स्वास्थ्य सुपरवाइजर को प्रशिक्षण कार्य में सहयोग देना। अस्थाई साधन जैसे निरोध की निरन्तर पूर्ति डिपो होल्डर के पास करना (ई) संतुष्ट उपभोक्ताओं, स्कूल शिक्षक व अन्य के साथ सम्बन्ध स्थापित कर परिवार नियोजन कार्यक्रम को बढ़ाने में उनका सहयोग लेना। (उ) प्रत्येक गाँव में पुरुष नेताओं का चयन करना, उनकी सूची तैयार करना व उनके सहयोग से समुदाय को शिक्षित करना व स्वास्थ्य एवं परिवार नियोजन कार्यक्रमों में सम्मिलित करना।

(४) पोषक आहार :

(अ) पाँच वर्ष से नीचे की उम्र के बच्चों में से कुपोषण वाले बच्चों की सूची तैयार कर बालवाड़ी या प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र को अनुपूरक पोषण में उपचार हेतु भेजना (ब) आयरन फोलिक एसिड की गोलियाँ गर्भवती तथा प्रसूती पश्चात् माताओं को व ५ वर्ष से कम आयु के बच्चों को तथा परिवार नियोजन अपनाने वाले व्यक्तियों को वितरित करना। (स) विटामिन ए. की बूंदें १ से ५ वर्ष के बच्चों को निर्धारित मात्रा के अनुसार देना। (द) परिवारों, माताओं व बच्चों के लिए पौष्टिक आहार सम्बन्धी शिक्षा देना।

(५) टीके :

(अ) ट्रिपल या त्रिगुणी टीका व गोलियाँ १ से ५ वर्ष तक के बच्चों को देना (ब) समुदाय में विभिन्न प्रकार के टीके लगाने में सहायता करना (स) संक्रामक रोगों के प्रतिरोधक टीकों के सम्बन्ध में जानकरी देना। (द) स्वास्थ्य सुपरवाइजर को स्कूल में प्रतिरोधक टीके लगाने में सहायता करना।

(६) आसपास की स्वच्छता :

(अ) भ्रमण के दौरान पेयजल के स्रोतों का शुद्धिकरण करना। (ब) समुदाय को गन्दे पानी के विस्तार के विषय में बतलाना, सोकेज का पिट्स का निर्माण करना, किचन गार्डन बनाना, तथा कूड़ा-कचरा करकट को किस प्रकार निर्मूल करना इस विषय में समझाना। (स) गृह सफाई, सेनेटरी प्रकार के लेट्रीन के फायदे इसका निर्माण कर प्रदर्शन से उसके लाभ बतलाना।

(७) संक्रामक रोग :

गृह भेंट के समय हैजा, चेचक, पोलियो, लगातार बुखार के केसेज की सूची केन्द्र को देना। (ब) स्वास्थ्य सेवाएँ मिलने तक इन्हें नियन्त्रित करना। (स) समुदाय

को इसके लिए शिक्षित करना उनसे बचाव के उपाय बताना। (द) पागल कुत्तों के सम्बन्ध में सूचना देना।

(८) जन्म मृत्यु सम्बन्धी आंकड़े :

क्षेत्र में होने वाले जन्म व मृत्यु का रिकार्ड रखना तथा उसकी सूचना देना।

(९) चिकित्सा गर्भपात :

(अ) इन केसेस की सूची बनाना व उन्हें पास के दवाखाने में भेजना। (ब) माताओं को इस प्रकार के गर्भपात के विषय में जानकारी देकर शिक्षित करना।

(१०) अन्य :

(अ) प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र पर स्टाफ मीटिंग अटेन्ड करना। (ब) अपनी गतिविधियों के साथ समन्वय करना। (स) सभी प्रकार के रिकार्ड व रजिस्टर रखना तथा समयानुसार मेडिकल आफीसर को प्रस्तुत करना। (द) नक्शे व चार्ट तैयार करना जिससे कि खास-खास योजना बनाते समय उपयोग किया जा सके।

●

१३१. ग्रामीण स्वास्थ्य योजना

ग्रामीण स्वास्थ्य योजना की संक्षिप्त रूपरेखा की चर्चा स्वास्थ्य मंत्रियों की कान्फ्रेंन्स में २८-२९ अप्रेल १९७७ को नई दिल्ली में हुई। उस मीटिंग में लिए गये निर्णयों के आधार पर राज्य सरकारों से अनुरोध किया गया था कि वह अपने सुझाव भेजें। ६ राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों में अभी तक कोई जवाब नहीं आया। इन सभी राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों के बारे में एक स्टेटमेन्ट एक वचन में है।

स्वास्थ्य मन्त्रियों की मीटिंग में लिये गये निर्णयों को ध्यान रखते हुये यह निश्चय किया गया कि यह योजना २ अक्टूबर १९७७ महात्मा गाँधी के जन्म दिवस से लागू की जाय। यह प्रस्तावित किया गया कि निम्नलिखित बिन्दुओं पर विस्तृत चर्चा करके निर्णय लिया जाय।

योजना कार्यान्वित करने का क्षेत्र :

(अ) जिले के वह समस्त प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र जहाँ बहुउद्देशीय कार्यकर्त्ताओं की योजना वर्तमान में चल रही है।

(ब) देश के शेष जिले में किसी भी एक प्राथमिक स्वा० केन्द्र के जिलों में अनुरोध किया गया था कि वह एक प्राथमिक स्वा० केन्द्र का चुनाव करे जहाँ पर यह योजना १९७७ से चलाना है। प्राथमिक स्वा० केन्द्र का चुनाव अगस्त १९७७ के प्रथम सप्ताह तक निम्न बिन्दुओं को ध्यान में रखकर पूरा कर लिया :

(१) प्राथमिक स्वा० केन्द्र जहाँ दो डाक्टर हैं।

(२) ट्राइबल, पिछड़े वर्ग या पहाड़ी क्षेत्र को प्राथमिकता।

(३) जहाँ एकीकृत बाल विकास योजना चल रही है।

(४) केन्द्र जहाँ एकीकृत ग्रामीण योजना चल रही हो।

(५) केन्द्र जहाँ प्रभावशाली स्वास्थ्य संस्थाएँ हों।

(६) केन्द्र जहाँ सक्रिय महिला मण्डल आदि हों।

(७) केन्द्र जहाँ उत्साहित वालेन्टरी संस्थाएँ हों।

१३२. जन स्वास्थ्य रक्षक के कार्यभार

जन स्वास्थ्य रक्षक के निम्नलिखित कार्य होंगे :

(१) मलेरिया :

(१) बुखार के रोगियों की पहिचान।

(२) बुखार वाले सभी रोगियों की मोटी व पतली रक्त फिल्में तैयार करना।

(३) स्लाइडों को प्रयोगशाला जाँच के लिए भेजना।

(४) बुखार वाले रोगियों का सम्भावित इलाज करना।

(५) जिसका सम्भावित इलाज किया जाए उसका रिकार्ड रखना।

(६) जिनकी रक्त स्लाइडें ली गयी हैं उनके नाम और पते स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता को बतलाना ताकि उनके लिए आगे कुछ किया जा सके।

(७) स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता (पुरुष) और छिड़काव करने वाले दलों को छिड़काव करने तथा लार्वा नष्ट करने के कार्य में मदद देना।

(८) मलेरिया की रोकथाम के बारे में लोगों को जानकारी देना।

(२) चेचक।

(१) दानों के साथ बुखार वाले रोगियों को पहचानना और स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता को सूचना देना।

(२) एक वर्ष से कम आयु के बच्चों के बारे में जिन्हें प्राथमिक टीके की जरुरत है, स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता को सूचित करना।

(३) स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता (पुरुष/महिला) को प्राथमिक टीके की व्यवस्था करने में मदद देना।

(४) प्राथमिक टीका लगे बच्चों को देखना।

(५) लोगों को टीकों के बारे में बताना।

(३) संचारी रोग :

(१) अपने-अपने इलाके में महामारी फैलने पर तुरन्त स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता को उसकी सूचना देना।

(२) रोगों को फैलने से रोकने के लिए तुरन्त सावधानी बरतना।

(३) संचारी रोगों की रोकथाम के बारे में लोगों को बतलाना।

(४) अड़ोस-पड़ोस की सफाई तथा व्यक्तिगत स्वास्थ्य विज्ञान :

(१) पीने के पानी को स्रोतों को नियमित समय के बाद क्लोरिन देकर साफ रखना।

(२) निम्नलिखित चीजों को बनाने की व्यवस्था करने में स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता की सहायता करना।

(अ) पानी समाने के लिए गड्ढा (ब) शाक वाटिका (स) खाद का गड्ढा (द) सैनिटरी शोचालय (य) बिना धुंआ वाला चूल्हा।

(३) लोगों को निम्नलिखित विषयों की जानकारी देना—

(अ) सुरक्षित पीने का पानी। (ब) बहने वाले कूड़े-करकट को स्वास्थ्यकर ढंग से निपटाना। (स) ठोस कूड़े-कचरे को स्वास्थ्यकर ढंग से निकालना। (द) घर की सफाई। (य) शाक वाटिका। (र) सेनेटरी शोचालयों के लाभ और उनका प्रयोग। (ल) बिना धुंए वाले चूल्हों के लाभ। (व) खाने में सफाई। (स) कीड़ो, कृन्तकों और अवारा कुत्तों पर नियन्त्रण रखना।

(४) निजी सफाई के महत्व के बारे में लोगों को बताना।

(५) क्लोरीन किये गये कुओं का हिसाब रखना।

(५) रोग में छुटकारा :

(१) रोग से छुटकारे की व्यवस्था के लिए स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता को मदद देना।

(२) रोहिणी या गलाघोंटू (डिप्थेरिया), काली खांसी, धनुष टंकार या धनुर्वाद (टिटेनस), चेचक, क्षयरोग, पोलियो, हैजा तथा मोतीझरा (टायफाइड) से बचने के बारे में लोगों को बतलाना।

(६) परिवार नियोजन :

(१) अपने-अपने इलाके के दम्पत्तियों तक परिवार नियोजन का सन्देश पहुंचाना तथा उन्हें छोटे परिवार की वांछनीयता के बारे में बतलाना।

(२) परिवार नियोजन की उपलब्ध विधियों के बारे में जानकारी देना।

(३) डिपो होल्डर के रूप में काम करना, दम्पतियों को निरोध बाँटना तथा कितना निरोध बाँटा गया उसका एक आवश्यक रिकार्ड रखना।

(४) परिवार नियोजन को अपनाने के इच्छुक दम्पतियों के बारे में स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता को सूचित करना ताकि वह आवश्यक व्यवस्था कर सके।

(५) गर्भ की चिकित्सीय समाप्ति सम्बन्धी सेवाएँ उपलब्ध हैं। इसके बारे में लोगों को बतलाना।

(७) जच्चा बच्चा देखरेख :

(१) गर्भवती महिलाओं को प्रसव-पूर्व, प्रसवकाल तथा प्रसव के बाद की देखरेख के लिए किसी स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता (महिला) या प्रशिक्षितदायी से परामर्श करने की सलाह देना।

(२) धनुर्वाद (टिटेनस) से निरापद होने के लिए गर्भवती महिलाओं को सलाह देना।

(३) लोगों को बताना की जच्चा-बच्चा सेवाएँ उपलब्ध हैं तथा उन्हें उनका उपयोग करने के लिए प्रोत्साहित करना।

(४) जच्चा-बच्चा को कैसे स्वस्थ रखा जाता है, इस बारे में लोगों को बतलाना।

(८) **पोषण** :

(१) स्कूल पूर्व की आयु वाले बच्चों (एक से पाँच वर्ष तक) के कुपोषण वाले मामलों की जाँच करके उन्हें स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता को भेजना।

(२) गर्भवती, दूध पिलाने वाली माताओं तथा बच्चों में खून की कमी के मामलों की जाँच करके उन्हें इलाज के लिए स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता को भेजना चाहिए।

(३) एक से पाँच वर्ष तक के बच्चों को नुसखे के हिसाब से विटामिन ए तरल देने में स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता की सहायता करना।

(४) स्तनपान करवाने के लाभ तथा क्या-क्या देकर उसे छुड़ाया जा सकता है इसके बारे में लोगों को जानकारी देना।

(५) माँ तथा बच्चों को पौष्टिक आहार के बारे में बतलाना।

(९) **जन्म-मरण सम्बन्धी घटनायें** :

(१) स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता को अपने-अपने इलाके में हुई जन्म मृत्यु की सभी घटनाओं की रिपोर्ट देना।

(२) जन्म तथा मृत्यु की सभी घटनाओं को रजिस्टर में दर्ज कराने का महत्व लोगों को समझाना।

(१०) **आपात स्थिति में प्राथमिक चिकित्सा** :

(१) निम्नलिखित स्थितियों में आपात प्राथमिक चिकित्सा दे, आवश्यकतानुसार उन रोगियों को प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र में भेजे और स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता को सूचित करे।

(अ) डूबना (ब) बिजली का करण्ट लगना (स) तापघात (द) सांप का काटना (य) बिच्छू का काटना (र) कीड़े का काटना (ल) कुत्ते का काटना (व) दुर्घटनाएँ।

(२) दुर्घटना सम्बन्धी उपचार सहायता देना।

(३) प्रत्येक रोगी को दी गयी प्राथमिक चिकित्सा का रिकार्ड रखना।

(११) **छोटी मोटी बीमारियों का इलाज** :

(१) निम्नलिखित चिह्नों और लक्षणों के दिखाई देने पर रोगियों का सामान्य इलाज करे और यदि रोग जन-स्वास्थ्य रक्षक की क्षमता से बाहर हो तो रोगी को उपकेन्द्र या स्वास्थ्य केन्द्र में भेजे।

(अ) बुखार, (ब) सिरदर्द, (स) पीठ का दर्द, जोड़ों का दर्द, (द) खांसी और जुकाम, (य) दस्त, (र) उल्टी, (व) पेट में दर्द, (स) कब्ज, (श) दाँत दर्द, (ष) कान दर्द, (क्ष) आँख दुखना, (त्र) फोड़े, फुन्सियाँ और अल्सर, (ज्ञ) दाद और खुजली।

(२) प्रत्येक रोगी को दिये गये इलाज का रिकार्ड रखना।

(१२) **मानसिक स्वास्थ्य** :

(१) मानसिक रोगों के लक्षण को पहिचानिये और इन रोगियों को स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता के पास भेज दे।

(२) मानसिक रोगों से सम्बन्धित आपात स्थिति मामलों में तत्काल सहायता दें।

(३) मानसिक बीमारियों के बारे में समझाना।